

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

4724

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

रघुवंशम्

(केवलं त्रयोदशः सर्गः)

अन्वय—हिन्दी-अनुवाद—संस्कृतभावार्थ—व्याख्या—विविध
टिप्पणी—वाच्यपरिवर्तन—आलोचनात्मक भूमिका—विविधप्रश्नोत्तर—
रशिष्ट इत्यादि से संबलित ।

संपादक

डा० रामकुमार आचार्य, एम० ए०, पीएच० डी०,
व्याकरणाचार्य

संस्कृत विभाग, गवर्नमेन्ट कालेज,
अजमेर

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीप्रसाद

(उत्तराधिकारी : रामनारायणलाल प्रकाशक)

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद-२

१९६१]

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीप्रसाद
इलाहाबाद

२ म० ३६९

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

भूमिका

१. संस्कृत साहित्य का उद्भव और विकास

संस्कृत साहित्य साधारणतया पाँच युगों में सुविधा के साथ बाँटा जा सकता है—

(१) वैदिक युग अथवा वेदों और वैदिक साहित्य का युग जिसमें कि आर्य जाति के मौलिक विचार और स्वाभाविक प्रेरणाएँ पाई जाती हैं ।

(२) महाकाव्यों का युग जब कि रामायण और महाभारत की रचना हुई जिनमें कि आर्य जाति की साहित्यिक प्रगति दिखलाई पड़ती है ।

(३) दार्शनिक युग अथवा तर्कवाद का युग जब कि वैदिक कर्मकाण्ड के विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई ।

(४) पौराणिक युग जो कि तर्कवाद के विरुद्ध एक प्रकार से प्रतिक्रिया-स्वरूप था और जब कि सर्वसाधारण की भाषा में वैदिक यज्ञयागादिकों को फिर से प्रेरणा दी गई ।

(५) काव्ययुग अथवा कलात्मक साहित्य का युग जिसमें कि पौराणिक गाथाओं और रामायण तथा महाभारत की कथाओं के आधार पर अलंकृत शैली के अनेक काव्य लिखे गये । इस अन्तिम युग के शैशव काल में ही कालिदास का प्रादुर्भाव हुआ और उसने अपनी अभिनव-रचनाओं से संस्कृत साहित्य को एक नयी दिशा दी ।

२. कालिदास का व्यक्तिगत जीवन

संस्कृत के अन्य अनेक कवियों की तरह कविकुलगुरु कालिदास के भी व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में वस्तुतः कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा

सकता। जनश्रुति यह बतलाती है कि ई० पू० ५६ में विक्रम संवत् को चलाने वाले उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की सभा में नवरत्नों में से यह एक था। संभवतया यह काश्मीर निवासी था और शैव था लेकिन उसके विचार बड़े उदार थे। ब्रह्मा और विष्णु का भी वह समान भक्त था। दन्तपरम्परा के कवि के सम्बन्ध में निम्न कथा चली आ रही है—

कालिदास अपने यौवन काल में बड़ा मूर्ख था और अपनी मूर्खता के कारण ही अपनी विदुषी पत्नी के द्वारा निकाल दिया गया था। इस तरह घूमते-घूमते उसे सरस्वती देवी के दर्शन हुए और देवी के वरदान से उसे सर्वोत्तम ज्ञान की उपलब्धि हुई। विद्वत्ता का नया रूप धारण कर कालिदास घर लौटा और प्रवेश के लिए प्रार्थना की। कौन है? यह पूछे जाने पर अपनी विदुषी पत्नी को आश्चर्य में डालते हुए उसने शुद्ध संस्कृत में उत्तर दिया—‘अस्त कश्चिद् वाग्विशेषः’ (मुझे कुछ कहना है)। बाद में पूर्ण जानकारी के बाद पत्नी ने द्वार खोला। कालिदास ने ‘अस्त कश्चिद् वाग्विशेषः’ के ‘अस्ति’ पर से कुमारसम्भव महाकाव्य लिखा; ‘अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयं नाम नगाधिराजः’। ‘कश्चित्’ पद से मेघदूत की रचना की—‘कश्चित्कान्ताकिरह गुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः’। ‘वाक्’ शब्द से रघुवंश महाकाव्य लिखा—‘वागर्थं विव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।’

३. कालिदास के धार्मिक विचार

कालिदास मुख्यतया शिव का उपासक है और प्रायः उसने अपने सभी ग्रन्थों में शिव जी की प्रार्थना की है। विक्रमोर्वशीयम् नाटक में मंगलाचरण करते हुए वह कहता है—‘स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः।’ मालविकाग्निमित्र नाटक में भी शिव जी की ही स्तुति पाई जाती है—‘एकैश्वर्यं स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्रिवासाः। कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद्यनीनाम्। अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्विभ्रतो नाभिमानः। सन्मागालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसी वृत्तिमीशः।’ कुमारसंभव काव्य की तो कथा ही शिवजी के सम्बन्ध में है। मेघदूत में भी प्रथम आश्वास में उज्जयिनी

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

में स्थित शिवजी (महाकाल) के विशाल मन्दिर का श्लोक सं० ३०, ३४, ३६ में बड़ा भव्य वर्णन पाया जाता है । शकुन्तला नाटक का अन्तिम पद्य भी शिवजी की ही स्तुति में लिखा गया है । रघुवंश के प्रारम्भ में तो 'जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ'—स्पष्ट ही कहा गया है । लेकिन शिव के उपासक होते हुए भी कालिदास में धार्मिक संकीर्णता लेशमात्र को भी नहीं है । हिन्दुओं के त्रिदेव उसे समान रूप से आराध्य हैं ।

४. कालिदास का समय—

कविकुलगुरु कालिदास के समय के सम्बन्ध में एकमत तो बिल्कुल ही नहीं है । ई० पू० अष्टम शतक से लेकर ई० एकादश शतक तक इतिहासकारों ने उसे खींचा है । कालिदास की शैली कम से कम इतनी प्राचीन तो नहीं है कि उसे ई० पू० अष्टम शतक में रखा जा सके और ६३४ ई० के एक शिलालेख में उसके नाम का उल्लेख होने से हम उसे ई० सप्तम शतक के बाद में नहीं रख सकते । विभिन्न विचारों पर तनिक तर्क के साथ विचार करना अनुपयुक्त न होगा—

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, भारतीय जनश्रुति राजा विक्रमादित्य से उसे सम्बद्ध करता है । इस विक्रमादित्य को ई० पू० प्रथम शतक में उज्जयिनी में राज्य करता हुआ बताया जाता है और इसकी सभा में निम्नलिखित नवरत्नों का वर्णन पाया जाता है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह शंकु वेतालभट्ट घटकर्पर कालिदासाः ।

ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

इस परम्परा के अनुसार कवि का कार्यकाल ई० पू० प्रथम शतक ही उहरता है । उसकी रचनाओं में भाषा के वैदिक प्रयोग (प्रभ्रंशयां यो नहुष-चकार रघु० १३-३६) तथा शकुन्तला नाटक में उत्तराधिकार और दण्ड के कानून के उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि कालिदास इसी समय में रहा होगा ।

लंका में एक ऐसी जनश्रुति भी है कि वहाँ के राजा कुमारदास का

कालिदास समकालीन था और इस जनश्रुति के आधार पर कालिदास के ई० षष्ठ शतक में, जो कि उसके मित्र राजा कुमारदास का शासन काल माना जाता है, रखते हैं। लेकिन जनश्रुति जनश्रुति ही है और ऐतिहासिक समीक्षा में नियमित रूप से उसे इतिहास नहीं माना जा सकता। इसलिए विदेशी जनश्रुति के आधार पर अपनी विशुद्ध जनश्रुति को हम नहीं छोड़ सकते।

ब्रह्मगुप्त द्वारा रचित ज्योतिष के एक ग्रन्थ खण्डन-खण्ड-खाद्य पर टीका करने वाले अमरराज ने अपनी टीका में प्रसंगवश ऐसा लिखा है कि वराह मिहिर शक सं० ५०६ (ई० ५८७) में दिवंगत हुआ। यह उल्लेख भी ई० षष्ठ शतक के सिद्धान्त को पुष्ट करता है, क्योंकि कालिदास वराहमिहिर का समकालीन माना जाता है। लेकिन इस टीकाकार के प्रासंगिक उल्लेख को हम प्रामाणिक नहीं मान सकते। संभव है कि किसी अन्य वराह मिहिर के सम्बन्ध में यह लिखा गया हो। मेघदूत के श्लोक सं० ११४ की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ ने दिङ्नाग शब्द पर यह लिखा है कि इसमें दिङ्नाग नामक विद्वान् का उल्लेख किया गया है, जो कि कवि का समकालीन था। इस व्याख्यान से भी दो विचार उपस्थित होते हैं। दिङ्नाग को कोई ई० षष्ठ शतक में मानते हैं और कोई ई० तृतीय शतक में रखते हैं। उक्त व्याख्यान से उत्पन्न दो विरोधी विचारधाराओं के साथ-साथ हम यह भी कह सकते हैं कि यह व्याख्यान ही स्वतः अप्रामाणिक है।

डा० फ्लीट के द्वारा उपलब्ध मन्दसोर शिलालेख की परीक्षा करके प्रो० मैकडानल ने यह सम्मति दी है कि इस लेख के लेखक, वत्सभट्टि को कालिदास का अवश्य ही ज्ञान था और उसने कालिदास से अवश्य ही कुछ सामान्य उपलब्ध की है। यह शिलालेख ई० ४७३ का है। अतः कालिदास ई० षष्ठ शतक से बाद का नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त कालिदास की केवल परवर्ती सीमा निर्धारित करता है और उसकी तिथि के सम्बन्ध में कोई निश्चित समझ नहीं बताता है।

विभिन्न विरोधी सिद्धांतों के परीक्षण के बाद यहाँ उचित जान पड़ता है

कि
बु
अ
इ
अ
द
सं
०
क
इ
म
क
द
रि
प
मे
म

कि शताब्दियों से चली आती हुई भारतीय जनश्रुति को ही सत्य माना जाए। बुद्धचरित महाकाव्य का लेखक अश्वघोष ई० पू० प्रथम शतक से कुछ पहिले अथवा ई० पू० प्रथम शतक में ही रहा होगा, क्योंकि एक चीनी यात्री ई० पू० ६० में इस काव्य की कुछ प्रतियाँ चीन ले गया था। यदि कालिदास को अश्वघोष ने आदर्श मानकर अपने काव्यों की रचना की तो अवश्य ही कालिदास उससे पूर्व होना चाहिए या कम से कम उसका समकालीन। डा० पीटर्सन का कथन है—*Kalidasa stands near the beginning of the Christian era, if indeed he does not overtop it*—श्री परिणत महोदय की भी यही सम्मति है और उन्होंने एक यह भी तर्क दिया है कि पुण्यमित्र ने ई० पू० १६० में मौर्य वंश स्थापित किया। उसका पुत्र अग्निमित्र जो कि मालविकाग्निमित्र नाटक का नायक है, एक ऐतिहासिक पात्र है और कालिदास का समकालीन है। प्रो० आर० एन० आण्टे का भी यही कहना है कि कालिदास ई० पू० प्रथम शतक के मध्य में ही रहा होगा। उन्होंने यह निश्चित किया है कि हूण राजा ई० पू० प्रथम शतक में भारत में आए। कलिग तथा पारसीकों का इतिहास भी यह बात सिद्ध करता है। शकुन्तला के चतुर्थ अंक में उपलब्ध उत्तराधिकार का नियम—संतानहीन मृत व्यक्ति की सम्पत्ति का राजा अधिकारी होता है—ई० पू० प्रथम शतक के आस-पास ही प्रचलित था।

५. कालिदास का भ्रमण

ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास को देशाटन बड़ा प्रिय था और भारत भूमि के प्रायः सभी भागों से वह सुपरिचित था। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में बंगाल, बिहार और उड़ीसा का ऐसा विस्तृत तथा ठीक-ठीक वर्णन पाया जाता है जिससे कि निश्चित होता है कि कालिदास ने अवश्य ही इन प्रदेशों की यात्रा की थी। कोंकण प्रदेश में घोने से पहिले जमीन के जलाए जाने की प्रथा का कालिदासकृत वर्णन अतीव रोचक है। रघुवंश के चतुर्दश सर्ग में विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन यह सिद्ध करता है कि कवि ने अवश्य ही इन स्थानों को देखा होगा। केवल पुस्तकज्ञान के आधार पर ऐसा वर्णन

प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । लेकिन विन्ध्य पर्वत से उत्तर की ओर हिमालय और मानसरोवर तक का भूभाग दक्षिण भाग की अपेक्षा कालिदास अधिक परिचित प्रतीत होता है ।

६. कालिदास की जन्मभूमि

कालिदास ने अपने जन्मस्थान और माता-पिता के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है । लेकिन जिस आत्मीयता के साथ उसने उज्जयिनी का वर्णन किया है, इसके आस-पास की छोटी छोटी नदियों तथा महाकाल के मंदिर का जो भावपूर्व वर्णन मेघदूत में उपलब्ध होता है तथा यक्ष जो मेघ से मालवदेश में अवश्य जाने की प्रार्थना करता है, इससे विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि कालिदास की जन्मभूमि अवश्य ही उज्जयिनी रही होगी । ऐतिहासिकों ने इस विषय पर बड़ा विचार किया है । लेकिन अभी तक कोई निष्कर्ष नहीं निकल सका है ।

७. कालिदास का पाण्डित्य

यद्यपि कालिदास के निजी जीवन के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है, फिर भी उसकी रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह विभिन्न विद्याओं तथा कलाओं का उत्कृष्ट विद्वान् था । दर्शनों के गम्भीर ज्ञान से लेकर बालक-बालिकाओं के साधारण खेलों तक का कालिदास को ज्ञान था । कालिदास ने मनु इत्यादि की स्मृतियों का भी गम्भीर अध्ययन किया होगा, तभी तो शकुन्तला नाटक के षष्ठ अंक में मात्स्यिक और धनमित्र वणिक् के प्रसंग में चौर्यदण्ड और उत्तराधिकार के नियम का शास्त्रमत् उल्लेख पाया जाता है । बाह्य प्रकृति के साधारण से साधारण रूप का भी कवि को ज्ञान है । इन्द्रधनुष के बनने की प्रक्रिया तथा मेघों के स्वरूप का कालिदास के द्वारा किया गया वर्णन आधुनिक भौतिक विज्ञान के सर्वथा अनुकूल है । कालिदास का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है । व्याकरण की दृष्टि से उसकी भाषा नितान्त शुद्ध है । व्याकरण के 'शब्दार्थयोस्तादात्म्यम्' इस सिद्धान्त को कालिदास भी मानता है, जैसा कि रघुवंश के प्रथम श्लोक में

‘वागर्थाविव संपृक्तौ’ इस कथन से स्पष्ट है। इसी प्रकार अलंकारशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र से भी कालिदास पूर्ण परिचित प्रतीत होता है। कहीं भी उसने इन शास्त्रों के नियमों का अपनी रचनाओं में उल्लंघन नहीं किया है। आयुर्वेद तथा इसकी विभिन्न शाखाओं का ज्ञान भी कवि का प्रशंसनीय है। इसके अतिरिक्त कवि ज्योतिषशास्त्र से भी परिचित है। दर्शनों में कवि का वेदान्त-दर्शन की ओर अधिक झुकाव प्रकट होता है। वास्तव में, देखा जाए, तो कालिदास अपने समय की सब विद्याओं का पारंगत विद्वान् था। सरस्वती की कृपा से कोई भी विद्या उसके लिए दुर्गम नहीं थी।

८. कालिदास नाम के अनेक विद्वान्

संस्कृत साहित्य में कालिदास नाम के अनेक विद्वान् हुए हैं। राजशेखर ने अपनी सूक्तिमुक्तावली में कालिदासत्रयी का उल्लेख किया है—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।

शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

स्व० म० म० पं० रामावतार शर्मा पाण्डेय जी ने बतलाया है कि नवसाह-संक्षरित का कर्ता पद्मगुप्त भी परिमल कालिदास कहाता था। यह धाराधिप मुंज का सभापण्डित था। धारा के भोज की सभा में भी एक कालिदास था। ज्योतिर्विदाभरण और शत्रुंजयमाहात्म्य का रचयिता भी कोई कालिदास था। परन्तु विक्रमादित्य का सभा-पण्डित महाकवि कालिदास, जिसके सम्बन्ध में यहाँ विचार हो रहा है, इन सब कालिदासों से प्राचीन तथा भिन्न है।

९. कालिदास की शैली की विशेषताएँ

संस्कृत के महाकवियों में कालिदास का सर्वोच्च स्थान उपयुक्त ही है। उसकी ख्याति न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी पाई जाती है। बहुत सी विदेशी भाषाओं में भी कालिदास की रचनाओं का अनुवाद हो चुका है। माधुर्य, प्रासाद और प्रवाह तथा लय कालिदास की शैली की निजी विशिष्टताएँ हैं। उपमाओं के प्रयोग में तो कालिदास सिद्धहस्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपमाएँ स्वयं उसकी कल्पना में उपस्थित ही होती हैं। उपमान और

उपमेय में साधारण धर्म की समानता के साथ-साथ लिंग और वचन की समानता पर भी ध्यान दिया गया है ।

वाण जैसे प्रकाण्ड विद्वान् और कवि ने भी कालिदास की प्रतिभा का गुणगान किया है—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।

प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मंजरीष्वव जायते ॥

कालिदास की प्रशंसा में सर डा० भण्डारकर की निम्नलिखित उक्ति को उद्धृत करना यहाँ अनुपयुक्त न होगा । डा० भण्डारकर ने मालतीमाधव नाटक की अपनी भूमिका में कालिदास और भवभूति के परस्पर वैशिष्ट्य पर विचार करते हुए लिखा है—कालिदास और भवभूति का भारत में वही स्थान है जो कि शेक्सपियर और वेन जान्सन का इंग्लैण्ड में । केवल इतना ही भेद है कि प्रत्येक युग अपने अपने देश की प्राकृतिक स्थिति तथा भौतिक नियमों से प्रभावित है । कालिदास और भवभूति में भवभूति की अपेक्षा कालिदास अधिक उच्च कलाकार है । कालिदास किसी भी भाव को व्यंजना द्वारा व्यक्त करता है अथवा सूचित करता है, जब कि भवभूति उसे ओजस्वी भाषा में वर्णित करता है । भवभूति के पात्र भावनाओं के वशीभूत होकर प्रायः रो पड़ते हैं, जब कि कालिदास के पात्र यदि रोते भी हैं, तो केवल कुछ आँसू ही गिराते हैं । संस्कृत आलोचकों की भाषा में ऐसा कहा जा सकता है कि कालिदास व्यंजना अथवा लक्षणा द्वारा रस को अभिव्यक्त करता है और भवभूति वाच्यरूप में ही इसका प्रतिपादन करता है । कालिदास की शैली मधुर, प्रभावोत्पादक, सरल तथा भावनाओं को तरंगित करने वाली है । लम्बे-लम्बे जटिल समास तो प्रायः ही नहीं । भवभूति की अपेक्षा कालिदास की शैली स्वाभाविक और सुगम है । जब कि भवभूति की शैली में नितान्त कृत्रिमता पाई जाती है ।

प्रो० सिल्वेन लेवी ने अपने 'ले थिएटर इन्डियन' में कालिदास की निम्न शब्दों में प्रशंसा की है—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

“कालिदास का नाम भारतीय कवियों में सबसे ऊँचा है तथा कविता की

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उत्कृष्टता में उसकी कविता उदाहरण स्वरूप है। उसके नाटक, महाकाव्य तथा खण्डकाव्य सभी इस बात के प्रमाण हैं कि कालिदास की प्रतिभा में तेज और परिवर्तनशीलता है। उसकी कृतियों को देखकर सारे भारतीय आज भी विस्मित होते हैं और मानवता तो स्वयं का साक्षात्कार करती ही है। उज्जयिनी में सर्वप्रथम शकुन्तला नाटक का जिस प्रकार स्वागत हुआ था उसी प्रकार विलियम जोन्स द्वारा पाश्चात्य संसार में इस नाटक के प्रसारित होने पर संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक इस नाटक का नाम गूँज उठा। मानवीय प्रतिभा के उत्कृष्टतम निदर्शन प्रस्तुत करने वाले विश्वकवियों में कालिदास का निश्चित ही एक विशिष्ट स्थान है। कालिदास भारतीय प्रतिभा का सुन्दरतम उदाहरण प्रस्तुत करता है।”

१०. कालिदास और शेक्सपियर

कालिदास और शेक्सपियर में प्रायः तुलना की जाती है और लोग कालिदास को भारत का शेक्सपियर कहते भी हैं। लेकिन दोनों के पारस्परिक महत्त्व का निर्णय करना बहुत ही कठिन है। यदि पाश्चात्य संसार के इस अमर गायक को एक विशिष्ट प्रतिभाशाली लेखक कहा जाय, तो कवि-कुल-शिरोमणि कालिदास को भी कुछ कम नहीं कहा जा सकता। मानवीय भावनाओं के चित्रण में, ऐसा कहा गया है कि कोई भी शेक्सपियर के समकक्ष नहीं है। लेकिन इतने से ही हम उसे कालिदास से बढ़कर नहीं मान सकते। वास्तव में कालिदास की अपेक्षा शेक्सपियर ने मानवप्रकृति की गहराइयों में जाने का अधिक प्रयास किया है। सरस्वती के इन दोनों वरद पुत्रों के कविता-सम्बन्धी विचार बिल्कुल भिन्न ही हैं। शेक्सपियर मानवप्रकृति के यथार्थ चित्रण की ओर अधिक झुका हुआ है, जब कि कालिदास उपमाओं, अनुप्रास, काल्पनिक चित्रण और शैली की मधुरता का हमेशा ध्यान रखता है। इस प्रकार दोनों ही कवियों के आदर्श एक दूसरे से सर्वथा विपरीत हैं और इसीलिए याद मनोवैज्ञानिक रूप से असंभव नहीं, तो कम से कम एक सर्वसाधारण पृष्ठभूमि के न होने के कारण दोनों कवियों में इस प्रकार का तुलनात्मक कार्य अत्यन्त ही कठिन है।

११. कालिदास के ग्रन्थ

खुवंश महाकाव्य के रचयिता इस महाकवि ने और भी कई ग्रन्थ लिखे हैं। कालिदास निस्सन्दिग्ध ही एक महान् लेखक तथा अपनी कला का पारगामी था। यद्यपि अनेक ग्रन्थ उसके लिखे बताए जाते हैं, लेकिन सर्वसम्मति से केवल सात ही उसके लिखे माने जाते हैं—चार काव्य—१ खुवंश, २ कुमारसंभव, ३ मेघदूत, ४ ऋतुसंहार और तीन नाटक—१ मालविकाग्निमित्र, २ विक्रमोर्वशीय और ३ शकुन्तला।

कुमारसंभव—खुवंश महाकाव्य के सम्बन्ध में तो लिखा ही जायगा। कुमारसंभव के सम्बन्ध में भी कुछ कहना अप्रासंगिक न होगा। १७ सर्गों के इस महाकाव्य में १ हजार से कुछ अधिक श्लोक हैं। इसकी कथावस्तु तीन भागों में विभाजित की जा सकती है—१ शिव और पार्वती का विवाह २—कुमार का जन्म ३—संसार को सताने वाले तारकासर और कुमार का परस्पर युद्ध। कथावस्तु पूर्णतया शिवपुराण से ली गई है और कवि ने स्वच्छन्दता से कथावस्तु में परिवर्तन कर स्थान-स्थान पर सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किये हैं। कुमारसंभव एक अत्यन्त ही सुन्दर काव्य है। प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन ही भव्य वर्णन इस काव्य में पाया जाता है।

मेघदूत—पूर्व और उत्तर मेघ अथवा प्रथम और द्वितीय आश्वासन के विभाजित ११० से ११५ श्लोकों का यह एक लघुकाव्य है। कल्पना की प्रचुरता और भावों की समृद्धता में यह काव्य अद्वितीय है। संभवतः यह काव्य प्रत्येक बात में नितान्त पूर्ण है और कवि ने इस काव्य को आदर्शकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है। संस्कृत साहित्यशास्त्र के अनुसार यह एक खण्डकाव्य है और इसके अनुकरण पर बहुत से दूतकाव्य लिखे गये हैं।

ऋतुसंहार—यह भी एक लघुकाव्य है। इसमें ६ सर्ग हैं और लगभग १४३ श्लोक हैं। वर्ष की ६ ऋतुओं के अनुसार काव्य सर्गों में विभक्त है। मानवीय भावनाओं के साथ प्रत्येक ऋतु के प्राकृतिक सौन्दर्य का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

कालिदास के नाटक—यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि संस्कृत के तीन प्रसिद्ध नाटककारों ने तीन-तीन ही नाटक लिखे हैं। श्रीहर्ष के भी तीन ही नाटक हैं—रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द। भवभूति के भी तीन ही नाटक हैं—महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित। इसी प्रकार कालिदास के भी तीन ही नाटक हैं—शकुन्तला, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र। शकुन्तला नाटक द्वारा ही कालिदास को पाश्चात्य विद्वानों से ख्याति प्राप्त हुई। सर विलियम जोन्स ने सन् १७८६ ई० में इंगलिश में इस नाटक का अनुवाद किया। यूरोप में इस ग्रन्थ का बड़ा स्वागत हुआ तथा इस अनुवाद के द्वारा संस्कृत साहित्य का यूरोप में प्रचार हुआ। कालिदास या यों कहिए कि उसके शकुन्तला नाटक ने यूरोप में संस्कृत साहित्य के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त कराई तथा विदेशों में संस्कृत के अनेक विद्वान् तथा प्रशंसक पैदा किए।

१२. रघुवंश

समग्र भारतवर्ष में करीब १५०० वर्षों से यह महाकाव्य लोकप्रिय होता आ रहा है। प्रायः सर्वत्र ही पाठ्यपुस्तक के रूप में इसका प्रयोग होता है। न केवल संस्कृत विद्यालयों अपितु स्कूलों और कालेजों की पाठ्यप्रणाली में भी इसका समावेश किया जाता है। इसके अतिरिक्त संस्कृतप्रेमी सज्जन भी बड़े चाव से इस काव्य को पढ़ते हैं और अर्धनिमीलित नयनों से इस काव्य की कथा को सुनते हैं। भारतवर्ष में काश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा सिन्ध से आसाम तक यह काव्य आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है। इस प्रकार यह एक राष्ट्रीय काव्य है। न केवल भारत में अपितु प्राचीनकाल में सुदूर पूर्व में जावा और बाली तक यह काव्य पहुँच गया था। आधुनिक काल में भी यूरोप में इसका प्रभाव दिखलाई देता है। लैटिन, जर्मन, फ्रेंच, इंगलिश तथा अन्य भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है और प्रत्येक देश में इसकी प्रशंसा हुई है।

१३. महाकाव्यों में रघुवंश का स्थान

यद्यपि रघुवंश भी एक राष्ट्रीय काव्य है, फिर भी रामायण और महाभारत

के समकक्ष इसे नहीं मान सकते। रामायण और महाभारत हिन्दुओं के सन् राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। यूनान में होमर के इलियड और आडेसी का जो स्थान है, फारस में शाहनामे का, स्पेन में चिड की कविताओं का, वही स्थान भारत में रामायण और महाभारत का है। साहित्यिक रूप से रघुवंश की वर्जिल के इनियड (Aeneid) से अथवा अरिओस्टो के आरलैन्डो फयूरिओजो अथवा मिल्टन के पैराडाइज लास्ट और पैराडाइज रिगेन्ड से तुलना की जा सकती है। संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि की रामायण के बाद दूसरा स्थान रघुवंश का ही है। संस्कृत के काव्यों में यह काव्य सर्वोपरि माना जाता रहा है।

१४. काव्य की परिभाषा

इस अवसर पर यह अप्रासंगिक न होगा कि काव्य के स्वरूप पर कुछ प्रकाश डाला जाय। प्रसिद्ध अलंकारशास्त्री आचार्य मम्मट के शब्दों में—
‘सकलप्ररोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादनः समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तर-
मानन्दं प्रभुसंमितशब्दप्रधानवेदादिशास्त्रेभ्यः सुहृत्संमितार्थतात्पर्यवत्पुराणा-
दीतिहासेभ्यश्च शब्दार्थयोर्गुणभावेन रसांगभूतव्यापारप्रवणतया विलक्षणं
यत्काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म’—इस प्रकार काव्य का स्वरूप वर्णित
किया गया है। पंडितराज जगन्नाथ ने भी ‘रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः
काव्यम्’ कहा है। पं० विश्वनाथ भी ‘वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्’ कहते हैं।
वस्तुतः कविता के सम्बन्ध में हम यह कह सकते हैं कि जीवन के विविध
अनुभवों से उच्च आत्माओं में जाग्रत होने वाले उत्तम विचारों और
उदात्त अनुभूतियों को सधुर भाषा तथा सुन्दर रूप में अभिव्यक्त करना ही
कविता है।

१५. प्राचीन और बाद के काव्यों में अन्तर

संस्कृत के काव्यों में एक बात विशेष रूप से देखने में आती है। जितना
अर्वाचीन काव्यकार होगा, उतनी ही अधिक उसकी कविता भी कृत्रिम होगी।
इसमें भावों की सहजता तथा विचारों को जाग्रत करने की क्षमता भी कम होगी।

लेकिन इसके साथ शब्दों के स्वरूप और अभिव्यक्ति की कृत्रिमता में यह काव्य अवश्य ही विलक्षण होगा। रघुवंश का लेखक इन दोषों से सर्वथा मुक्त है। उसकी कविता में वस्तु को प्रधानता दी गयी है तथा उसकी कविता हृत्तन्त्री को भङ्कृत करने वाली है। किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध के लेखकों की कविता में कुछ भाग तो नितान्त कृत्रिम तथा संस्कृत भाषा की कलावाजी के व्यक्त करने वाले हैं। सच तो यह है कि जितना ही बाद का काव्यकार होगा, उतना ही वह हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क को प्रसन्न करने वाले अपने शब्दकौशल द्वारा पाठकों की प्रशंसा ग्रहण करने का प्रयास करेगा। यहाँ तक कि कविता की कथावस्तु भी शृंगारिक, नैतिक तथा वर्णनात्मक तत्त्व से मिश्रित हो जायगी। और अन्त में कविता कविता न रहकर केवल एक शब्दाडम्बर मात्र दिखलाई पड़ती है।

१६. महाकाव्यों का स्वरूप

काव्य-जगत् में प्रमुख रचनाओं को महाकाव्य कहा जाता है। संस्कृत में महाकाव्यों की कमी नहीं है। रघुवंश, कुमारसंभव, किरातार्जुनीय, शिशुपाल-वध और नैषधीयचरित इन ५ महाकाव्यों के अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य भी प्रकाश में आ चुके हैं। यथा—नलोदय, राघवपाण्डवीय, हरविजय, नवसाहस्रकचरित, जानकीहरण, बुद्धचरित, विक्रमांकदेवचरित, सौन्दर-नन्द तथा सेतुबन्ध (प्राकृत में)।

शैली तथा कथावस्तु के सम्बन्ध में साहित्यशास्त्रियों द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही महाकाव्यों की रचना हुई है। साहित्यदर्पण के लेखक ने महाकाव्यों के स्वरूप का संक्षेप में इस प्रकार निरूपण किया है—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
 सद्वंशक्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥
 एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
 शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥
 अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।
 इतिहासोद्भव वृत्तमेतद्वा सज्जनप्रियम् ॥

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
 आदौ नमस्क्रियाशीर्षा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
 क्वचिन्निन्दाखलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
 एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ॥
 नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्ग अष्टाधिका इह ।
 नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥
 सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
 सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ॥
 प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।
 सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥
 रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।
 वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ॥
 कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
 नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु ॥

महाकाव्य के यह सारे लक्षण रघुवंश महाकाव्य में पाये जाते हैं । इसमें २६ सर्ग हैं । इस काव्य के नायक श्रीराम क्षत्रिय तथा धीरोदात्त हैं । एक ही वंश के २६ राजाओं के शासन का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है । वीर रस की प्रधानता है । नाटकों में होने वाली सब संघियाँ भी इसमें पायी जाती हैं । इसकी कथावस्तु भी पुराणों से ली गयी है । जीवन के लक्ष्यस्वरूप अर्थ, काम और मोक्ष का यथास्थान वर्णन मिलता है । कवि के मनोनीत इष्ट देवताओं की स्तुति प्रारम्भ में पायी जाती ही है । प्रत्येक सर्ग के अन्त में दो-चार श्लोक भिन्न छन्दों के पाये ही जाते हैं । इसी प्रकार एक दो सर्ग ऐसे भी हैं जिनमें अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है । बहुत से सर्गों में अन्तिम पद्य आगामी सर्ग की कथा को सूचित कर देता है । सारे काव्य में यथास्थान सायंकाल के दृश्यों, सूर्योदय, चन्द्रोदय, प्रातःकाल, रात्रि और दिन, शिकार, पर्वतों, शृद्धि, जंगलों, समुद्र, प्रेमियों के विरह और मिलन, मुनियों,

स्वर्ग, नगरों, यज्ञों, चढ़ाइयों तथा पुत्रजन्म इत्यादि का सांगोपांग वर्णन किया गया है। काव्य का नामकरण नायक के वंश के आधार पर किया गया है।

रघुवंश में न ऐतिहासिक प्रामाणिकता है और न इतिहास की आधुनिक परिभाषा के अनुसार घटनाओं का कोई व्यवस्थित रूप पाया जाता है। कवि के मन को आकृष्ट करनेवाली घटनाएँ एक साथ बाँध कर रख दी गयी हैं। न किसी राजा का नियमित जीवन-वृत्तान्त और न उसके समय और स्थान का प्रामाणिक उल्लेख इस काव्य में उपलब्ध होता है। परवर्ती संस्कृत साहित्य के अन्य काव्यों के समान यह काव्य भी विशुद्ध इतिहास नहीं है। अपने वर्तमान रूप में रघुवंश में १६ सर्ग हैं जिनमें कि २१ छन्दों में लिखे हुए १५६६ श्लोक हैं। सारे काव्य को ३ भागों में बाँट सकते हैं—(१) सर्ग १-६ तक दिलीप, रघु, अज और दशरथ का जीवन-वृत्त वर्णित किया गया है। (२) सर्ग १०-१५ तक भारतीय आदर्श नागरिक श्रीरामचन्द्र जी का जीवन-वृत्त वर्णित किया गया है। (३) सर्ग १६-१६ तक २४ राजाओं के शासन काल की मुख्य घटनाओं का केवल नामोल्लेख पाया जाता है। अन्त में राजा अग्निवर्ण की मृत्यु तथा उसकी रानी के राज्याभिषेक के वर्णन के साथ यकायक ही काव्य समाप्त हो जाता है।

१७. काव्य का आकस्मिक अन्त

काव्य की आकस्मिक समाप्ति को देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। कुछ विद्वानों ने इस सम्बन्ध में कई अनुमान और कल्पनाएँ की हैं। एक विचार यह है कि कालिदास ने १८ सर्ग पूरे तथा १६वाँ सर्ग अधूरा लिखकर इस काव्य को उठाकर रख दिया होगा कि फिर कभी इसे पूरा किया जायगा। लेकिन उसे फिर समय ही न मिला होगा और काव्य इस प्रकार अपूर्ण ही रह गया। संभव है कि अग्निवर्ण जैसे व्यक्ति के चरित्र-चित्रण से ऊबकर उसने ऐसा किया हो।

केवल परम्परा पर आधारित दूसरा विचार यह है कि इस काव्य में २५ सर्ग थे। अन्त के ६ सर्ग चितकुरावित्त/श्री/हस्तलिखित/ने अपेक्षित रहे और

शीघ्र ही नष्ट हो गये । यदि इस विचार को सत्य भी माना जाए, तो यह बात समझ में नहीं आती कि संसार में कहीं भी क्या ऐसा एक भी ग्रन्थ रहा जिसमें पूरे २५ सर्ग हों । इसके अतिरिक्त इस द्वितीय विचार में यह भी दोष है कि १६वाँ सर्ग जो कि अधूरा-सा है, अधूरा नहीं होना चाहिए, यदि उसके आगे भी कुछ लिखा गया होता । इस काव्य पर ३३ टीकाकारों ने टीका की है । लेकिन कोई भी टीकाकार यह नहीं लिखता है कि १६ वें सर्ग के बाद भी कुछ लिखा गया था । वास्तव में टीकाकारों ने इस बात पर कभी विचार भी नहीं किया है । वे तो उपलब्ध मात्र ग्रन्थ की टीका करना ही अपना कर्तव्य समझते थे ।

जो कुछ भी हो, रघुवंशमहाकाव्य अपने वर्तमान रूप में एक अपूर्ण रचना है । इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मानव-प्रकृति के अनुसार एक बार इस काव्य को अधूरा छोड़ देने के बाद फिर कभी कवि को इसे पूर्ण करने का अवसर ही न मिला और यह अपूर्ण ही रह गया ।

१८. काव्य की कथा

प्रथम सर्ग—अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ राजा दिलीप का वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में जाना और पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना करना ।

द्वितीय सर्ग—नन्दिनी गौ का राजा दिलीप के लिए योग्य पुत्र की प्राप्ति का वरदान देना ।

तृतीय सर्ग—वृद्धावस्था में राजा दिलीप का वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करना तथा रघु को राज्य देकर वन चला जाना ।

चतुर्थ सर्ग—रघु का दिग्विजय ।

पंचम सर्ग—अज का जन्म और कालान्तर में उसका इन्दुमती के स्वयंवर में जाना ।

षष्ठ सर्ग—इन्दुमती का स्वयंवर । अज की इन्दुमती द्वारा वरण ।

सप्तम सर्ग—अज का जन्म ।

अष्टम सर्ग—राजकुमार दशरथ का जन्म । इन्दुमती का असामयिक निधन और उसके वियोग में अज का विलाप ।

नवम सर्ग—राजा दशरथ का शिकार के लिए जाना ।

दशम सर्ग—रामचन्द्रजी तथा राजपुत्रों का जन्म ।

एकादश सर्ग—परशुराम की पराजय तथा ४ भाइयों का विवाह ।

द्वादश सर्ग—राम का वनवास तथा रावण की मृत्यु ।

त्रयोदश सर्ग—श्रीराम का अयोध्या वापिस लौटना ।

चतुर्दश सर्ग—राम का राज्याभिषेक तथा सीता का परित्याग ।

पंचदश सर्ग—राम का अश्वमेध यज्ञ । सीता का संसार से विलुप्त होना ।

लक्ष्मण और राम का मानव-स्वरूप परित्याग ।

षोडश सर्ग—कुश का कुमुद्वती से विवाह । राजकुमार अतिथि का जन्म ।

सप्तदश सर्ग—अतिथि के शासन का वर्णन ।

अष्टादश सर्ग—राजा निषध तथा २५ और परवर्ती राजाओं का वर्णन ।

एकोनविंश सर्ग—अत्यधिक भोगविलास के कारण राजा अग्निवर्ण की

मृत्यु । उसकी रानी द्वारा राज्यग्रहण तथा उसके पुत्र का जन्म ।

१६. काव्य का स्रोतःस्थान

कालिदास के मन में महर्षि वाल्मीकि के प्रति बड़ी श्रद्धा थी । उसने वाल्मीकि को आदिकवि कहा है और उनके महाकाव्य के सम्बन्ध में लिखा है कि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण को जब कुश, लव गाते थे तो सभा एकाम्र होकर उस कथा को सुनती थी—

तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ ।

हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली ॥ १५-६६ ॥

वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किंनरस्वनौ ।

किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम् ॥ १५-६४ ॥

वाल्मीकि रामायण में लगभग २४००० श्लोक हैं । कालिदास ने मुख्य-तया इस राशि से ही अपने रघुवंश के लिए सामग्री ग्रहण की है । बहुत से दृश्य कालिदास ने बिल्कुल छोड़ दिये हैं अथवा उनका उल्टा-पल्टा मात्र किया

है। यह भी बहुत संभव है कि कालिदास वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अन्य रामायणों से भी परिचित रहा हो। संभवतः विष्णुपुराण के आधार पर राजाओं की सूची तैयार की गयी है। सर्ग १४ पद्मपुराण से भी मिलता-जुलता है। कालिदास की नम्रता में अगाध पाण्डित्य छिपा हुआ है। बड़ी ही शिष्टता तथा नम्रता से कालिदास ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया है—

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशोऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः ।

मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवाऽस्ति मे गतिः ॥

२०. खुवंश के व्याख्याकार

खुवंश के टीकाकारों में वल्लभ, हेमाद्रि, चरित्रवर्धन, मल्लिनाथ और भक्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अपनी प्रस्तावना में मल्लिनाथ ने दक्षिणावर्त और नाथ इन दो टीकाकारों का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है। लेकिन इनकी टीकाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इन टीकाकारों के अतिरिक्त दिनकर, धर्ममेरु, सुमतिविजय, विजयगणि तथा अन्य व्यक्तियों ने भी टीका लिखी है।

विभिन्न टीकाओं में से संजीवनी नामक मल्लिनाथ कृत टीका सारे भारतवर्ष में पढ़ी जाती है। टीका के अन्त-लेख से पता चलता है कि मल्लिनाथ दक्षिण के तैलंगाना प्रदेश के कोलाचल परिवार का ब्राह्मण था। ई० १४ वीं शताब्दी इसका कार्य काल रहा होगा। उसकी टीकाओं की प्रस्तावनाओं से ज्ञात होता है कि वह समग्र दर्शनों का ज्ञाता था तथा महोपाध्याय उसकी पदवी थी। इसने खुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, किरातार्जुनीय, माघ, नैषध और संभवतया भट्टिकाव्य पर टीकाएँ लिखीं तथा एकावली नाम का एक अलंकार ग्रन्थ भी लिखा। मल्लिनाथ की टीका का आदर्श इस प्रकार था—

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।

नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥

मल्लिनाथ का पुत्र कुमारस्वामी भी एक योग्य विद्वान् था। उसने प्रताप-रुद्रयशोभूषण नामक अलंकारग्रन्थ पर एक उत्तम टीका लिखी है। मल्लिनाथ के लिखे हुए कुछ कव्यग्रन्थ भी पाये जाते हैं।

२१—रघुवंश का त्रयोदश सर्ग और वाल्मीकि रामायण

मुख्यतया वाल्मीकि रामायण के लंकाकाण्ड के १२४ से १३२ सर्गों पर रघुवंश का त्रयोदश सर्ग आधारित है। कुछ बातें अरण्यकाण्ड के प्रारम्भ के सर्गों से भी ली गयी हैं। मूल कथा में किये गये कुछ परिवर्तन नीचे लिखे जा रहे हैं:—

रामायण

रघुवंश

- | | |
|--|--|
| <p>(१) लंका से अयोध्या लौटते समय रामचन्द्र जी किष्किन्धा नगरी में ठहरते हैं और वानराधिपतियों की पत्नियों को अपने साथ लेते हैं। तदनन्तर सब लोग आगे बढ़ते हैं और भरद्वाज ऋषि के आश्रम में एक रात्रि विश्राम करते हैं। दूसरे दिन भरत से रामचन्द्रजी की भेंट होती है।</p> <p>(२) स्वागत की तैयारियों के बाद भरत के साथ शत्रुघ्न भी स्वागतार्थ जाते हैं।</p> <p>(३) भरत ने सुग्रीव और विभीषण से मिलने से पहिले लक्ष्मण और सीता का अभिवादन किया।</p> | <p>(१) किष्किन्धा नगरी में ठहरने और भरद्वाज के आश्रम में रुकने का कोई उल्लेख नहीं है। एक दिन में ही यात्रा पूर्ण हो जाती है और उसी दिन भरत से भेंट होती है।</p> <p style="text-align: center;">+ + +</p> <p>(२) शत्रुघ्न राजधानी में ही ठहर जाते हैं और वहीं स्वागत की तैयारियाँ करते हैं।</p> <p>(३) सुग्रीव और विभीषण से मिलने के बाद भरत लक्ष्मण और सीता का अभिवादन करते हैं।</p> |
|--|--|

२२. श्रीरामचन्द्रजी के लौटने का समय

विद्वानों में श्रीरामचन्द्रजी के लंका से लौटने के समय के सम्बन्ध में कोई एक मत नहीं है। रामायण भी इस तथ्य पर कोई प्रकाश नहीं डालती है। पञ्चपुराण भी इस विषय में अधिक सहायता नहीं करता है। टीकाकारों की भी एक राय नहीं है। रामायण पर तिलक नामक टीका के रचयिता राम नामक विद्वान् के अनुसार यह व्यास-अथर्ववेद-महाभारत-पुराण-संहिता-टीका-संग्रह-संस्करण-Collection, उसका विश्वास है कि कालिकापुराण और पञ्चपुराण दोनों ही इस मत की पुष्टि करते हैं। गोविन्दराज

नामक टीकाकार के अनुसार यह यात्रा चैत्र मास में हुई है। अग्निविश्व रामायण वैशाख में इस यात्रा को बताती है। लेकिन चैत्र मास में पूज्यातिथि के दिन रामचन्द्रजी का अयोध्या से वनवास के लिए जाना (अयोध्याकाण्ड सर्ग ४) और चौदहवें वर्ष का किसी पंचमी तिथि को पूर्ण होना (लंकाकाण्ड सर्ग १२४) तथा अग्रिम तिथि के पूज्या होने से (लंकाकाण्ड सर्ग १२६) यह सिद्ध होता है कि रामचन्द्र जी आश्विन में ही लौटे थे। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि आश्विन मास का विचार चान्द्रवर्ष के विचार पर आधारित है जिसमें कि सौर गणना से हर तीन साल पर एक मास से कुछ अधिक का समय (मलमास) बढ़ जाता है। कालिदास ने स्पष्ट रूप से इस सम्बन्ध में अपने कोई विचार नहीं दिये हैं। उसके ग्रन्थ से हमें केवल कुछ अनुमान ही प्राप्त हो सकता है।

त्रयोदश सर्ग का द्वितीय श्लोक 'शरत्प्रसन्नम् आकाशम्' का उल्लेख करता है जिससे कि यह अनुमान होता है कि कालिदास को आश्विन मास की यात्रा वाला विचार ही अभीष्ट है। कालिदास की उपमाओं से परिचित कोई भी व्यक्ति यह नहीं समझ सकता कि ग्रीष्म ऋतु में यात्रा करने वाला व्यक्ति शरद् ऋतु के आकाश का उल्लेख करेगा क्योंकि उसकी उपमाएँ समीपस्थ उपादानों पर ही निर्भर हैं, न कि दूर से कोई वस्तु लाकर पाठकों के सामने रखी गयी है। श्लोकसंख्या १६ में केतक पुष्प का उल्लेख भी आश्विन मास के मत को ही पुष्ट करता है। लेकिन इन सब तर्कों को हमें छोड़ देना पड़ता है जब हम श्लोकसंख्या ४१ पर आते हैं जिसमें कि पंचाग्न तपस्या करते हुए सुतीक्ष्ण ऋषि का वर्णन किया गया है। इस प्रकार की तपस्या केवल ग्रीष्म ऋतु में ही हो सकती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कालिदास चैत्र-वैशाख के मत को मानता है। श्लोकसंख्या ५३ में वटवृक्ष का उल्लेख किया गया है जो कि ग्रीष्म ऋतु में फलता है। इससे भी चैत्र वैशाख का मत ही पुष्ट होता है। अस्तु, निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

२३. त्रयोदश सर्ग का कालिदासः Satya Vrat Shastri Collection.

श्लोक सं० २ से १८ तक समुद्र का वर्णन किया गया है। १९ से २१

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तक आकाश के दृश्यों का वर्णन पाया जाता है। २२ में जनस्थान का वर्णन किया गया है। २३-२५ में रामचन्द्रजी द्वारा सीता के खोजने का वर्णन— २६-२६ में मालववत् पर्वत—३०-३२ में पम्पा सरोवर—३३ में गोदावरी— ३४-३५ में पंचवटी—३६-५२ में विभिन्न दृश्यों के साथ ऋषियों के आश्रमों का वर्णन तथा चित्रकूट (४७), मन्दाकिनी और (४८) तमाल वृक्ष का वर्णन (४३) । ५३ में वटवृक्ष—५४-५८ में गंगा-यमुना-संगम वर्णन—५६ में गुह का निवास स्थान—६०-६३ में सरयू का वर्णन—६४-६७ तक भरत का वर्णन । ६८-७८ में भरत के आश्रम से कुछ पूर्व पुष्पक विमान का उतरना और वहाँ भरत से सब का मिलना । जुलूस का चलना । ७६—में अयोध्या नगरी के निकट उपवन में सब का ठहरना । रावण की पूर्ण पराजय और मृत्यु के बाद सीताजी, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव तथा अन्य वानराधिपतियों के साथ पुष्पक विमान द्वारा लंका से अयोध्या तक की रामचन्द्रजी की यात्रा इस सर्ग में वर्णित की गयी है ।

२४. काव्य का नामकरण

‘रघुवंशम्’ नाम में ‘रघु’ शब्द ‘रघु’ के परिवार से संबद्ध राजाओं का वाचक है । रघूणां वंशः = रघुवंशः (षष्ठीतत्पुरुष) । रघुवंश शब्द का अर्थ हुआ राजाओं का वंश । लक्षणा द्वारा रघुवंशम् शब्द रघुराजाओं के वंश का वर्णन करने वाले महाकाव्य का वाचक है । चूँकि महाकाव्य शब्द नपुंसकलिंग है, इसलिए रघुवंश शब्द भी नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होता है । अभेदोपचार से दोनों को एक सा माना जाता है ।

महाकाव्य शब्द के आधार पर कुछ लोग रघुवंशम् की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं—रघूणां वंशः रघुवंशः, तम् अधिकृत्य कृतम् महाकाव्यं रघुवंशम् । रघुवंश + अण् । ‘अधिकृत्य कृते ग्रन्थे’ इस सूत्र द्वारा अण् प्रत्यय । ‘लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्’ इस वार्तिक द्वारा अण् का लोप । यद्यपि पारिभाषिक रूप से रघुवंश कोई आख्यायिका नहीं है, तथापि ‘आख्यायिकाभ्यो’ इस बहुवचन के आधार पर इस वार्तिक का यहाँ प्रयोग हो जाता है । यद्यपि इस प्रक्रिया से भी

रघुवंशम् शब्द बन जाता है, लेकिन यह प्रक्रिया कुछ क्लेशसाध्य है और भट्टोजी दीक्षित तथा अन्य वैयाकरणों द्वारा अस्वीकृत कर दी गयी है।

२५. काव्य की समीक्षा

रघुवंश काव्य के महाकाव्य होने में तो कोई मतभेद हो ही नहीं सकता। आधुनिक दृष्टिकोण से भी इस काव्य की समीक्षा करनी चाहिए। यद्यपि इसे महाकाव्य (Epic) कहा जा चुका है लेकिन रामचन्द्रजी के केन्द्रीय पात्र अथवा काव्य के नायक होने पर भी वस्तुतः यह महाकाव्य नहीं है। काव्य के केवल एक तिहाई भाग में रामचन्द्रजी का जीवनवृत्त पाया जाता है। पहिले के एक तिहाई में रामचन्द्रजी के चार पूर्वजों का इतिहास दिया गया है और अन्त के एक तिहाई भाग में रामचन्द्रजी के २४ वंशजों का इतिवृत्त पाया जाता है। सूर्यवंश दिलीप से ही प्रारम्भ नहीं होता है। कवि भी ऐसा नहीं मानता है। रामचन्द्रजी से पहिले कम से कम ३० पूर्वजों का इतिहास मिलता है। इसी तरह अग्निवर्ण के साथ ही सूर्यवंश भी समाप्त नहीं हो जाता है। संभवतः सात और राजा इस वंश में हुए। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रघुवंश पूरे परिवार का इतिहास प्रस्तुत नहीं करता है। जिन राजाओं का इतिहास दिया भी गया है, वह पूरा नहीं है। केवल ऐसी घटनाएँ वर्णित की गयी हैं जो किसी भी वंश के किसी भी राजा से संबद्ध हो सकती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि रघुवंश एक अर्धमहाकाव्य है और कालिदास नामक एक ऐसे कवि की रचना है जो कि संस्कृत से संबद्ध समस्त शास्त्रों का ज्ञाता है, जैसा कि उसके ग्रन्थों से पता चलता है।

भारतीय दृष्टिकोण से तो रघुवंश के एक निदोष काव्य होने में कोई सन्देह है ही नहीं। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने कथावस्तु की योजना के दृष्टिकोण से इसमें दोष निकाले हैं। काव्य का विषय ऐसा है कि मुख्य घटनाओं को क्रम-बद्ध करके कोई क्रमिक इतिवृत्त नहीं बनाया जा सकता। २६ राजाओं में से हर एक राज्य से विद्रोह हो जाता है और उसकी प्रजा नए राजा के अभिषेक के अवसर पर उसका जयनाद करती है। इस प्रकार के काव्य में कथावस्तु संगठित

हो ही कैसे सकती है। भाषा और शैली के सम्बन्ध में तो यह काव्य नितान्त निर्दोष ही है।

प्रो० कावेल (Cowell) ने लिखा है कि रघुवंश में (सर्ग ७, ५-१५) रघु को देखने के लिए एकत्रित हुई नगरस्त्रियों का कालिदास द्वारा किया गया चित्रण अश्वघोष के बुद्धचरित (सर्ग ३, १३-२४) से प्रभावित है। लेकिन उन्होंने अपने कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया है। यह बात निःसन्दिग्ध है कि अश्वघोष और कालिदास में भाषा और शैली का नितान्त साम्य है लेकिन इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। यदि कोई पाँचों महाकाव्यों को ले और उनसे समानान्तर अवतरण इकट्ठे करे तो भी यह सिद्ध नहीं हो सकता कि एक लेखक ने दूसरे का अनुकरण किया है। हमें यह न भूलना चाहिए कि संस्कृत एक परिनिष्ठित भाषा है। भावाभिव्यञ्जन के रूप और ढंग इसमें निर्णीत से हैं। कालिदास से बहुत पहिले ही इस प्रकार के नियम निर्धारित हो चुके थे। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अश्वघोष के बुद्धचरित और रघुवंश में समानान्तर वर्णन और विचार पाए जाते हैं। यों तो कुमारदास के जानकीहरण और कालिदास के रघुवंश में भी अधिक समानता है। अतः यह कहना नितान्त अनुचित है कि कालिदास ने, जिसके कि नाटक और काव्य सर्वोत्तम साहित्यिक कृतियों में गिने जाते हैं, अश्वघोष का अनुकरण किया जिसकी कि रचनाएँ प्रत्येक दृष्टिकोण से सदोष हैं। हम यह भी नहीं कह सकते कालिदास ने अपने काव्य के किसी भी भाग के लिए अश्वघोष से प्रेरणा प्राप्त की। दूसरे, कालिदास और अश्वघोष का पौर्वापर्य भी अभी निश्चित नहीं हो सका है। संभव है कि अश्वघोष ही कालिदास को आदर्श मानकर चला हो।

जब से पाश्चात्य विद्वानों ने रघुवंश का अध्ययन किया, उनके द्वारा भी इसकी समीक्षा तथा परीक्षा हो चुकी है। प्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान् प्रो० ए० डब्ल्यू० राइडर ने निम्न शब्दों में इस काव्य की आलोचना की है—
रघुवंश एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें छोटी-छोटी स्वतन्त्र घटनाएँ पूर्ण कथावस्तु की अपेक्षा पाठक को अधिक प्रभावित करती हैं। कुछ अंशों में

यह बात सभी महाकाव्यों में पायी जाती है। इनियड (Aeneid) जो कि सर्वाधिक पूर्ण महाकाव्य है, नीरस स्थलों से शून्य नहीं है। अगर इनियड काव्य को हम छूट दे सकते हैं, तो कालिदास की कविताओं को भी हमें उदार दृष्टिकोण से देखना होगा। कालिदास की कविता में ऐसे आश्चर्यजनक बहुत से स्थल हैं जिनमें परस्पर उत्कृष्टता का निर्णय नहीं किया जा सकता। तीसरे सर्ग में रघु की बाललीलाओं का वर्णन, छठे में स्वयंवर, आठवें में अज का विलाप, नवम में दशरथ और श्रवण कुमार की कथा तथा सोलहवें में ध्वस्त नगर का वर्णन यह सब बड़े ही सुन्दर स्थल हैं। दस से पन्द्रह सर्ग तक राम की कथा महाकाव्य के अन्तर्गत एक अलग ही महाकाव्य कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त राम की कथा स्वयं बड़ी भावपूर्ण है और इसका उल्लेख मात्र बाल्यावस्था की भावपूर्ण स्मृतियों को उद्दीप्त कर देता है। एक अच्छे महाकाव्य की कथा में पाये जाने वाले सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। विभिन्न यात्राएँ, युद्ध, साहस के कार्य तथा मानवीय भावों का अतिमानवीय भावों से अन्तर्निश्चय तो इस काव्य में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त और भी कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। नायक और नायिका के चरित्र का वास्तविक विकास देखने में आता है। शिवजी के धनुष को तोड़कर सीताजी से विवाह करने वाले सुन्दर तथा कोमल-हृदय रामचन्द्रजी सीता के प्रति-प्रेम और प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य के बीच में फँसे हुए राजा रामचन्द्रजी से नितान्त ही भिन्न व्यक्ति हैं। अपने पिता के घर को नव वधू के रूप में छोड़ने के समय से लेकर पति द्वारा व्यक्त होने के समय तक पतिव्रता सीता का चरित्र एक लम्बी यात्रा जैसा है। प्रेम और नैतिकता का संघर्ष तथा अरण्य जीवन की साहस-पूर्ण कथा का राम की कथा में अन्तर्निश्चय एक अद्वितीय सौन्दर्य उपस्थित कर देता है। यह स्वाभाविक ही है कि किसी और कथा की अपेक्षा राम के साहसिक कार्यों की यह कथा हिन्दुओं द्वारा इतने प्रेम से पढ़ी जाती है। कालिदास मानवीय प्रेम के आनन्दमय स्वरूप का अमर गायक है। १५०० वर्ष पहिले भारतीयों के कानों में जिस प्रकार उसकी कविता गूँजती थी, उसी प्रकार अब भी हमारे कानों में उसका प्रेम-काव्य गूँजता है।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

श्रीरघुवंशम्

त्रयोदशः सर्गः

पुष्पक विमान द्वारा लंका से अयोध्या को चलते समय श्री रामचन्द्र जी समुद्र के कथानक और सौन्दर्य के सम्बन्ध में सीता जी से कहते हैं—

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ।

रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

सजी०—अथेति । अथ प्रस्थानानन्तरम् । जानातीति शः । “इगुपधज्ञा प्रीकिरः कः” इत्यनेन कप्रत्ययः । गुणानां ज्ञो गुणज्ञः । रत्नाकरादिवर्णैश्वर्य्य-गुणाभिज्ञ इत्यर्थः । स रामाभिधानो हरिर्विष्णुः शब्दो गुणो यस्य तच्छब्द-गुणमात्मनः स्वस्य पदं विष्णुपदम्, आकाशमित्यर्थः । “वियद्विष्णुपदम्” इत्यमरः । “शब्दगुणकमाकाशम्” इति तार्किकाः । विमानेन पुष्पकेण विगाहमानः सन् । रत्नाकरं समुद्रं वीक्ष्य मिथो रहसि । “मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि” इत्यमरः । जायां सीतामिति वक्ष्यमाणप्रकारेणोवाच । रामस्य हरिरित्यभिधानं निरङ्कुशमहिमद्योतनार्थम् । मिथोग्रहणं गोष्ठोविश्रम्भसूचनार्थम् ।

अन्वयः—अथ गुणज्ञः सः रामाभिधानः हरिः शब्दगुणम् आत्मनः पदम् विमानेन विगाहमानः (सन्) रत्नाकरम् वीक्ष्य मिथः जायाम् इति उवाच ।

हिन्दी अनुवाद—इसके अनन्तर गुणों को जानने वाले राम नामधारी उन भगवान् विष्णु शब्द गुण वाले आकाश में विमान द्वारा यात्रा

करते हुए समुद्र को देखकर एकान्त में अपनी पत्नी (श्री सीताजी) से इस प्रकार कहा ।

संस्कृत-भावार्थ—रावणवधानन्तरं लंकायाः निवर्तमानः श्रीजानकी-समेतः विष्णोरवतारः भगवान् श्रीरामचन्द्रः पुष्पकम् आरुह्य अयोध्यां प्रति आकाशमार्गेण आगच्छन् अधस्तात् विशालसमुद्रम् दृष्ट्वा स्वप्रियतमायाः श्रीसीतायाः मार्गखेदम् अपनेतुम् मनोविनोदाय च रहसि एतत् अकथयत् ।

व्याख्या—अथ = एतदनन्तरम् । गुणज्ञः—जानाति इति ज्ञः । श + अ (क) प्रत्ययः । गुणानाम् ज्ञः = गुणज्ञः = गुणग्राही = गुणों का जानने वाला अथवा गुणों की प्रशंसा करने वाला । श धातु से कर्ता के अर्थ में क (अ) प्रत्यय द्वारा ज्ञ शब्द, फिर गुण शब्द से षष्ठी तत्पुरुष द्वारा गुणज्ञ शब्द बनता है । 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इस पाणिनीय सूत्र से 'ज्ञ' शब्द सिद्ध होता है । रामाभिधानः = रामः अभिधानम् यस्य सः = रामाभिधानः (बहुव्रीहि-समास) = रामनामकः = राम नाम वाला । हरिः = विष्णुः । राम की अतुलनीय महिमा व्यक्त करने के लिए यह शब्द प्रयुक्त किया गया है । शब्दगुणम् = शब्दः गुणः यस्य तत् = शब्दगुणम् (द्वितीयान्तम्) = शब्द-गुणकम् = शब्दगुण वाले । आत्मनः पदम् = आकाशम् । आत्मनः पदम् का शब्दार्थ 'विष्णु का पद' होता है । यहाँ आकाश से तात्पर्य है । 'वियद् विष्णुपदमाकाशम्' इति अमरकोषः । विमानेन = पुष्पकेण देवयानेन । विगाहमानः = प्रविशन् प्रविचलन् वा । वि + गाह् + आन शानच् = विगाहमान । आत्मनेपदी धातुओं से शानच् प्रत्यय होता है और शानच् का आन कहीं-कहीं मान में बदल जाता है । रत्नाकरम् = रत्नानाम् मणिमुक्तानाम् आकरः = रत्नाकरः समुद्रः तम् = रत्नाकरम् = समुद्रम् । वीक्ष्य = दृष्ट्वा वि + ईच् + य (ल्यप्) = वीक्ष्य । मिथः = रहसि = एकान्त में । यह शब्द एक अव्यय है । 'मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि' इति अमरः । राम और सीता के वार्तालाप की गोपनीयता प्रकट करता है । जायाम् = जायते अस्याम् इति बाया, ताम् जायाम् = पत्नीम् । जन् धातु से युक्त कृत्याय द्वारा जाया शब्द सिद्ध होता है । ऐहिक-मात्रा-पर-जाया शब्द ही अपनी पत्नी के गर्भ से पुत्र

रूप में उत्पन्न होता है। मनु का कथन है—‘पतिर्मायां संप्रविश्य गर्भो भूत्वे ह जायते। जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥’ आत्मा वै जायते पुनः—इस श्रुति में भी यही बात कही गई है। इति = एतत्प्रकारेण = इस तरह। उवाच = अबोचत्। यह क्रियापद है। √ब्रू धातु से लिट् लकार में प्रथम पुरुष के एकवचन का रूप है। इस क्रिया का ‘हरिः’ कर्ता है।

टिप्पणी—अथ—यह शब्द एक अव्यय है। अथ और अथो—इन शब्दों के विभिन्न अर्थ इस प्रकार हैं—अथोऽथ स्यातां समुच्चये। मङ्गले संशयारम्भाधिकारान्तरेषु च। अन्वादेशे प्रतिज्ञायां प्रश्नसाकल्ययोरपि। इस श्लोक में यह शब्द दो अर्थ रखता है। प्रथम तो समुच्चय का अर्थ है। द्वादश सर्ग की कथा को त्रयोदश सर्ग की कथा से जोड़ता है तथा ‘तव’ या ‘उसके बाद’ यह अर्थ रखता है। दूसरा अर्थ मंगल या कल्याण है। इस सर्ग में रामचन्द्र जी के जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हो रहा है। अतः मंगलार्थक शब्द का प्रयोग उचित ही है। साहित्य-शास्त्र के अनुसार काव्य के आदि, मध्य और अन्त में मंगलाचरण होना चाहिए। साहित्य-शास्त्रियों ने अथ शब्द को मंगलवाची माना भी है। विभिन्न आर्ष ग्रन्थों में अथ शब्द का पूर्व प्रयोग पाया जाता है। यद्यपि स्वरूपतः इस शब्द के मंगलवाची होने का कोई तर्क नहीं है, फिर भी निम्नश्लोक इस शब्द को मांगलिक बतलाता है—ओंकारश्चाथ-शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तेन मांगलिकाबुधौ ॥ ‘शब्दगुणमात्मनः पदम्’ में न्यायदर्शन का एक प्रमुख सिद्धान्त पाया जाता है। नैयायिकों ने आकाश की परिभाषा ही इस प्रकार की है—शब्दगुणकमाकाशम्। अर्थात् आकाश वह पदार्थ है जिसमें कि गुण रूप से शब्द रहता हो। चूँकि रामचन्द्र जी विष्णु के अवतार हैं, इसलिए वे भी विष्णु के समान आकाश में स्वच्छन्द घूमने का अधिकार रखते हैं।

वाच्य-परिवर्तनम्—अथ गुणशेन तेन रामाभिधानेन हरि णा शब्दगुणम् आत्मनः पदम् विमानेन विगाहमानेन (सता) रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः जाया इति ऊचे। अत्र कर्तृवाच्यत्वं किं वाच्यं किं वाच्यं किं वाच्यं।

२—श्री रामचन्द्रजी अपने सेतु द्वारा विभक्त समुद्र को देखने के लिए सीता जी से कहते हैं—

वैदेहि पश्यामलयाद् विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।

छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥ २ ॥

सञ्जी०—वैदेहीति । हे वैदेहि सीते ! आ मलयान्मलयपर्यन्तम् । “पञ्चम्यपाङ्परिभिः” इति पञ्चमी । पदद्वयं चैतत् । मत्सेतुना विभक्तं द्विधाकृतं, अत्यायतसेतुनेत्यर्थः । हर्षाधिकाञ्च मदग्रहणम् । फेनिलं फेनवन्तम् । “फेनादिलच्च” इतीलच्प्रत्ययः । क्षिप्रकारी चायमिति भावः । अम्बुराशिम् । छायापथेन विभक्तं शरत्प्रसन्नमाविष्कृतचारुतारमाकाशमिव पश्य मम महानयं प्रयासस्त्वदर्थं इति हृदयम् । छायापथो नाम ज्योतिश्चक्रमध्यवर्ती कश्चित्तिर-श्चीनोऽवकाशः ।

अन्वयः—हे वैदेहि ! आ मलयात् मत्सेतुना विभक्तम् फेनिलम् अम्बुराशिम् छायापथेन (विभक्तम्) शरत्प्रसन्नम् आविष्कृतचारुतारम् आकाशम् इव पश्य ।

हिन्दी अनुवाद—हे सीते ! छायापथ के द्वारा विभाजित, शरत् ऋतु के द्वारा शोभायमान और सुन्दर ताराओं से युक्त आकाश के समान रमणीय इस समुद्र को देखो, जो कि मलय पर्वत तक मेरे सेतु से विभक्त किया हुआ है और जिसमें यत्र तत्र फेनराशि उमड़ रही है ।

संस्कृत-भावार्थ—हे सीते ! लंकागमनाय मन्निर्मितेन सेतुना मलयपर्वत-पर्यन्तम् द्विधाकृतम् फेनयुक्तम् इमम् समुद्रम् त्वम् अवलोकय । अयम् खलु समुद्रः आकाशगंगया विभाजितम् शरत्कालीनम् मेघनिर्मुक्तम् सुन्दरनक्षत्रबहुलम् नीलमाकाशमिव शोभते ।

व्याख्या—वैदेहि = विदेहस्य गोत्रापत्यं स्त्री इति वैदेही (विदेह + इञ् + ङीप्), तस्याः सम्बोधने हे वैदेहि = अयि जनकनन्दिनि ! आ मलयात् = मलयात् आ = मलयपर्यन्तम् = मलयपर्वत उत्तमोत्तम से आ (आङ्) के योग में “पञ्चम्यपाङ्परिभिः” इस सूत्र से पञ्चमी विभक्ति यहाँ हो गई है । इस

सूत्र का अर्थ यह है कि अप, आङ्, परि इन उपसर्गों के योग में संबद्ध शब्द में पञ्चमी विभक्ति होती है। आ (आङ्) उपसर्ग यहाँ 'जितना दूर हो उतना' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मलयात् आ का अर्थ है—मलयपर्वत के समान दूर तक। आ उपसर्ग 'तक' और 'से' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। आ मलयात् यह दो पद हैं, न कि एक समस्त पद। मत्सेतुना = मम सेतुः = मत्सेतुः तेन = मत्सेतुना। यद्यपि अस्मद् शब्द के एकवचन का प्रयोग गर्व का सूचक होता है, लेकिन यहाँ पर मत् शब्द गर्व का सूचक नहीं है। अपने हर्ष के अतिरेक को व्यक्त करने के लिए ही रामचन्द्र जी मत् शब्द का प्रयोग करते हैं। वे सीता जी को बतलाना चाहते हैं कि उन्होंने उन्हें (सीता जी को) रावण के फन्दे से छुड़ाने के लिए समुद्र पर पुल तक बाँधा है। फेनिलम् = फेनवन्तम् = फेनयुक्त। फेनानि अस्य संजातानि सः फेनिलः तम् = फेनिलम्। फेन शब्द से 'फेनादिलच्' इस सूत्र से इलच् प्रत्यय हो गया है। अम्बुराशिम् = अम्बूनां राशिः अम्बुराशिः तम् अम्बुराशिम् = समुद्रम् = जलधिम्। छायापथेन—छायायाः पन्थाः = छायापथः तेन छायापथेन = आकाशगंगा के द्वारा। शरत्प्रसन्नम् = शरदा प्रसन्नम् = शरत्निर्मलम् = मेघमुक्तं वा शरद् ऋतु के द्वारा रमणीय अथवा मेघों से मुक्त। आविष्कृत-चारुतारम् = आविष्कृताः चारवः ताराः यस्मिन् तत् आविष्कृतचारुतारम् = प्रकटीकृतमनोहरनक्षत्रम् = प्रकट हो रहे हैं सुन्दर नक्षत्र जिसमें अर्थात् सुन्दर नक्षत्रों से युक्त। आविस् + कृ + क्त = आविष्कृत, आविस् एक अव्यय है। 'स्पष्ट', 'प्रकट' तथा 'नेत्रों के सामने' इन अर्थों में प्रयुक्त होता है। अस् + भू, कृ इन धातुओं के पूर्व में प्रायः यह लगता है। यहाँ पर कृ के पूर्व में लगा हुआ है। आविष्कृत—पूरे पद में बहुव्रीहि समास है। पश्य—क्रियापद है। लोट्लकार मध्यम पुरुष एकवचन में कृष् धातु से बना है। इसका कर्ता 'त्वम्' है और कर्म 'अम्बुराशिम्' है।

टिप्पणी—वैदेहि—वसिष्ठ ऋषि के शाप से निमि नाम का एक सूर्यवंशी राजा शरीररहित हो गया था। तब से वह विदेह कहलाने लगा और उसके वंशज वैदेह कहलाये। मलय—भारतवर्ष के सुदूर दक्षिण में स्थित एक पर्वत

सूत्र का अर्थ यह है कि अप, आङ्, परि इन उपसर्गों के योग में संबद्ध शब्द में पञ्चमी विभक्ति होती है। आ (आङ्) उपसर्ग यहाँ 'जितना दूर हो उतना' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मलयात् आ का अर्थ है—मलयपर्वत के समान दूर तक। आ उपसर्ग 'तक' और 'से' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। आ मलयात् यह दो पद हैं, न कि एक समस्त पद। मत्सेतुना = मम सेतुः = मत्सेतुः तेन = मत्सेतुना। यद्यपि अस्मद् शब्द के एकवचन का प्रयोग गर्व का सूचक होता है, लेकिन यहाँ पर मत् शब्द गर्व का सूचक नहीं है। अपने हर्ष के अतिरेक को व्यक्त करने के लिए ही रामचन्द्र जी मत् शब्द का प्रयोग करते हैं। वे सीता जी को बतलाना चाहते हैं कि उन्होंने उन्हें (सीता जी को) रावण के फन्दे से छुड़ाने के लिए समुद्र पर पुल तक बाँधा है। फेनिलम् = फेनवन्तम् = फेनयुक्त। फेनानि अस्य संजातानि सः फेनिलः तम् = फेनिलम्। फेन शब्द से 'फेनादिलच्च्' इस सूत्र से इलच् प्रत्यय हो गया है। अम्बुराशिम् = अम्बूनां राशिः अम्बुराशिः तम् अम्बुराशिम् = समुद्रम् = जलधिम्। छायापथेन—छायायाः पन्थाः = छायापथः तेन छायापथेन = आकाशगंगा के द्वारा। शरत्प्रसन्नम् = शरदा प्रसन्नम् = शरत्निर्मलम् = मेघमुक्तं वा शरद् ऋतु के द्वारा रमणीय अथवा मेघों से मुक्त। आविष्कृत-चारुतारम् = आविष्कृताः चारवः ताराः यस्मिन् तत् आविष्कृतचारुतारम् = प्रकटीकृतमनोहरनक्षत्रम् = प्रकट हो रहे हैं सुन्दर नक्षत्र जिसमें अर्थात् सुन्दर नक्षत्रों से युक्त। आविस् + कृ + क = आविष्कृत, आविस् एक अव्यय है। 'स्पष्ट', 'प्रकट' तथा 'नेत्रों के सामने' इन अर्थों में प्रयुक्त होता है। अस्, भू, कृ इन धातुओं के पूर्व में प्रायः यह लगता है। यहाँ पर कृ के पूर्व में लगा हुआ है। आविष्कृत—पूरे पद में बहुव्रीहि समास है। पश्य—क्रियापद है। लोट्लकार मध्यम पुरुष एकवचन में, ण् धातु से बना है। इसका कर्ता 'त्वम्' है और कर्म 'अम्बुराशिम्' है।

टिप्पणी—वैदेहि—वसिष्ठ ऋषि के शाप से निमि नाम का एक सूर्यवंशी राजा शरीररहित हो गया था। तब से वह विदेह कहलाने लगा और उसके वंशज वैदेह कहलाये। मलय—भारतवर्ष के सुदूर दक्षिण में स्थित एक पर्वत

का नाम । लंका को भारत से मिलाने वाला सेतु अवश्य ही मलय पर्वत की तरह अत्यन्त विस्तृत रहा होगा । छायापथेन = शरत् और वसन्त में आकाश में दिखलाई पड़ने वाले तिरछे तथा नक्षत्रबहुल अवकाश को छायापथ कहते हैं । इस श्लोक में उपमा अलंकार है । समुद्र का उपमान आकाश है । सेतु का छायापथ और फेनों का तारागण उपमान हैं । आकाश का विशेष शरत्प्रसन्नम् बड़ा ही उपयुक्त है । एक ओर यह आविष्कृतचारुतारम् का हृदय प्रस्तुत करता है और दूसरी ओर आकाश की नीलिमा सूचित करते हुए समुद्र के साथ उसकी उपमा को पुष्ट करता है ।

वाच्यपरिवर्तनम्—वैदेहि ! आमलयात् मत्सेतुना विभक्तः फेनिलः अम्बुराशिः छायापथेन (विभक्तम्) शरत्प्रसन्नम् आविष्कृतचारुतारम् आकाशम् इव (त्वया) दृश्यताम् ।

३ हमारे पूर्वजों द्वारा समुद्र को यह विस्तृत रूप दिया गया है—

गुरोरियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरङ्गे ।

तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः ॥ ३ ॥

सञ्जी०—गुरोरिति । यियक्षोर्यष्टुमिच्छोः । यजेः सन्नन्तादुप्रत्ययः । गुरोः सगरस्य मेध्येऽश्वः मेधाहं तुरङ्गे हयै कपिलेन मुनिना रसातलं पातालं संक्रमिते सति तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः खनन्निर्नोऽस्माकं पूर्वैः वृद्धैः सगरसुतैरयमग्निः परिवर्धितः किल । किलेत्यैतिह्ये । अतो नः पूज्य इति भावः । यद्यपि तुरङ्गहारी शतक्रतुस्तथापि तस्य (तुरंगस्य) कपिलसमीपे दर्शनात् स एवेति तेषां भ्रान्तिः । तन्मात्रं कविना कपिलेनेति निर्दिष्टम् ।

अन्वयः—यियक्षोः गुरोः मेध्ये तुरंगे कपिलेन रसातलं संक्रमिते (सति तदर्थम् उर्वाम् अवदारयद्भिः नः पूर्वैः अयं परिवर्धितः किल ।

हिन्दी अनुवाद—ऐसी कथा है कि यज्ञ करने के लिए उत्सुक किसी पूर्वज के यज्ञीय घोड़े के कपिल द्वारा पाताल में ले जाए जाने पर उसके (घोड़े के)

मिथ्यत्वः

यद्युक्तिर्यथैति इति मिथ्यत्वमिति
(मज्ज + सन्) । मिथ्यत्वं हे
स नाशं स्वमिति इति उः । इति
पाणिनिनिरूपण से उ प्रत्यय
हुङ्गा । अर्थ - यथा करने की
इच्छा वाला, यथा करने
को उत्सुक ।

तदर्थम्

तस्मै इदम् इति तदर्थम्
अस्वप्न विग्रह सागरा चतुष्पा
तत्पुरुषसमास ।

नः = अस्मान्मय = हमारे

पूर्वैः = पूर्वजों ने, पुरखों ने ।

मेदमे = कावेत्, यथा

लिए पृथ्वी को खोदने वाले हमारे पूर्वजों ने यह समुद्र इस रूप में परिवर्धित किया ।

संस्कृतभावार्थ—हे वैदेहि ! यज्ञं कर्तुमुत्सुकस्य अस्माकं पूर्वजस्य सगरस्य यज्ञिये अश्वे कपिलमुनिना रसातलं नीते सति तस्य अश्वस्य अन्वेषणाय पृथिवीम् खनद्भिः अस्माकं पूर्वपुरुषैः सगरमुतैः एष समुद्र एतावान् विस्तृतीकृत इति श्रूयते ।

व्याख्या—यियत्तो = यष्टुम् इच्छति यियद्गति । यियद्गति इति यियद्गुः तस्य यियत्तो = यज्ञं कर्तुमिच्छोः = यागोद्यतस्य = यज्ञ करने के लिये उत्सुक ।
✓यज् धातु से इच्छा करने के अर्थ में सन् प्रत्यय होने पर ✓यियद्ग धातु बन जाती है । फिर ✓यियद्ग धातु से कर्ता के भाव में उ प्रत्यय लगाने पर यियद्गु (यज्ञ करने की इच्छा करने वाला) शब्द बनता है । 'सनाशंसमिच्छ उः' इससे उ प्रत्यय होता है । गुरोः = पितुः सगरस्य । गुरु शब्द यहाँ पर राजा भगीरथ के पूर्वज राजा सगर के लिए प्रयुक्त हुआ है । मेध्ये—मेधितुम् योग्यः मेध्यः तस्मिन् मेध्ये = यज्ञार्हं = पवित्रे । ✓मेध् धातु से य (ययत्) प्रत्यय लगाने से यह शब्द बना है । तुरंगे—तुरं गच्छति इति तुरङ्गः (तुरम् + गम् + खच् प्रत्ययः), तस्मिन् तुरंगे = अश्वे । ✓गम् धातु से खच् प्रत्यय होने पर वैकल्पिक रूप से गम् का म् लुप्त हो जाता है और इस प्रकार तुरङ्गम् शब्द भी देखने में आता है । रसातलम्—रसायाः वसुधायाः तलम् रसातलम् पातालम् । संक्रमिते = नीते = ले जाए जाने पर । सम् + क्रमि + क्त = संक्रमितः, तस्मिन् संक्रमिते । तदर्थम्—तस्मै इदम् = तदर्थम् = अश्वार्थम् । 'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्' इस वार्तिक से यहाँ समास हुआ है । उर्वीम् = पृथिवीम् । अवदारयद्भिः = खनद्भिः = खोदने वालों से । अव + दृ + णिच् + शत् = अवदारयत्, तृतीया बहुवचन—अवदारयद्भिः । नः = अस्माकम् = हमारे । अस्मद् शब्द को नस् आदेश हो गया है (बहुवचनस्य वसन्सौ) । पूर्वैः—पूर्वजैः, वृद्धैः सगरमुतैः । अयम् = समुद्रः । परिवर्धितः = वृद्धिम् गमितः । परि + वृध् + णिच् + क्त = परिवर्धितः = बढ़ाया । किल—यह एक

अव्यय है। यहाँ ऐतिह्य का वाचक है। रामचन्द्र जी का यह आशय है कि चूँकि यह समुद्र हमारे पूर्वजों का बढ़ाया हुआ है, अतः हम लोगों का पूजनीय है।

टिप्पणी—कपिलेन रसातलम् तुरंगे संक्रमिते—कपिल मुनि द्वारा रसातल में यज्ञीय अश्व के ले जाए जाने पर। पौराणिक कथा के अनुसार तो कपिल मुनि ने अश्व को नहीं चुराया, बल्कि इन्द्र ने ही यज्ञीय अश्व को कपिल मुनि के आश्रम के पास पाताल में बाँध दिया था। सम्पूर्ण कथा इस प्रकार है—सूर्यवंशी राजा सगर ने ६६ अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न समाप्त कर लिए। जब वे १०० वाँ अश्वमेध यज्ञ करने लगे, तब इन्द्र ने अपनी पदवी के छिन जाने के भय से उनके इस यज्ञ को पूर्ण न होने दिया और यज्ञीय अश्व को चुरा कर पाताल ले गए। वहाँ कपिल मुनि के आश्रम के पास ही उसे बाँध दिया। जब भूमण्डल पर कहीं भी अश्व न मिला, तब राजा सगर ने अपने ६०००० पुत्रों को सारी पृथिवी खोद डालने का आदेश दिया। पृथिवी के खोदे जाने पर पाताल लोक में कपिल मुनि के आश्रम के पास ही बाँधा हुआ अश्व दिखलाई पड़ा। राजकुमारों ने कपिल मुनि को ही चोर समझा और उद्दण्डतावश वे कपिल मुनि को ही बुरा-भला कहने लगे। कपिल मुनि ने क्रुद्ध होकर उन्हें कुपित दृष्टि से देखा और भस्म कर दिया। (रामायण, बालकाण्ड, अध्याय ३६-४०) इस कथा से यह स्पष्ट ही है कि कपिल मुनि वास्तव में चोर नहीं थे, फिर भी काव्य में कपिल मुनि को ऐसा बताया गया है। इसका कारण यही है कि सगर के पुत्रों के दृष्टिकोण से ही कवि ने ऐसा लिखा है। मल्लिनाथ भी अपनी व्याख्या में लिखते हैं—‘यद्यपि तुरंगहारी शतक्रतुस्तथाऽपि तुरंगस्य कपिलसमीपे दर्शनात् स एवेति तेषां भ्रान्तिः। तन्मत्यैव कविना कपिलेनेति व्यपदिष्टम्’। हेमाद्रि ने भी ऐसा ही समाधान किया है—‘यद्यप्यश्वस्य भूतलसंक्रमणमिन्द्रप्रयत्नकृतं तथापि कपिलान्तिके अश्वदर्शनात् अनेन हतोऽश्वः इति पूर्वेषां सागराणां बुद्धिमाश्रित्य कपिलेनेत्युक्तम्।’ इसके अतिरिक्त चरित्र-वर्धन नामक एक टीकाकार ने एक और प्रकार से भी व्याख्या की है। उसका कथन है कि ‘कपिल’ शब्द का अर्थ ‘इन्द्र’ भी होता है। ‘कपिलः कपिलो

दधाति = धा धातु (गुहोत्पा-
दिगण) के लार्ड उचम युद्ध
अहुं का रूप।

उशुवले | व्याप्त्यर्थक
उश (उश व्याप्तौ) धातु
{ हनो दिगण } का लार्ड
उं उं उं उं उं उं उं उं उं उं उं
का रूप।

उज्जनि विभार्ति - मरणावधि
मृधातु (गुहोत्पादिगण) का
लार्ड उं उं उं उं उं उं उं उं उं उं
का रूप।

उज्जनि - मरणावधि
का कर्मविध्य लार्ड उं उं उं उं
का रूप।

वर्णः कपिलः पाकशासनः' इति वैजयन्ती । यद्यपि यह व्याख्या अधिक कवित्वमय और सुन्दर है, फिर भी पूर्व व्याख्यान ही अधिक उपयुक्त है । "पूर्वः किलायं परिवर्धितो नः"—अश्व की खोज में राजा सगर के ६०,००० पुत्रों ने पृथिवी को खोद डाला । इसी से समुद्र का इतना विस्तृत रूप पाया जाता है ।

वाच्यपरिवर्तनम्—यियत्तोः गुरो मेध्ये तुरंगे कपिलेन रसातलम् संक्रमिते सति तदर्थम् उर्वाम् अवदारयन्तः नः पूर्वं इमम् (समुद्रम्) परिवर्धितवन्तः किल । यहाँ कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य में परिवर्तन किया गया है ।

४ रामचन्द्र जी समुद्र की महिमा का वर्णन करते हैं—

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद् विवृद्धिमत्राश्रनुवते वसूनि ।

अविन्धनं वह्निमसौ विभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्मनेन ॥ ४ ॥

सर्जी०—गर्भमिति । अर्कमरीचयोऽस्मादब्धेरपादानान्गर्भमम्भयं दधति । वृष्टिर्धर्मित्यर्थः । अयमर्थो दशमसर्गो "ताभिर्गर्भं..." इत्यत्र स्पष्टीकृतः । अयं लोकोपकारीतिभावः । अत्राब्धौ वसूनि धनानि । 'धने रत्ने वसु स्मृतम्' इति विश्वः । विवृद्धिमश्रुवते प्राप्नुवन्ति, संपद्धानित्यर्थः । असावाप इन्धनं दाह्यं यस्य तद्दाहकं वह्निं विभर्ति, अपकारेऽप्याश्रितं न त्यजतीति भावः । अनेन प्रह्लादनमाहादकं ज्योतिश्चन्द्रोऽजनि जनितम् । जनेर्यन्तात्कर्मणि लुङ् सौम्य इति भावः ।

अन्वयः—अर्कमरीचयः अस्मात् गर्भम् दधति । अत्र वसूनि विवृद्धिम् अश्रुवते । असौ अविन्धनं वह्निम् विभर्ति । अनेन प्रह्लादनम् ज्योतिः अजनि ।

हिन्दी अनुवाद—सूर्य की किरणों इससे गर्भ धारण करती हैं अर्थात् समुद्र से ही जलरूप गर्भ को धारण कर सूर्य की किरणों वर्षा रूप से पृथ्वी पर उसे छोड़ती हैं, विभिन्न रत्न और मणियाँ समुद्र में ही बढ़ती हैं; जल को घटाने वाला बाढ़वानल इसमें ही रहता है; संसार को आनाद करने वाली ज्योति अर्थात् चन्द्रमा को इसने ही उत्पन्न किया है ।

संस्कृत-भावाथ—अयं समुद्रः अतीव लोकोपकारी अस्ति, यतः सूर्यकिरण
अस्मादेव जलरूपं गर्भं गृहीत्वा भूमौ वृष्टिं कुर्वन्ति । समुद्रस्य प्रभावादेव वसुधा
शस्यश्यामला भवति । असौ समुद्रः संपद्धानपि अस्ति । विविधानि धनानि
रत्नानि अत्र वर्धन्ते । असौ शरणागततरत्नकः अपि अस्ति । यः वाडवानलः जल-
न्यूनयति, तमपि असौ शरणागतवत्सलतया धारयति । सर्वलोकानन्ददायक-
चन्द्रः अस्मादेव संजातः । न केवलमयमेव परमस्य सुतोऽपि विश्वहिताय
प्रवर्तते ।

व्याख्या—अर्कमरीचयः—अर्कस्य मरीचयः = अर्कमरीचयः = सूर्यकिरणः
गर्भम् = जलमयम्; वृष्टिमिति यावत् । गर्भं को = अर्थात् जल को
दधति = धारयन्ति = धारण करते हैं । / धा धातु से लट् लकार के प्रथमपुरुष
का बहुवचन । अत्र = अस्मिन् सागरे । वसूनि = धनानि, रत्नानि वा । 'दे-
रत्ने वसु स्मृतम्' इति विश्वकोशः । विवृद्धिम् = परिपोषम् = बढ़ना । वि-
वृध् + ति = विवृद्धिः, ताम् विवृद्धिम् । अश्नुवते = प्राप्नुवन्ति = पाते हैं ।
/ अश् + नु + अन्ति = अश्नुवन्ति । असौ = अयम् समुद्रः । अविन्धनम्—
आपः एव इन्धनम् यस्य सः, तम् अविन्धनम् = उदकदाहकम् । वह्निम्—
वाडवानलम् । विभर्ति = पोषयति । पालन करता है । / भृ धातु (जुहोत्यादिगण)
लट् लकार में प्रथमपुरुष का एकवचन । अनेन = एतेन समुद्रेण ।
प्रह्लादनम्—आनन्ददायकम् आनन्द देने वाला । प्रह्लादनं उद्योतिः = चन्द्रः ।
अजनि = जनितम् । / ज् + शिच् + लुङ्लकारस्य प्रथमपुरुषस्य एकवचनम्
कर्मवाच्ये ।

टिप्पणी—गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्मात्—समुद्र का जल सूर्य की किरणों
से बाष्परूप में परिणत होकर पृथ्वी पर वृष्टि के रूप में गिरता है । इस भौतिक
प्रक्रिया को गर्भधारण की प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया है । समुद्र पति है,
सूर्य की किरणें पत्नी हैं और वर्षा का जल ही गर्भ है । विवृद्धिमत्राश्नुवते
वसूनि—रत्न और मोती इत्यादि समुद्र में उत्पन्न होते हैं और उसी में बढ़ते
हैं । इसीलिए समुद्र को (सर्व) धन कहते हैं । अविन्धनं वह्निमसौ विभर्ति—

प्रतिपद्यमानम् = दिवादिगण-
 नी पद धातु का कति उपसर्ग
 के साथ शान्त जन्तु रूप।
उल्लव धारणीयम् = दुर्निर्ल-
 ष्यम् । अहा हा हा नही
 आरु चला ।

वाङ्मनल समुद्र में ही रहता है। यह अग्नि जल से शान्त होने के बजाय बढ़ती ही रहती है। जल के अन्दर की अग्नि वास्तव में कुछ प्राकृतिक कारणों से (ज्वालामुखी के विस्फोटों से) जलती रहती है। प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन—देवताओं और दैत्यों द्वारा समुद्र के मन्थन किए जाने पर चौदह रत्नों में से एक चन्द्रमा भी निकला था। यही कथा यहाँ पर उल्लिखित की गई है।

वाच्यपरिवर्तनम्—अकर्मरीचिभिः अस्मात् गर्भः धीयते, अत्र वसुभिः विवृद्धिः अश्यते, अमुना अभिन्धनम् वह्निः भ्रियते; (कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य) अयम् प्रह्लादनं ज्योतिः अजीजनत्। कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य।

५. विष्णु की तरह समुद्र भी रूप और परिमाण में बुद्धिगम्य नहीं है—

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना।

विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥ ५ ॥

सञ्जी०—तामिति। तां तामनेकाम्। “नित्यवीप्सयोः” इति वीप्सायां द्विरुक्तिः। अवस्थामक्षोभाद्यवस्थाम्। विष्णुपक्षे सत्त्वाद्यवस्थाम्। प्रतिपद्यमानं भजमानम् महिम्ना दश दिशो व्याप्य स्थितं विष्णोरिवास्य रत्नाकरस्य रूपमुक्तीत्या बहुप्रकारत्वाद् व्यापकत्वाच्चेदृक्तयेयत्तया वा प्रकारतः परिमाणतश्चानवधारणीयम् दुर्निरूपम्।

अन्वयः—ताम्-ताम् अवस्थाम् प्रतिपद्यमानम् महिम्ना दश दिशो व्याप्य स्थितम् विष्णोः (रूपम्) इव अस्य रूपम् ईदृक्तया इयत्तया वा अनवधारणीयम् (अस्ति)।

हिन्दी अनुवाद—अनेकानेक अवस्थाओं को प्राप्त करने वाले तथा अपनी शक्ति से दसों दिशाओं में व्याप्त भगवान् विष्णु के रूप की तरह इस समुद्र के भी रूप का आकार और प्रकार नहीं ज्ञातलाया जा सकता, क्योंकि यह भी अनेक अवस्थाओं में शान्त और लुब्ध पाया जाता है और विस्तार की दृष्टि से सब तरफ फैला हुआ है।

संस्कृतभावार्थ—यथा भगवान् विष्णुः सत्त्वरजस्तमसां विभिन्नाः दशाः भजते, यथा वा अक्षयिणी नदी सागरस्य भूमीकण्डोर्गङ्गादि रूपाणि धारयति,

तथैव एष समुद्रः कदाचित् उल्लसति, कदाचित् क्षुब्धो भवति, शुष्यति च कदाचित् । भगवान् विष्णुः स्वतेजसा (महिम्ना) दश दिशः (अखिल-ब्रह्माण्डम्) व्याप्य तिष्ठति । एवमेव समुद्रोऽपि स्वविस्तारेण (महिम्ना) सर्वत्र व्यापमानं वर्तते । अतः विष्णुसमुद्रयोः सादृश्यम् वर्तते । यथा विष्णोः रूपस्य प्रकारतः परिमाणतश्च निरूपणम् दुःशकम्, एवमेव समुद्रस्यापि विषये किमपि वक्तुं न शक्यते ।

व्याख्या—ताम्-ताम् = अनेकाम् । नैरन्तर्यं और बार-बार किसी बात के कहने में 'नित्यवीप्सयोः' इस सूत्र से द्वित्व हो जाता है । ताम्-ताम् का 'विभिन्न' या 'अनेक' अर्थ है । अवस्थाम् = दशाम् । समुद्र के पक्ष में क्षुब्ध और शान्त इत्यादि दशाएँ । विष्णु के पक्ष में सत्त्व, रजस् और तमस् अवस्थाएँ । अथवा अवतारभेद से मत्स्य, कूर्म, वराह और नारसिंह इत्यादि रूप । प्रतिपद्यमानम् = भजमानम् = प्राप्त करता हुआ । प्रति + पठ् + श्यन् (य) + शानच् प्रत्यय (आन) । पद्धातु दिवादि गणी और आत्मनेपदी है । महिम्ना—महतः भावः महिमा, तेन महिम्ना = तेजसा, विस्तारेण वा । महत् शब्द से इमनिच् (इमन्) प्रत्यय । यह शब्द संस्कृत में पुल्लिङ्ग है । व्याप्य = फैल कर । वि + आप् + ल्यप् (य) । स्थितम् = वर्तमानम् । स्थितम् = स्था + क्त (त) । ईदृक्तया—इदमिव दृश्यते इति ईदृक् । इदम् + दृश् + क्तिन् = ईदृश् । क्तिन् प्रत्यय का पूर्ण लोप और इदम् को ई आदेश । ईदृशः भावः = ईदृक्ता तया ईदृक्तया = स्वरूपतः, प्रकारेण वा । ईदृश् शब्द से भाववाचक तल् (ता) प्रत्यय । इयत्तया—इदं परिमाणमस्य इयान् । इदम् + वतुप् । व को घ और घ को इय आदेश । इदम् को ईश् आदेश और उसका लोप । इयतः भावः इयत्ता तया इयत्तया = एतावत्त्वेन, परिमाणतः । अनवधारणीयम्—अवधारयितुं योग्यम् = अवधारणीयम् । अव + धारि + अनीय । 'अर्हकृत्यतृचश्च' इस सूत्र से अनीय प्रत्यय । न अवधारणीयम् = अनवधारणीयम् = दुर्निरूप्यम् = वर्णन न किए जाने वाला । न शब्द से समास होने पर स्वरादि शब्दों के पूर्व न को अन हो जाता है ।

टिप्पणी—भगवान् विष्णु का वास्तविक स्वरूप और विशालता को कोई

भावि
 त्वं जाले शब्द नयुं सर लिङ्. मे अनुष्ठयत्व, ब्राह्मणत्व, शत्रित्व
 तलन्तं स्त्रियात् - तलन्त में टाय आयगा । (समूहार्थे)
 इयान् इयन्तोः इयन्तः

नामि उरु डा म्बुरु हसनेन

नामि उरु डा म्बुरु हसनेन
सहमी लतुरुष । नामि उरु डा म्बुरु हसनेन
उरु डा म्बुरु हसनेन ।

नामि उरु डा म्बुरु हसनेन उरु डा म्बुरु हसनेन
उरु डा म्बुरु हसनेन नामि उरु डा म्बुरु हसनेन
उरु डा म्बुरु हसनेन, उरु डा म्बुरु हसनेन
तेन नामि उरु डा म्बुरु हसनेन ।

संस्तुतमानः - स्तुत कर्मवान्
शान्तः ।

सं हस = स + ह + स
(बी) में [सं ह + स] हसनेन
किंति हसनेन उरु डा म्बुरु हसनेन
सुत उरु डा म्बुरु हसनेन
हो गया ।

Yogic trance

ठीक-ठीक नहीं समझ सकता; क्योंकि वे सत्त्व, रज, और तम की सहायता से अनेकानेक रूप धारण करते रहते हैं और अपनी महिमा तथा शक्ति से समस्त विश्व में व्याप्त हो रहे हैं। इसी प्रकार यह महान् समुद्र भी विभिन्न समयों पर विभिन्न रूप धारण करता है, कभी शान्त रहता है और कभी क्षुब्ध। इसके अतिरिक्त यह असीम भी है। दोनों ही अपने रूप और परिमाण की दृष्टि से बुद्धि से परे हैं।

वाच्यपरिवर्तनम्—ताम्-ताम् अवस्थां प्रतिपद्यमानेन, महिम्ना दश दिशः व्याप्य स्थितेन, विष्णोः इव अस्य रूपेण ईदृक्तया इयत्तया वा अनवधारणीयेन (भूयते)। कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तित।

६. प्रलय काल में भगवान् विष्णु समुद्र में ही शयन करते हैं—
दस प्रजापतियों में मुख्य ब्रह्मा

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते ॥ ६ ॥

सर्जी०—नाभीति। युगान्ते कल्पान्ते उचित्ता परिचित्तो योगाः स्वात्मनिष्ठैव निद्रेव निद्रा यस्य स पुरुषो विष्णुलोकान् भूर्भुवादीन् संहृत्य। नाम्नां प्ररूढं यदम्बुरुहं पद्मं तदासननेन तन्नाभिकमलाश्रयेण प्रथमेन धात्रा दक्षादीनामपि सप्त्रा पितामहेन संस्तूयमानः सन्। अमुमधिशेते अमुष्मिञ्छेत् इत्यर्थः। कल्पान्तेऽप्यस्तीति भावः।

अन्वयः—युगान्तोचितयोगनिद्रः पुरुषः लोकान् संहृत्य नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन प्रथमेन धात्रा संस्तूयमानः (सन्) अमुम् अधिशेते।

हिन्दी अनुवाद—एक चतुर्युगी के अन्त में प्रलय के समय योगनिद्रा में लीन होने वाले भगवान् विष्णु सब लोकों को अपने में विलीन करके (अपनी) नाभि से उत्पन्न कमल पर विराजमान प्रथम ब्रह्मा के द्वारा स्तुति किए जाते हुए इस समुद्र में ही शयन करते हैं।

संस्कृतभावार्थ—प्रलयकाले योगनिद्रामादाय स्वनाभिसमुत्पन्नकमलस्योपरि विराजमानेन ब्रह्मणा संस्तूयमानः भगवान् विष्णुः चतुर्दशभुवनानि स्वात्मनि।

विलीय अस्मिन्नेव समुद्रे शयनं करोति । एतादृशोऽस्य महिमा यत् समग्र-
प्रलयेऽपि अस्य नाशः न भवति, प्रत्युत भगवान् विष्णुरपि अत्रैव शरणं लभते ।
अतः परमपूज्यः खलु अयं समुद्रः ।

व्याख्या—युगान्तोचितयोगनिद्राः—योगरूपा निद्रा = योगनिद्रा = गम्भीर
ध्यान । युगानाम् अन्तः = युगान्तः । युगान्ते उचिता योगनिद्रा यस्य सः
युगान्तोचितयोगनिद्राः = कल्मान्तपरिचितयोगनिद्राः = चतुर्युगी के अन्त में
योगनिद्रा का अभ्यास करने वाले अर्थात् अपनी आत्मा में ही विश्राम करने
वाले । पुरुषः = विष्णुः । लोकान् = चतुर्दशभुवनानि = चौदह लोकों को ।
'लोकस्तु भुवने जने' इति अमरः । संहृत्य = आत्मनि विलीय । सम् + हृ + य
(ल्यप्) = संहृत्य = समेट कर । नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन—अम्बुनि रोहति
इति अम्बुरुहम् । अम्बु + रूह् + अ (क) प्रत्यय = कमलम् । 'इगुपधक्षा-
प्रीकिरः कः' इति क प्रत्ययः । आस्यते अस्मिन् इति आसनम् । आस् + यु
(ल्युट्) = स्थानम् । नाभ्याम् प्ररूढम् अम्बुरुहम् आसनम् यस्य सः
तेन = नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन = नाभिसमुत्पन्नकमलाश्रयेण । प्रथमेन धात्रा =
ब्रह्मणा = ब्रह्मा के द्वारा । संस्तूयमानः = प्रशस्यमानः = प्रशंसा किए जाते
हुए । सम् + स्तु + य + म् + आन = संस्तूयमान । सम् पूर्वक स्तु धातु से कर्म-
वाच्य में शानच् द्वारा उपलब्ध । अमुम् = समुद्रम् । अधिशेते = अत्र शयनं
करोति अथवा अमुम् अधिश्रयति । अधिपूर्वक शी धातु का आधार कर्म हो
जाता है । 'अधिशीड् स्थासां कर्म' इस सूत्र को देखिए ।

टिप्पणी—युगान्तोचितयोगनिद्राः—मुख्य रूप से प्रलय के दो भेद हैं—
(१) दैनन्दिन प्रलय अथवा अवान्तर प्रलय और (२) महाप्रलय । अवान्तर
प्रलय में जो कि ब्रह्मा की हर संध्या को होता है, केवल तीन लोक भूः, भुवः
और स्वः नष्ट हो जाते हैं । ब्रह्मा जी स्वयं परम ब्रह्म में विलीन रहते हैं ।
यह ब्रह्मा की सुतावस्था होती है (दे. भागवत ३, ८, १६) । फिर प्रातः-
काल ब्रह्मा के जागने पर उपर्युक्त तीनों लोकों में विष्णुः नवीन रूप से हो
जाती है । महाप्रलय में जो कि ब्रह्मा के हर सौ वर्ष बाद होता है, प्रत्येक वस्तु

पक्षच्छिदा = पक्षान् छिनत्ति
इति पक्षच्छिन्, तेन।

गोचमिदान्नगन्धाः = गोच-
मिदा ज्ञातः गन्धो येषां
ते गोचमिदान्नगन्धाः।

गन्ध- = गर्भ

ज्ञात = हत

गोचमिद = इन्द्र

शरणम = शरणे साधुः

इति शरणमः। शरण + घञ् (५)

शरणमः

(स्वयं ब्रह्मा भी) नष्ट हो जाता है । केवल पर ब्रह्म बच रहता है । पर ब्रह्म को ही दूसरे शब्दों में विष्णु, नारायण इत्यादि कहते हैं ।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के प्रलयों में परब्रह्म अर्थात् विष्णु समुद्र में शेषनाग पर विश्राम करते हैं और ब्रह्मा जागकर अथवा सर्वप्रथम उत्पन्न होकर भगवान् विष्णु की नवीन सृष्टि के लिए स्तुति करता है । सृष्टि के प्रारम्भ में जो कि ब्रह्मा के ५१वें वर्ष के प्रथम दिन होता है, विष्णु की नाभि से एक कमल निकलता है और ब्रह्मा जी स्वयं उस कमल से आविर्भूत होते हैं ।

ब्रह्मा का प्रत्येक दिन (रात्रि को छोड़कर) जो कि ४३२०,०००,००० मानव वर्षों के बराबर है, कल्प कहा जाता है । उनकी रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है । ब्रह्मा के दिन और रात में क्रमशः सृष्टि और प्रलय की यह प्रक्रिया अबाध रूप से चलती रहती है ।

योग-निद्रा—विचारों के केन्द्रीकरण, मन को रोकने तथा इसे शुद्ध अवस्था में रखने का नाम योग है । योग का मुख्य उद्देश्य है—ऐसे उपायों की शिक्षा देना जिनके द्वारा आत्मा परम ब्रह्म में पूर्ण रूप से मिलीन हो जाए । चूँकि विष्णु भगवान् वास्तव में सोते नहीं हैं इसलिए उस निद्रा को योगनिद्रा कहा गया है । प्रथमेन धाम्ना = हरिवंश पुराण के अनुसार ब्रह्मा दस हैं—

मरीचिरज्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।

भृगुर्वशिष्ठो दक्षश्च नारदो दशमस्तथा ॥

दश ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥

इन दस ब्रह्माओं को भी बनाने वाले प्रथम ब्रह्मा पितामह कहे जाते हैं ।

वाच्यपरिवर्तनम्—युगान्तोचितयोगनिद्रेण पुरुषेण लोकान् संहृत्य नाभिप्रसूढाभ्युरुहासनेन संस्तूयमानेन (सता) असौ अधिशय्यते । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ।

७. इन्द्र से सताए जाने पर सैकड़ों पर्वत इस समुद्र में आ छिपे हैं—

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीधराः ।

नृपा इवोपप्लविनः परम्यः धर्मात्तरं मध्यममाश्रयन्ते ॥ ७ ॥

सजी०—पच्छिदेति । पक्षच्छिदा गोत्रमिदन्द्रेण उभयत्र—‘सत्सूद्विष...’
इत्यादिना क्विप् । आत्तगन्धाः हृतगर्वाः । अभिभूता इत्यर्थः । “गन्धो गन्धक
आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः” इति विश्वः । “आत्तगन्धोऽभिभूतः स्यात्”
इत्यमरः । महीं धारयन्तीति महीध्राः पर्वताः । मूलविभुजादित्वात्कप्रत्ययः । शतं
शतं शतशः । शरण्यं रक्षणसमर्थमेतन् समुद्रम् । परेभ्यः शत्रुभ्य उपप्लविनो
भयवन्ती नृपा धर्मोत्तरं धर्मप्रधानं मध्यमम् मध्यभूपालमिव । आश्रयन्ते ।
‘अरेश्च विजिगीषीश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः’ इति “कामन्दकः” । आर्तबन्धुरिति
भावः ।

अन्वयः—पक्षच्छिदा गोत्रमिदा आत्तगन्धाः शतशः महीध्राः शरण्यम
एनम् परेभ्यः उपप्लविनः नृपाः धर्मोत्तरं मध्यमम् इव आश्रयन्ते ।

हिन्दी अनुवाद—पक्षों को काटने वाले इन्द्र से पराजित और तिरस्कृत
होकर सैकड़ों पर्वत शरणागतों की रक्षा करने वाले इस समुद्र का ठीक उसी
तरह सहारा लेते हैं जैसे कि शत्रुओं से उत्पीड़ित राजा किसी धर्मप्रधान मध्यस्थ
राजा का सहारा लेते हैं ।

संस्कृत-भावार्थ—अयं समुद्रः अतीव दयालुः शरणागतपालकश्च अस्ति ।
यदा इन्द्रः पर्वतानाम् पक्षान् छेत्तुम् प्रारभत, तदा तेन पीडिताः तिरस्कृताश्च
शतशः पर्वताः अस्य शरणमागताः, अनेन च स्वस्मिन् तान् निलीय तेषां
रक्षा कृता । पर्वतानामस्य समीपे आगमनम् एतादृशमेव यथा शत्रुभिः भयं
प्राप्नुवन्तः दुर्बलाः नृपाः धर्मनिष्ठम् कमपि तटस्थम् राजानम् शरणलाभाय
गच्छन्ति ।

व्याख्या—पक्षच्छिदा—पक्षान् छिनत्ति इति पक्षच्छिद् तेन पक्षच्छिदा=
पक्षच्छेदनकृता=पक्षों को काटने वाले । गोत्रमिदा—गाम् पृथ्वीं त्रायन्ते
इति गोत्राः, तान् भिनत्ति इति गोत्रमिद् तेन गोत्रमिदा=इन्द्रेण (पर्वत-
विदारकेण) । पक्षच्छिद् और गोत्रमिद् यह दोनों शब्द ‘सत्-सू-द्विष-दुह-दुह-
युज-विद-भिद-च्छिद-जि-नी-राजामुपसर्गोऽपि क्विप्’ इस सूत्र से कर्तृवाच्य में
क्विप् प्रत्यय द्वारा सिद्ध होते हैं । क्विप् प्रत्यय का पूर्ण लोप हो जाता है ।

आत्तगन्धाः—आत्तः अपहृतः गन्धः गर्वः येषां ते आत्तगन्धाः = हृतगर्वाः = तिरस्कृताः = पराजित और तिरस्कृत । ‘गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्ध-गर्वयोः’ इति विश्वकोषः । ‘आत्तगन्धोऽभिभूतः स्यात्’ इति अमरकोषः ।
शतशः—शतम् शतम् = शतशः = सौ सौ करके । शत शब्द से ‘संख्यैक-वचनान्च वीप्सायाम्’ इस सूत्र से वीप्सा अर्थ में शस् प्रत्यय हो गया है ।
महीध्राः = महीम् धरन्ति इति ते महीध्राः = पर्वताः = पृथिवी को धारण करने वाले । मही + √ धृ + क (अ) प्रत्ययः । ‘क प्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उप-संख्यानम्’ इस वार्तिक से क प्रत्यय द्वारा महीध्र शब्द सिद्ध होता है ।
शरण्यम्—शरणे साधुः = शरण्यः तम् = शरण्यम् = शरणागतवत्सलम् । शरण शब्द से ‘तत्र साधुः’ इस सूत्र द्वारा यत् प्रत्यय हो जाता है । शरण में आए हुए की रक्षा करने में समर्थ । एनम् = समुद्रम् । परेभ्यः = शत्रुभ्यः ।
उपप्लविनः = भयवन्तः = डरे हुए । उपप्लवः भयम् अस्ति येषां ते उपप्लविनः ।
 मतुप् प्रत्यय के अर्थ में उपप्लव शब्द से इन् प्रत्यय । ‘परेभ्यः’ में ‘भीत्रार्थानां भयहेतुः’ इस सूत्र से अपादान जैसा मानकर पंचमी विभक्ति हुई है ।
नृपाः = राजानः । धर्मोत्तरम्—धर्मः उत्तरो यस्य सः धर्मोत्तरः, तम् धर्मोत्तरम् = धर्मभूयिष्ठम् = धार्मिक । मध्यमम् = मध्यभूपालम् । इव । आश्रयन्ते = सहायतार्थं संश्रयन्ति । आ + √ श्रि + लट् प्र० पु० बहुवचन । तात्पर्य यह है कि यह समुद्र आर्त और पीड़ितों का रक्षक है ।

टिप्पणी—पद्च्छिदा—प्राचीन काल में पर्वतों के पंख हुआ करते थे और वे अचानक ही मनुष्यों के निवासस्थानों में पहुँचकर वहाँ सर्वनाश कर दिया करते थे । एक बार क्रुद्ध होकर इन्द्र ने उन पर अपने वज्र से प्रहार किया और बहुत से पर्वतों के पंख काट दिए । इसीलिए पद्च्छिद् और गोत्रभिद् जैसे विशेषण इन्द्र के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं । मैनाक तथा और भी कई पर्वत इन्द्र से बचकर समुद्र में छिप गए ।

धर्मोत्तरम् मध्यमम् भूपालम्—राजनीति में प्रायः १२ प्रकार के राजाओं का युद्ध के प्रसंग में वर्णन किया गया है—विजिगीषु, अरि, मित्र, अरि-मित्र,

मित्र-मित्र और अरि-मित्र-मित्र (सबसे आगे); पार्ष्णिग्राह, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्द और आक्रन्दासार (सबसे पीछे) मध्यम और उदासीन । इन राजाओं में मध्यम राजा वह राजा होता है जिसका राज्य अरि और विजिगीषु राजाओं के राज्यों के बीच में पड़ता हो तथा जो इन दोनों के संयुक्त बल से तो कम बल रखता हो लेकिन इनमें से प्रत्येक से अधिक बलशाली हो । दुर्बल राजा प्रायः ऐसे ही मध्यम राजा की शरण में जाते हैं बशर्ते कि यह मध्यम राजा दुष्टता न करे, इसकी सहायता से अपने शत्रुओं को जीत लेते हैं । वर्तमान उदाहरण में भी अधिक बलशाली इन्द्र के द्वारा पीड़ित होने पर पर्वतों ने समुद्र का आश्रय लिया है जहाँ कि इन्द्र का कुछ भी बल नहीं चल सकता ॥ ७ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—पक्षच्छिदा गोत्रभिदा आत्तगन्धैः शतशः महीध्रैः शरण्यः एषः परेभ्यः उपप्लविभिः नृपैः धर्मोत्तरः मध्यमः इव आश्रीयते । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ७ ॥

८. प्रलय काल में बढ़ा हुआ समुद्र का स्वच्छ जल पृथिवी का अवगुण्ठन बना था—

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः ।

अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ॥ ८ ॥

सर्जी०—रसातलादिति । आदिभवेन पुंसा आदिवराहेण रसातलात् प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः । कृतोद्वरणक्रियाया विवाहक्रिया च व्यज्यते । भुवो भूदेवतायाः प्रलये प्रवृद्धम् अस्य अन्वेः अच्छम् अम्भः मुहूर्तं वक्त्रावरणं लज्जारक्षार्थं मुखावगुण्ठनं बभूव । तदुक्तञ्च—“उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना” इति ।

अन्वयः—प्रलयप्रवृद्धम् अस्य अच्छम् अम्भः आदिभवेन पुंसा रसातलात् प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः भुवः मुहूर्तवक्त्राभरणम् बभूव ॥ ८ ॥

हिन्दी अनुवाद—प्रलयकाल में बढ़ा हुआ समुद्र का स्वच्छ जल आदि-वराह के द्वारा रसातल से ऊपर उठाई जाने वाली पृथ्वी का क्षणभर के लिए घूँघट बन गया ॥ ८ ॥

प्रमुखा = वृत्ता

प्रमुखोद्धरणक्रियाया

प्रमुखा उद्धरणक्रिया मर्यादा: सा

प्रमुखोद्धरणक्रिया तस्याः प्रमुखो-
द्धरणक्रियायाः।

उद्धरण = उद्धरण (मुख्यार्थ)

उद्धरण = उद्धरण = विचार
(इतिहासार्थ)

प्रलयप्रवृद्धम् - प्रलये

प्रवृद्धम् । स समी तत्पु

प्रवृद्धम् = अदा हुता

प्र + वृद्ध + त

अवकाशम् प्रामाण्यम्

(अवकाशतत्पु) मर्यादा

प्रामाण्यम् । मुद्रितं वचना -

महामुद्रितम्

अवकाशम् ।

संस्कृतभावार्थ—प्रलयकाले यदा आदिवराहः रसातलमग्न्याम् देवीम् वसुन्धराम् स्वदन्ताग्रे धृत्वा तामुपरि आनिनाय, तदा अस्य समुद्रस्य प्रलयोद्वेलितम् शुभ्रम् जलम् तस्याः वसुन्धरायाः मुखावगुण्ठनमिव क्षणम् शोभायमानम् बभूव । तदा देवा वसुन्धरा नवपरिणीता अवगुण्ठनवती सलज्जा वधूरिव प्रतीयते स्म ॥ ८ ॥

व्याख्या—प्रलयप्रवृद्धम्—प्रलये प्रवृद्धम्=प्रलयप्रवृद्धम्=कल्पावसानोद्वेलितम्=सृष्टि के अन्त में उमड़ा हुआ । प्रलय के समय समुद्र का उमड़ना और सारी पृथ्वी को जलमग्न कर देना सर्वविदित ही है । आदिभवेन—आदौ भवेन=आदिभवेन=सर्वप्रथमोत्पन्नेन । सबसे पहिले उत्पन्न हुए । आदिभवेन पुंसा=आदिवराहेण । रसातलात्=पातालात् । प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः—प्रयुक्ता उद्वहनस्य क्रिया यस्याः सा, तस्याः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः=कृतोद्वरणक्रियायाः=उद्धार की जाने वाली । उद्+वह्+ल्युट्=उद्वहनम् । प्र+युज्+क्त+टाप्=प्रयुक्ता । दे० विष्णुपुराण, १. ४.

ततः समुत्क्षिप्य धरा स्वदंष्ट्राया महावराहः स्फुटपद्मलोचनः ।

रसातलादुत्पलसन्निभः समुत्थितो नील इवाचलो महान् ॥

‘प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः’ इस पद के दो अर्थ हैं । प्रथम अर्थ—उठाना या धारण करना शब्दार्थ है । द्वितीय अर्थ—विवाह करना भी व्यक्त हो रहा है । भुवः=भूदेवतायाः । मुहूर्तवक्त्राभरणम्=वक्त्रस्य आभरणम्=वक्त्राभरणम्; मुहूर्त वक्त्राभरणम्=मुहूर्तवक्त्राभरणम्=मुहूर्त लज्जारक्षणार्थं मुखावगुण्ठनम् । बभूव ॥ ८ ॥

टिप्पणी—इस श्लोक में वराह अवतार के समय की स्थिति का उल्लेख किया गया है जब कि वराह भगवान् ने अपनी दंष्ट्रा के अग्रभाग पर पृथ्वी को रोक रखा था । पृथ्वी के ऊपर से चादर के रूप में गिरते हुए समुद्र के तलस्थ जल की नववधू के मुखावगुण्ठन से तुलना की गई है । पृथ्वी के सम्बन्ध में कहा भी गया है—

उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।

इसी क्रिया को यहाँ पर उद्वहन शब्द से कहा गया है। पृथ्वी के साथ-साथ वराह रूप में पृथ्वी के साथ विष्णु के विवाह की कथा भी कहो रही है। मुहूर्तम्—यह शब्द समय के लघुतम अंश का प्रायः वाच्य और साहित्य में विभिन्न स्थलों पर इसी अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है। लेकिन कभी-कभी दो घड़ी के विचार को प्रकट करने के लिए भी इसका प्रयोग हो है—‘मुहूर्तमल्पकालेऽपि घटिकाद्वितयेऽपि च’—इति शब्दार्णवः। अमर को अनुसार ३० मुहूर्त २४ घंटों के दिन-रात के बराबर होते हैं। वक्त्राभरणम्-मल्लिनाथ ने ऐसा ही पाठ माना है। इस पाठ के अनुसार ‘आभरणम् आभूषणवाची होते हुए भी अवगुणनवाची माना गया है। लेकिन वक्त्राभरणम्=वक्त्रातिरोधायकम् यह पाठ अधिक उपयुक्त और भावपूर्ण है। चरित्रवर्धन ने भी लिखा है—‘यथा पुरुषेण संपादितकरग्रहणक्रियाया योऽपि विवाहकाले सूक्ष्मवस्त्रेण मुखावगुण्ठनं भवतीति ध्वन्यर्थः’। टीकाकार हेमाद्रि लिखता है—‘विवाहकाले स्त्रीविवाहे च वधूमुखावगुण्ठनं क्रियते’ ॥ ८ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—प्रलयप्रवृद्धेन अस्य स्वच्छेन अभिसा आदिभवेन पुरुषात् रसातलात् प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः भुवः मुहूर्तवक्त्राभरणेन बभूवे ॥ कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ८ ॥

६. समुद्र और नदियाँ परस्पर आनन्द प्रदान करते हैं—

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरङ्गाधरदानदत्तः ।

अनन्यसामान्य-कलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः ॥ ६ ॥

सर्जी०—मुखेति । अन्येषां पंसां सामान्या साधारणा न भवतीति अनन्यसामान्या कलत्रेषु वृत्तिः भोगः यस्य स तथोक्तः । इममेवार्थम् प्रतिपादयति तरङ्ग एव अधरः तस्य दाने समर्पणे दत्तः चतुरः असौ समुद्रः मुखार्पणेषु प्रकृत्य सख्यादिप्रेषणं विना प्रगल्भाः घृष्टाः सिन्धूः नदीः । ‘सिन्धुः समुद्रे नद्या इति विश्वः । स्वयं पिबति पाययते च । तरङ्गाधरमिति शेषः । “न पादभ्याम् मू...” इत्यादिना पिबतेत्यन्तान्नित्यं परस्मैपदनिषेधः । ‘गतिबुद्धिः...’ इत्यादिसिन्धूनां कर्मत्वम् । दम्पत्योः युगापसरसुखादयमव्ययमन्यसाधारणमिति भावः ।

प्रवृत्ति प्रगल्भाः = प्रवृत्ता

प्रगल्भाः + तृतीया तत्पुं०

मुखार्पणेषु = मुख स्पर्पणेषु

मुखार्पणम् । षष्ठी तत्पुं०

तेषु मुखार्पणेषु ।

सिन्धूः = सिन्धु शब्द का

द्वितीया बहु० का रूप ।

तारङ्गाधरः तारङ्गाधरः ।

कर्मधारय । तारङ्गाधरस्य दानम्

तारङ्गाधरदानम् । षष्ठी तत्पुरुष

तारङ्गाधरदाने दक्षः तारङ्गाधर

दानदक्षः । सप्तमी तत्पुरुष ।

पायमति = पा धातु का

उपसर्ग लट् प्र० पुं० एङ्०

का रूप । = पिलाता है ।

अष्टमनेपदे । पा + अ

म् (युक्ते) = पा मि

पाणि + अ + ले = पायमति

अन्यः—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः तरङ्गाधरदानदत्तः असौ मुखार्पणेषु
प्रकृतिप्रगल्भाः सिन्धूः स्वयं पिबति पाययते च ।

हिन्दी अनुवाद—इस समुद्र का अपनी रमणियों के साथ भोग व्यापार
कुछ विलक्षण ही है । अपने तरङ्गरूपी अधरों को समर्पित करने में चतुर यह
समुद्र चुम्बन-व्यापार के लिए स्वयं ही अपना मुख बढ़ाने वाली नदियों का
अधरपान करता है और उन्हें भी अपना अधरपान कराता है ।

संस्कृतभावार्थ—प्राकृतः पुरुषः एकस्मिन् समये एकस्यामेव रमते, अयन्तु
युगपदेव अनेकाभिः नदीरूपिणीभिः नारीभिः सह विलसति । अत एव अस्य
रमणी-भोग-व्यापारः विलक्षणः कथ्यते । अयं समुद्रः चुम्बनकलायामपि अतीव
कुशलः वर्तते । समकालमेव नदीतरङ्गाधर-रसं पिबति, स्वतरङ्गाधराणां
रसं च ताम्यः ददाति ।

व्याख्या—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः—अन्येषां पुरुषाणाम् सामान्या
न भवति इति अनन्यसामान्या । कलत्रेषु वृत्तिः = कलत्रवृत्तिः । अनन्यसामान्या
कलत्रवृत्तिः यस्य सः = अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः = असाधारणरमणीभोग-
व्यापारः = स्त्रियों के साथ विलक्षण भोग व्यापार वाला । चरित्रवर्धन का भी
कथन है—‘अन्येषु पुरुषेषु बहूनां सुन्दरीणां समकालमधरखण्डनम् पायनं च
न सम्भवति’ इति अनन्यसाधारणत्वम् । कलत्रम् = पत्नी । यह शब्द सर्वदा
नपुंसकलिङ्ग रहता है । तरङ्गाधरदानदत्तः—तरंगाः एव अधराः तरंगाधराः
(कर्मधारयसमास) । तेषां दाने दत्तः तरङ्गाधरदानदत्तः = कल्लोलाधरसमर्पण-
चतुरः = लहर रूपी अधरों के दान में चतुर । ‘भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियाँ वीचिः’
इति श्रमरः । मुखार्पणेषु—मुखानाम् अर्पणेषु मुखार्पणेषु = आननदानेषु ।
प्रकृतिप्रगल्भाः = प्रकृत्या प्रगल्भाः = प्रकृतिप्रगल्भाः = सख्यादिप्रेषणं विनैव
स्वभावतः एव धृष्टाः । सिन्धूः = नदीः = नदियों को । ‘सिन्धुः समुद्रे नद्यां च’
इति विश्वः । स्वयं पिबति = तासाधरपानम् करोति । पाययते च = स्वतरङ्गा-
धरं ताम्यः पाययते । ✓ पा + णिच् = पायि । ✓ पायि + अ + त = पाययते ।
आत्मनेपद लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन । साधारणतया णिजन्त धातु से

क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर आत्मनेपद होता है (दे० 'णिचश्च' पाणिनि सूत्र १, ३, ७४), लेकिन 'निगणचलनार्थेभ्यश्च' इस पाणिनि सूत्र, १, ३, ८ के द्वारा यहाँ पाययति होना चाहिये था, क्योंकि 'भक्षण' और 'चलन' वाली धातुओं से यह सूत्र परस्मैपद कर देता है; फिर भी 'न पादभ्याङ्यामायसपरिमुह रुचि नृति वद वसः' इस सूत्र १, ३, ८६ के द्वारा परस्मैपद के निमित्त हो जाने पर आत्मनेपद ही हो गया है। इस सूत्र का अर्थ यह है— (पीना), दम्, आयम्, आयस्, परिमुह्, रुच्, नृत्, वद, और वस् धातुओं के श्यन्त होने पर उनके क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर आत्मनेपद ही होता है। सिन्धवः पिबन्ति, ताः समुद्रः प्रेरयति इति समुद्रः सिन्धूः पाययति इति पिबन्ति के कर्ता सिन्धवः को श्यन्तावस्था में कर्मभाव हो जाता है। दे० 'गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकर्मकाणामणि कर्ता स शौ' यह पाणिनि सूत्र इस सूत्र का अर्थ यह है कि 'गति, बुद्धि, प्रत्यवसान (भक्षण) (इस अर्थ वाली अन्य धातुएँ भी), शब्द कर्मक और अकर्मक धातुओं की शुद्ध अवस्था का कर्ता श्यन्त अवस्था में कर्म हो जाता है।

टिप्पणी—इस श्लोक में कवि ने नदियों को समुद्र की पत्नियाँ माना तथा आलंकारिक रूप से उन्हें समुद्र द्वारा चुम्बित किया जाता हुआ वर्णित किया है। मुखार्पणेषु में बहुवचन छन्द की आवश्यकता से नहीं आता है, बल्कि वर्षा ऋतु में प्रति वर्ष द्विगुणित प्रवाह के साथ नदियाँ अपने जल को छोड़ती हैं। इसी पौनः पुन्य को बताने के लिए मुखार्पणेषु में बहुवचन प्रयुक्त किया गया है।

वाच्य-परिवर्तनम्—अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिना तरङ्गाधरदानदक्षेण अत्र मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः सिन्धवः स्वयं पीयन्ते पाय्यन्ते च। कर्तृवाच्य कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है।

१०. डेल मछलियाँ समुद्र में फव्वारों का कार्य कर रही हैं—

ससत्वमादाय नदीमुखारुहः संवीर्यन्ते विधृताननत्वात्।

अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरुर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान् ॥ १० ॥

रन्ध्रः गुणपत् १३ व्यसं निमित्तं

इत्यदि १३ व्यसं गुणपत् १३ व्यसं निमित्तं

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

रन्ध्रः स रन्ध्रः । सैः ।

रन्ध्रः = धि + उ । १३ व्यसं निमित्तं

संज्ञा को स १३ देश गुणपत्

विनिर्वाणन्ति = वि उद्यमः

पूर्वक तन् धातु फाला

उद्यमः उद्यमः

संज्ञा न्वम् = संज्ञा न्वः = प्राणिनिः

संज्ञितम् । संज्ञा न्वं गुणपत् इत्य

विगृह्यते पूर्वक १३ व्यसं निमित्तं

नदी मुखं न्वम् = नदी न्वं

मुखं नदी मुखम् । पृथीतत्पुं

नदी मुखम् १३ न्वम् । पृथी

तत्पुं । नदी न्वं के मुखं के

जलको ।

१३ दास्य - १३ + दा + लम्

संमीलन्तः - सम् + मील + शत

उद्यमः उद्यमः

विनिर्वाणन्ति - विनिर्वाणन्ति

इति विनिर्वाणन्ति । पृथी

विनिर्वाणन्ति सम्भाव इति विनिर्वाणन्ति

नत्वम् । तस्य सम्भाव इत्यतः

इत्य प्राणिनि सूत्र से सम्भाव

में त्वं प्रत्यय गुणपत् । तस्मात्

विनिर्वाणन्ति सम्भाव = मुंह के

खुले होने के कारण

सञ्जी०—ससत्त्वमिति । अमी तिमयः । मत्स्यविशेषः । तदुक्तम्—अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनमायतः इति । विवृताननत्वात् व्यात्तमुखत्वात् हेतोः । आननानि विवृत्येत्यर्थः । ससत्त्वं मत्स्यादिप्राणिसहितं नदीमुखाम्भः आदाय सम्मीलयन्तः चञ्चुपुटानि संपद्यन्तः सरन्ध्रैः सन्तः शिरोभिः जलप्रवाहान् ऊर्ध्वं वितन्वन्ति । जलयन्त्रक्रीडासमाधिर्व्यज्यते ।

अन्वयः—अमी तिमयः विवृताननत्वात् ससत्त्वम् नदीमुखाम्भः आदाय सम्मीलयन्तः (सन्तः) सरन्ध्रैः शिरोभिः जलप्रवाहान् ऊर्ध्वं वितन्वन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—यह तिमि नामक बड़े-बड़े मत्स्य अपने खुले हुए बड़े-बड़े मुखों से जीवों सहित नदियों के मुहानों पर का जल पीकर (फिर) अपने मुखों को बन्द कर लेते हैं और तब अपने छिद्रों वाले सिरों के द्वारा जलप्रवाह को ऊपर की ओर फेंकते हैं ।

संस्कृतभावार्थ—इमे तिमिनामकाः महामत्स्याः स्वमुखानि विवृत्य विभिन्नजीवयुक्तम् नदीनां मुखेषु जलम् पीत्वा स्वमुखानि सम्मीलयन्ति, पुनश्च छिद्रमयैः स्वमस्तकैः जलधाराः ऊर्ध्वम् प्रसारयन्ति । तात्पर्यमिदम् यत् समुद्रे यत्र तत्र जलयन्त्रक्रीडाऽपि दृश्यते ।

व्याख्या—तिमयः = मत्स्यविशेषाः = एक प्रकार की मछलियाँ । सम्भवतः हेल मछली । मल्लिनाथ ने लिखा है—अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनमायतः । तिमि मछली का यह वर्णन बड़ा अत्युक्तिपरक प्रतीत होता है । विवृताननत्वात्—विवृतम् आननम् यस्य सः विवृताननः, तस्य भावः विवृताननत्वम् तस्मात् = विवृताननत्वात् = विवृतमुखत्वात् हेतोः = खुले मुख वाले होने के कारण । बहुव्रीहि समास के बाद भाववाचक त्व प्रत्यय । बाद में पञ्चमी विभक्ति । ससत्त्वम्—सत्त्वैः सहितम् = ससत्त्वम् = मत्स्यादिजीवसहितम् = मत्स्य आदि प्राणियों से युक्त । नदीमुखाम्भः—नदीनां मुखानि नदीमुखानि तेषाम् अभ्यः = नदीमुखाम्भः = सरित्सङ्गमजलम् = नदियों के मुहानों का जल । आदाय = गृहीत्वा, पीत्वा = लेकर अथवा पीकर । आ + दा + ल्यप् (य) = आदाय । सम्मीलयन्तः = चञ्चुपुटानि निमीलयन्तः = मुँह बन्द करते हुए ।

यहाँ 'आननानि' इस पद को शेष समझना चाहिए। सरन्ध्रैः—रन्ध्रैः सहितानि सरन्ध्राणि तैः सरन्ध्रैः = छिद्रसहितैः = छेद वाले। जलप्रवाहान् = वारिधाराः = फव्वारों को। वितन्वन्ति = प्रसारयन्ति। मल्लिनाथ ने लिखा है—जलयन्त्र-क्रीडासमाधिर्व्यज्यते। तात्पर्य यह है कि रामचन्द्र जी सीता जी को यह दृश्य इसलिए दिखाते हैं कि वे इस दृश्य को देखकर प्रसन्न हों।

टिप्पणी—समुद्र के जानवरों में हेल मछली सबसे बड़ी होती है। प्रायः यह मछलियाँ अपने विशाल मुखों में बहुत सारा पानी भर लेती हैं और पानी के साथ कई जानवर भी इनके मुखों में चले जाते हैं। फिर जानवरों को निगलने के लिए यह अपना मुँह बन्द कर लेती हैं। तब उनके मुखों के भीतर बन्द हुआ पानी उनके नासिकाद्वार से बलपूर्वक बाहर निकलता है और कृत्रिम फव्वारों की क्रिया का अनुकरण करता है। इस श्लोक में इसी दृश्य का वर्णन किया गया है।

अपनी यात्रा में, रामचन्द्र जी नवीन-नवीन दृश्य क्रमशः देख रहे हैं। समुद्र पर बनाए हुए अपने सेतु के बाद, वे उस पर साधारण दृष्टि डालते हैं। तदनन्तर नदियों के मुहानों पर पहुँचते हैं। इस प्रकार अपनी राजधानी पहुँचने तक मार्ग के प्रत्येक दृश्य का वर्णन किया जावेगा।

वाच्यपरिवर्तनम्—अमीभिः तिमिभिः विवृताननत्वात् ससत्त्वम् नदीमुखाम्भः आदाय (आननानि) सम्मीलयद्भिः (सद्भिः) सरन्ध्रैः शिरोभिः जलप्रवाहाः ऊर्ध्वम् वितन्वन्ते। कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है।

११ समुद्र में हाथियों जैसे नक्र इधर-उधर घूम रहे हैं—

मातंगनक्रैः सहस्रोत्पतद्भिर्भिन्नान् द्विधा पश्य समुद्रफेनान्।

कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणाचामरत्वम् ॥ ११ ॥

सञ्जी०—मातङ्गेति। सहस्रोत्पतद्भिः मातङ्गनक्रैः मातङ्गाकारैः ग्राहैः द्विधा भिन्नान् समुद्रफेनान् पश्य। ये फेनाः एषां जलमातङ्गनक्राणां कपोलेषु संसर्पितया संसर्पणेन हेतुना कर्णेषु चरणेषु चामरत्वम्।

मातङ्गः इव ननु इति मातङ्गः -
 ननु स्तैः । उपमितं च यथा -
 इतिः सा सा न्मा उपो गे ते
 कर्मधारय समास (उप) ।
 समुत्पेक्षान् = समुत्पेक्ष
 पेक्षा इति समुत्पेक्षा स्तोत्र

ये
वि
फे
के
म
फे
उ
उ
ग
ध
'स
क
ग
(
स
क
क
शौ
रा
में
प्र

अन्यः—सहसा उत्पतद्भिः मातङ्गनक्रैः द्विधा भिन्नान् समुद्रफेनान् पश्य ।
ये एषाम् कपोलसंसर्पितया कर्णक्षणाचामरत्वम् व्रजन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—यकायक ऊपर को उछलते हुए और हाथियों के समान विशाल इन मगरों द्वारा बीच से विभक्त किए गए समुद्र-फेनों को देखो । ये फेन इन मगरों के कपोलों के पास जाकर उनके कर्णों के आस पास क्षण भर के लिए चामरों की शोभा को धारण करते हैं ।

संस्कृतभावार्थ—हे सीते ! सहसा ऊर्ध्वम् उद्गच्छद्भिः गजाकारैः एभिः मक्रैः द्विधा विभक्तान् इमान् समुद्रफेनान् पश्य । मकराणां कपोलेषु लम्बाः इमे फेनाः क्षणमात्रम् मकरकर्णयोः चामरशोभां धारयन्ति ।

व्याख्या—सहसा = हठात् = यकायक । यह शब्द अव्यय है । उत्पतद्भिः = उद्गच्छद्भिः = ऊपर को उछलते हुए । उत् + √ पत् + शत् = उत्पतत् + भिः = उत्पतद्भिः । मातङ्गनक्रैः—मातङ्गा इव नक्राः मातङ्गनक्राः तैः मातङ्गनक्रैः = गजाकारग्राहैः = हाथी जैसे मगरों से । द्विधा—द्वि + धा = द्विधा । 'द्विव्योश्च धमुञ्' इस सूत्र से 'प्रकार' अर्थ में धमुञ् प्रत्यय विकल्प से होता है । पक्ष में 'संख्याया विधायै धा' इस सूत्र से धा प्रत्यय हो गया है । भिन्नान् = विभक्तान् = बँटे हुए । + √ भिद् + क्त = भिन्न । ये = समुद्रफेनाः । एषाम् = नक्राणाम् । कपोलसंसर्पितया—कपोलेषु संसर्तुं शीलमेषाम् इति ते कपोलसंसर्पिणः (कपोल + सम् + सर्प् + शिनि), तेषाम् भावः कपोलसंसर्पिता तथा कपोलसंसर्पितया = कपोलस्थलसंपर्कशीलतया = गालों से लगे होने के कारण । कर्णक्षणाचामरत्वम् = क्षणम् चामरम् = क्षणचामरम्, कर्णेषु क्षणचामरम् = कर्णक्षणाचामरम् तस्य भावः कर्णक्षणाचामरत्वम् = सुदूर श्रवणबालव्यजनत्वम् = शोड़ी दूर के लिए कानों पर बालव्यजन की शोभा । व्रजन्ति = धारयन्ति ।

टिप्पणी—समुद्र के मगरों की विशाल हाथियों से तुलना की गई है । राजाओं के यहाँ प्रायः सफेद चामरों से हाथियों को सजाया जाता है । समुद्र में भी बड़े बड़े मगर अपने गालों के पास लगे हुए समुद्र के श्वेत फेनों से ऐसे प्रतीत होते हैं मानों उन्होंने भी अपने कानों पर बालव्यजन रखे हों ।

वाच्य-परिवर्तनम्—सहसा उत्पतद्भिः मातंगनक्रैः द्विधाभिन्नाः समुद्रफेनाः (त्वया) दृश्यन्ताम् । यैः एषां कपोलसंसर्पितया कर्णाक्ष्णचामरत्वं व्रज्यते । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ।

१२ समुद्र के अन्दर रहने वाले सर्प केवल अपनी मणियों द्वारा ही पहिचाने जाते हैं—

वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गाः महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः ।

सूर्याशुसम्पर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्ते एते मणिभिः फणस्थैः ॥ १२ ॥

सञ्जी०—वेलेति । वेलानिलाय वेलानिलं पातुमित्यर्थः । “क्रियार्थोपपदः” इत्यादिना चतुर्थी । प्रसृताः निर्गताः महोर्मीणां विस्फूर्जथुः उद्रेकः । ट्वितोऽथुच्’ इत्यथुच् प्रत्ययः । तस्मात् निर्विशेषाः दुर्ग्रहभेदाः एते भुजङ्गाः सूर्याशुसम्पर्केण समृद्धरागैः प्रवृद्धकान्तिभिः फणस्थैः मणिभिः व्यज्यन्ते उन्नीयन्ते ।

अन्वयः—वेलानिलाय प्रसृताः महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः एते भुजङ्गाः सूर्याशुसम्पर्कसमृद्धरागैः फणस्थैः मणिभिः व्यज्यन्ते ।

हिन्दी अनुवाद—समुद्रतट की शीतल वायु को ग्रहण करने के लिए बाहर निकले हुए यह समुद्र के सर्प समुद्र की लहरों से बिल्कुल अभिन्न हैं अर्थात् समुद्र की लहरों से उन्हें अलग नहीं किया जा सकता । लेकिन जब सूर्य की किरणें इन सर्पों के फनों में लगी हुई मणियों पर पड़ती हैं तब मणियों की चमक और भी बढ़ जाती है, तभी वे सर्प भी एक पहिचान में आ जाते हैं ।

संस्कृत भावार्थ—समुद्रतटवर्तिवायुग्रहणाय बहिर्निर्गताः समुद्रभुजंगाः समुद्रतरंगैः सह नितान्तसदृशत्वेन पृथक्तया न शायन्ते । केवलं यदा सूर्यकिरणाः फणस्थानाम् मणीनाम् उपरि पतन्ति, तेषां कान्ति च वर्धयन्ति, तदा एव सर्पतरङ्गयोः पृथक्-पृथक् ज्ञानं भवति ।

व्याख्या—वैलायाः अनिलः = वेलानिलः तस्मै = वेलानिलाय = तटवायु-सेवनाय; तटवायुं पातुमिति यावत् । समुद्र तट की वायु-सेवन करने के लिए । सर्पों का वायु-सेवन तो सर्वविदित ही है ।

हुजो स्पूजा कयानि धोवे
 टिलो सुचुद्राति सूत्रेण
 अथुचउत्तमे रूपम् ।

व्यज्यन्ते - वि + छज् + य
 (कर्मवाच्य) + जन्ते । = स्पष्ट
 किसे जाते हैं । फल नलला
 है ।

विद्याया विषयस्य च
 फलिते स्थानि नः ।
वेला नि लं पानुम्

कर्मणि स्थानिनः' इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हो गई है। वेलानिलाय का अर्थ है—वेलानिलं पातुम्। इस सूत्र का अर्थ यह है—यदि तुमुन् प्रत्यय वाली प्रयोजनसूचक क्रिया का प्रयोग न किया जाए, तो तुमुन्नन्त क्रिया के कर्म में चतुर्थी विभक्ति हो जाती है। यहाँ पातुम् का प्रयोग नहीं किया गया है, अतः पातुम् के कर्म में चतुर्थी हो गई है। प्रसूताः = वहिर्निर्गताः = बाहर निकले हुए। प्र + सू + क्त = प्रसूत। महोर्मिर्विस्फूर्जथुनिर्विशेषाः—महान्त ऊर्मयः = महोर्मयः, महोर्मीणां विस्फूर्जथुः = महोर्मिर्विस्फूर्जथुः, तस्मात् निर्विशेषाः = महोर्मिर्विस्फूर्जथुनिर्विशेषाः = विशालतरंगोद्रेकदुर्ग्रहभेदाः = विशाल लहरों के उद्रेक से अभिन्न। विस्फूर्जथु = वि + √स्फूर्ज् + अथु (अथुच्) प्रत्यय। दुओ स्फूर्जा इस धातु से 'द्वितोऽथुच्' इस सूत्र द्वारा अथुच् प्रत्यय हो गया है। इस सूत्र का अर्थ यह है कि दु इत् वाली धातुओं से अथुच् प्रत्यय होता है। √दुओ स्फूर्जा इस धातु के दु, ओ और आ का लोप हो जाता है। दु के इत् होने के कारण अथुच् प्रत्यय हो जाता है। निर्विशेषाः—निर्गताः विशेषाः एषाम् ते निर्विशेषाः = अभिन्नाः। यहाँ पर 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वाचोत्तरपदलोपः' इस वार्तिक द्वारा बहुव्रीहि समास और निर्गत के गत का पाक्षिक लोप हो गया है। निर्विशेषाः अथवा निर्गत-विशेषाः भी हो सकता है। इस वार्तिक का अर्थ यह है कि प्र आदि उपसर्ग से युक्त जो धातुजन्य शब्द उसका पदान्तर से बहुव्रीहि समास हो जाता है और प्र आदि उपसर्ग से संबद्ध धातुजन्य शब्द का पाक्षिक लोप हो जाता है। भुजंगाः = सर्पाः। सूर्याशुसम्पर्कसमृद्धरागैः—सम् + √पृच् + घञ् = सम्पर्क = संसर्ग। सम् + ऋध् + क्त = समृद्ध = प्रवृद्ध। सूर्यस्य अंशवः = सूर्यांशवः तेषां सम्पर्कः सूर्याशुसम्पर्कः तेन समृद्धः रागः कान्तिः येषां तैः = सूर्याशुसम्पर्क-समृद्धरागैः = मानुकिरणसंसर्गप्रवृद्धकान्तिभिः = सूर्य की किरणों के सम्पर्क से बढ़ी हुई कान्ति वाली। फणस्थैः—फणेषु तिष्ठन्ति इति फणस्थाः तैः फणस्थैः = फणसंलग्नैः = फनों में लगी हुई। मणिभिः = पाषाणैः। व्यज्यन्ते = उज्जीयन्ते; प्रकटीक्रियन्ते = दिखलाई पड़ते हैं।

टिप्पणी—बड़े-बड़े समुद्री सर्प साँस लेने के लिए समुद्र तट पर निकल

आते हैं। किनारे से टकराने वाली लहरों और साँपों को अलग-अलग पहिचानना प्रायः असंभव ही है। फिर भी साँपों की स्थिति का पता लग ही जाता है क्योंकि उनके फनों में लगी हुई मणियाँ सूर्य की किरणों को पाकर चमक ही उठती हैं।

वाच्यपरिवर्तनम्—वेलानिलाय प्रसृतान् महोर्मिर्विस्फूर्जथुनिर्विशेषान् एतान् भुजंगान् सूर्याशुसम्पर्कसमुद्रागाः फणस्थाः मणयः व्यञ्जयन्ति । कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य में परिवर्तन किया गया है।

१३—समुद्र में शंख और मृगों की प्रचुरता है —

तवाधरस्पर्द्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत् सहसोर्मिवेगात् ।

ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं कथञ्चित् क्लेशादपक्रामति शंखयूथम् ॥ १३ ॥

सञ्जी०—तवेति । तव अधरस्पर्द्धिषु अधरसदृशेषु इत्यर्थः । विद्रुमेषु प्रवालेषु सहसोर्मिवेगात् पर्यस्तम् प्रोत्क्षिप्तम् । ऊर्ध्वाङ्कुरैः विद्रुमप्ररोहैः प्रोतमुखं स्यूतवदनमेतत् शङ्खानां यूथं वृन्दं कथञ्चित् क्लेशादपक्रामति विलम्ब्यापसरति इत्यर्थः ।

अन्वयः—तव अधरस्पर्द्धिषु विद्रुमेषु सहसा ऊर्मिवेगात् पर्यस्तम् ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखम् एतत् शंखयूथम् कथञ्चित् क्लेशात् अपक्रामति ।

हिन्दी अनुवाद—हे सीते ! तुम्हारे अधरों के समान लाल वर्ण वाले इन मृगों में यकायक लहरों के वेग से फँका हुआ शंखों का समूह मृगों के अंकुरों में अपने मुखों के फँस आने के कारण बड़ी कठिनाई से किसी तरह पीछे हट रहा है ।

संस्कृतभावार्थ—रामः सीतां प्रति कथयति—हे सीते ! त्वम् पश्य । अयम् खलु शंखसमूहः तरंगवेगात् सहसा तव अधरवत् रक्तवर्णेषु विद्रुमेषु प्रक्षिप्यमाणः तत्र विद्रुमाणाम् अंकुरेषु स्यूतमुखत्वात् महता कष्टेन ततः बहिर्निर्गच्छति । कियत् रमणीयम् खल्वेतद्दृश्यम् ।

व्याख्या—तव = सीतायाः इति यावत् । अधरस्पर्द्धिषु = अधरं स्पर्द्धन्ते इति अधरस्पर्द्धिनः, तेषु = अधरस्पर्द्धिषु = अधरवत् रक्तवर्णेषु इति यावत् = लाल

लग
ही
कर

ान्
से

पु
खं
ति

न्

न
रों
छे

म्
ः
।

ते
न

रंग वाले । अधर + /स्पर्द्ध + णिनि । विद्रुमेषु = प्रवालेषु । सहसा = हठात् =
 यकायक । ऊर्मिवेगात्—ऊर्मीणाम् वेगात् = ऊर्मिवेगात् = तरंगजवात् =
 लहरों के वेग से । पर्यस्तेन = प्रोत्क्षिप्तम् = फेंका हुआ । परि/अस + क्त =
 पर्याप्त । असु क्षेपणे दिवादि वातु । ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखम्—प्र + वे + क्त =
 प्रोत = सूत । ऊर्ध्वाः च ते अङ्कुराः = ऊर्ध्वाङ्कुराः, तैः प्रोतानि मुखानि यस्य
 तत् = ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखम् = विद्रुमप्ररोहसूतवदनम् = विद्रुमों के ऊर्ध्व अङ्कुरों
 में फँसे हुए मुखवाला । एतत् = इदम् । शंखानाम् यूथम्—शंखयूथम् =
 कम्बुसमुदायः । कथंचित् = कथमपि = किसी तरह । यह शब्द एक अव्यय है
 और अपि के अर्थ में प्रयुक्त होता है । क्लेशात् + कृच्छात् = कठिनाई से । यहाँ
 पर क्लेश प्राप्य ऐसा प्रयोग होना चाहिए था । प्राप्य के लोप हो जाने के
 कारण 'ल्यबलोपे कर्मण्यधिकरणे च' इस वार्तिक से क्लेश शब्द से पञ्चमी
 विभक्ति हो गई है । इस वार्तिक का अर्थ यह है कि ल्यबन्त या क्तवान्त
 क्रिया के प्रयोग न होने पर उस क्रिया के कर्म या अधिकरण में पञ्चमी विभक्ति
 होती है । अपक्रामति = अपसर्पति = पीछे हटता है । अप + क्रम् लट् । ३०

टिप्पणी—अधरस्पर्द्धिषु विद्रुमेषु—उपमेय से उपमान सर्वदा उत्कृष्ट होता
 है । प्रायः ऐसा कहा ही जाता है कि ओष्ठ विद्रुमों से मिलते-जुलते हैं ।
 विद्रुम ओष्ठों से मिलते-जुलते हैं—ऐसा कह कर रामचन्द्र जी अप्रत्यक्ष रूप
 से सीता जी के ओष्ठों की ही प्रशंसा कर रहे हैं । रामचन्द्र जी का यह आशय
 है कि शुभ्र शंखों से संयुक्त लाल मूँगे शुभ्र दन्तपंक्ति से संयुक्त सीता जी के
 अधरोष्ठ से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं । ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखम्—जल के भीतर
 शंखसमूह खुले मुखों से ही घूमता रहता है । लहरों द्वारा यकायक विद्रुमों में
 फँक दिए जाने पर उनके मुख विद्रुमों के अङ्कुरों में फँस जाते हैं । इसलिए
 वे एकदम उनसे बाहर नहीं निकल सकते ।

वाच्यपरिवर्तनम्—तव अधरस्पर्द्धिषु विद्रुमेषु ऊर्मिवेगात् पर्यस्तेन ऊर्ध्वाङ्कुर-
 प्रोतमुखेन एतेन शंखयूथेन कथंचित् क्लेशात् अपक्रम्यते । 'कर्तृवाच्य से
 भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ।

१४. समुद्र से जल पीते हुए मेघ को देखकर समुद्र-मन्थन का सा दृश्य दिखलाई पड़ता है—

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगात् भ्रमता घनेन ।

आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥ १४ ॥

सञ्जी०—प्रवृत्तेति । पयांसि पातुं प्रवृत्तमात्रो न तु पीतवान् तेन ; आवर्तवेगात् 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः । भ्रमता अनेन अयं समुद्रो भूयः पुनरपि गिरिणा मन्दरेण प्रमथ्यमान इव भूयिष्ठम् अन्यन्तमाभाति ।

अन्वयः—पयांसि पातुम् प्रवृत्तमात्रेण आवर्तवेगात् भ्रमता घनेन अयम् समुद्रः भूयः गिरिणा प्रमथ्यमान इव भूयिष्ठम् आभाति ।

हिन्दी अनुवाद—जल पीने में प्रवृत्त होते ही (समुद्र के) भँवर के वेग से घूमते हुए मेघ के कारण यह समुद्र फिर से मन्दराचल द्वारा मथे जाते हुए के समान अत्यन्त शोभायमान हो रहा है ।

संस्कृत भावार्थ—रामः सीतां प्रति कथयति—हे वैदेहि ! अवलोक्य अन्यदपि रमणीयं दृश्यम् । एक मेघः जलपानाय अत्र आगच्छत्, परन्तु जलं स्पृशन् एव अम्भसां भ्रमेण स्वयमेव भ्राम्यति । मेघस्य भ्रमणेन एतत् प्रतीयते यत् समुद्रः पुनरपि मन्दराचलेन मथ्यमानः विराजते ।

व्याख्या—पयांसि = जलानि । पातुम् = आदातुम् = पीने के लिए ।
 ✓ पा + तुम् = पातुम् । प्रवृत्तमात्रेण—प्रवृत्त एव प्रवृत्तमात्रः तेन प्रवृत्तमात्रेण = सद्यः प्रारम्भमाणेन = प्रारम्भ करते ही । न तु पीतवतेति यावत् = न कि पी चुकने पर । यहाँ पर 'मयूरव्यसकादयश्च' इस सूत्र से तत्पुरुष समास । प्रायः प्रवृत्त शब्द तुमुचन्त क्रिया के ही साथ आता है । आवर्तवेगात्—आवर्तस्य वेगः = आवर्तवेगः, तस्मात् आवर्तवेगात् = अम्भसां भ्रमस्य वेगात् = भँवर के वेग से । 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इति अमरः । भ्रमता = चलता = घूमते हुए ।
 ✓ भ्रम् + शतृ = भ्रमत् तेन भ्रमता । घनेन = मेघेन । यहाँ 'हेतौ' इस सूत्र से तृतीया हुई है । अयम् समुद्रः भूयः = पुनरपि । गिरिणा = मन्दराचलेन । प्रमथ्यमानः = मथा जाता हुआ ।
 ✓ मन्थ् + यक् +

दृश्य

॥

तेन ;

समुद्रो

प्रयम्

वेग

हुए

कय

रन्तु

एतत्

ए ।

=

पी

ययः

स्य

वर

=

नौ'

=

+

शानच् प्रत्यय, प्रमथ्यमान । भूयिष्ठम् = अत्यन्तम् । अतिशयेन बहु इति भूयिष्ठम् । बहु + इष्ठ = भूयिष्ठ । बहु शब्द से 'अतिशयने तमविष्ठनौ' इस सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय, 'बहोर्लोपो भू च बहोः' इस सूत्र से बहु को भू आदेश और 'इष्ठस्य यिट् च' इस सूत्र के द्वारा इष्ठ की इ का लोप और यि (यिट्) का आगम । इस प्रकार भूयिष्ठ शब्द बना है । भूयिष्ठम् अव्यय है । आभाति = प्रतीयते । आ + भा + ति/भा धातु अदादि से लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

टिप्पणी—प्राचीन काल में देवताओं और दैत्यों द्वारा मिल कर समुद्र मथा गया था । मन्दराचल पर्वत ने मन्थन-दण्ड का और वासुकि सर्प ने मन्थनरज्जु का कार्य किया था । इसी कथा का इस श्लोक में उल्लेख पाया जाता है ।

वाच्यपरिवर्तनम्—पयांसि पातुं प्रवृत्तमात्रेण आवर्तवेगात् भ्रमता घनेन (हेतुना) अनेन समुद्रेण गिरिणा प्रमथ्यमानेन इव भूयिष्ठम् आभायते । कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ।

१५ नील समुद्र की पतली और नीली तटभूमि दूर से लौहचक्र के किनारे पर लगी हुई जंग के समान दीखती है—

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला ।

आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलंकरेखा ॥ १५ ॥

संज्ञी०—दूरादिति । अयश्चक्रनिभस्य लोहचक्रसदृशस्य लवणाम्बुराशेः दूरात् तन्वी अल्पत्वेन अवभासमाना तमालतालीवनराजिभिः नीला वेला तीरभूमिः धारानिबद्धा चक्राश्रिता कलङ्करेखा मालिन्यरेखेव आभाति । “मालिन्यरेखान्तु कलङ्कमाहुः” इति दण्डी ।

अन्वयः—अयश्चक्रनिभस्य लवणाम्बुराशेः दूरात् तन्वी तमालतालीवन-राजिनीला वेला धारानिबद्धा कलंकरेखा इव आभाति ।

हिन्दी अनुवाद—लोहे के चक्र के समान प्रतीत होने वाले इस लवण समुद्र की यह तटभूमि, जो कि दूरी के कारण पतली और तमाल तथा ताल

के वन की पंक्तियों के द्वारा नीली दिखाई पड़ती है, ऐसी लगती है माने लौह चक्र के किनारे पर लगी हुई जंग की रेखा हो ।

संस्कृतभाषार्थ—आर्ये ! अधुना वयं तीरभूमौ समागताः । पश्य । अथ लवणसमुद्रः एकम् विशालं लौहचक्रमिव प्रतीयते, अस्य तटभूमिश्च तमालतालीवनपंक्तिभिः श्यामला दूरत्वात् कृशा च दृश्यते । अत एव इयम् तटभूमिः लौहचक्राश्रिता मालिन्यरेखा इव प्रतीयते । उत्प्रेक्षा तु अत्र अतीव उत्कृष्टा वर्तते ।

व्याख्या—अयश्चक्रनिभस्य—अयसः चक्रम् = अयश्चक्रम् । अयश्चक्र इव इति अयश्चक्रनिभः तस्य अयश्चक्रनिभस्य = लोहचक्रसदृशस्य = लोहे के पहिए के समान । 'लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी । अश्मसारः' इति अमरकोषः । 'स्युत्तरपदे त्वमी निभसंकाशनीकाशप्रतिकाशोपमादयः' इति अमरकोषः । लवणाम्बुराशेः—लुनाति इति लवणः (✓लून् छेदने से ल्युट् प्रत्यय) । लवणानि च तानि अम्बूनि लवणाम्बूनि तेषाम् राशिः लवणाम्बुराशिः तस्य लवणाम्बुराशेः = चारसागरस्य = खारी समुद्र का । पुराणों के अनुसार सात प्रकार के समुद्र हैं—१ लवण, २ इक्षु, ३ मुरा, ४ सर्पिस्, ५ दुग्ध, ६ दधि, ७ जल । दूरात् = दूरत्वाद् हेतोः = दूर होने के कारण । हेतौ पञ्चमी । तन्वी = कृशा, अल्पत्वेन अवभासमाना = पतली दिखाई पड़ती हुई । तनु शब्द से 'वोतोगुणवचनात्' इस सूत्र से विकल्प से ही प्रत्यय होता है । तन्वी और तनुः दोनों रूप पाये जाते हैं । तमालतालीवनराजिनीला—तमालाश्च ताल्यश्च—तमालताल्यः, तासां वनानि तमालतालीवनानि तेषां राजयः तमालतालीवनराजयः, तामिः नीला = तमालतालीवनराजिनीला = तमालतालीवनराजिश्यामला = तमाल और ताली के वनों की पंक्तियों द्वारा श्याम वर्ण वाली । वेला = तीरभूमिः = समुद्र का तट प्रदेश । धारानिवद्धा—नि + ✓बन्ध + क्त = निबद्ध + टाप् = निबद्धा (स्त्रीलिंग) । ध्रियते अनया इति धारा (✓धृ + आङ्) । धारायां निबद्धा = धारानिवद्धा = चक्रमुखलम्बा = चक्र के किनारे पर लगी हुई कलंकरेखा—कलंकस्य रेखा =

ी है माने

रय । अद

च तमाल

इयम् तद

त्र अतीत

यश्चक्र

लोहे के

श्मसार

समादय

छेदने से

राशिः

का ।

३ सुरा

होने के

दिखा

से डी

लीवन

लताली

लीवन

नों की

प्रदेश

ग) ।

बद्धा =

खा =

कल

वन

कर

दि

दि

श्या

वृत्त

माल

दृश्य

ही

जात

ताल

कतु

रहा

बेल

पेदा

पिल

वृत्ति

कलंकरेखा = मालिन्यरेखा । 'मालिन्यरेखां तु कलंकमाहुः' इति दण्डी । तमालताली-
वनराजिनीला इस समास को तमालतालीवनराजिवत् नीला इस तरह विश्लेषण
करके कलंकरेखा के साथ भी लगाया जा सकता है । आभाति = प्रतीयते =
दिखलाई पड़ती है ।

टिप्पणी—क्षितिज में दूर तक विस्तृत नील समुद्र लोहे के चक्र के समान
दिखलाई पड़ता है और दूर से देखने पर विशाल ताल और तमाल वृक्षों की
श्याम पत्तियों से घिरा हुआ समुद्रतट एक क्षीण रेखा सा दिखलाई पड़ता है ।
वृक्षाकार नील समुद्र के किनारे भी लोहचक्र के ऊपर लगी हुई जंग के समान
मालूम पड़ते हैं । रामचन्द्र जी पुष्पक विमान से यात्रा करते हुए इस सुन्दर
दृश्य की ओर ही सीता जी का ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं ।

'आभाति' क्रिया 'प्रतीयते' के अर्थ में होने पर पहिले उपमा अलंकार को
ही बताती है लेकिन अन्त में उत्प्रेक्षा में ही इस उपमा का पर्यवसान होता है ।
इस पद्य में मधुर पदावली द्वारा प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण पाया
जाता है ।

वाच्यपरिवर्तनम्—अयश्चक्रनिभस्य लवणाम्बुराशेः दूरात् तन्व्या तमाल-
तालीवनराजिनीलया वेलया धारानिवद्धया कलंकरेखया इव आभायते ।
कृतवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया है ।

१६—समुद्रतट का पवन केतक-पुष्पों के पराग से तुम्हारा शृंगार कर
रहा है—

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते सम्भावयत्याननमायताक्षि !
मामक्षमं मण्डनकालहानेर्वेत्तीव विम्बाधरवद्धवृष्णम् ॥ १६ ॥
सञ्जीव—वेलेति । हे आयताक्षि ! 'वेलो स्यात् तारनीरयोः' इति विश्वः ।
वेलानिलः समुद्रतीर वायुः केतकरेणुभिस्ते आननं सम्भावयति । किमर्थमित्य-
पेक्षायाम् उत्प्रेक्ष्यते—विम्बाधरे बद्धवृष्णं मां मण्डनेनाभरणक्रियया कालहानिः
विलम्बः तस्याः अक्षमम् असहमानम् । कर्मणि पठ्यते । कालहानिमसहमानं वेत्तीव
वेत्ति किम् ? नोचेत्कथं सहमानमिति ।

अन्वयः—हे आयताक्षि ! वेलानिलः केतकरेणुभिः ते आननं संभावयति
विम्बाधरवद्धतृष्णम् मां मण्डनकालहानेः अक्षमम् वेत्ति इव ।

हिन्दी अनुवाद—विशाल नेत्रों वाली हे सीते ! समुद्र-तट का पक्का
केतकपुष्पों के पराग से तुम्हारे मुख को सजा रहा है। ऐसा लगता है कि विम्ब
फल के समान लाल वर्ण वाले तुम्हारे अधरों के प्रति सतृष्ण होने के कारण
(तुम्हारे) शृंगार में होने वाले विलम्ब को सहने में मुझे असमर्थ सा जानकर
पवन यह कार्य कर रहा है ।

संस्कृतभावार्थ—अयि विशाललोचने सीते ! अयं तीरपवनः केतकपुष्पे
णुभिः तव आननं भूषयति । अवश्यमेव अयम् एतत् जानाति यदहम् तव विम्ब-
दृशस्य अधरस्य रसं पातुमतीव उत्सुकः, अतः शृंगारक्रियया यः विलम्बोऽस्व-
भाव्यः, तस्य सहने न समर्थः अस्मि । अत एवायं स्वयं तवाननं प्रसाधयति ।

व्याख्या—हे आयताक्षि—आयते अक्षिणी यस्याः सा आयताक्षि
तत्संबुद्धौ हे आयताक्षि = हे विशाललोचने = अयि विशाल नेत्रों वाली
आयत + अक्षि + पच् + ङीप् = आयताक्षि । 'बहुव्रीहौ सकथ्यङ्गोः स्वाङ्गात्पच्'
इस सूत्र से पच् (अ) प्रत्यय; तदनन्तर स्त्रीत्वविबद्धा में 'षिट्गौरादिभ्यश्च'
इस सूत्र से ङीप् (ई) प्रत्यय । सम्बोधन में ह्रस्व हो गया है । वेलानिलः—
वेलायाः अनिलः = वेलानिलः = तीरपवनः 'वेला स्यात्तीरनीरयोः' इति विश्व-
केतकरेणुभिः = केतकस्य रेणवः केतकानां वा = केतकरेणवः, तैः केतकरेणुभि-
= केतकपुष्परसैः = केतकी के फूलों के पराग से । ते आननम् सम्भावयति
= भूषयति = सजाता है । सम् + √भू + णिच् + लट् प्रथमपुरुष एकवचनम्
विम्बाधरवद्धतृष्णम्—विम्ब्याः फलम् = विम्बम् (विम्बी + अण्), विम्ब
सदृशः अधरः = विम्बाधरः, तस्मिन् बद्धा तृष्णा येन तं विम्बाधरवद्धतृष्णम्
विम्बाधरवद्धलालसम् । विम्बफल के समान लाल वर्ण के अधर में तृष्णा लगा
हुए । यहाँ पर शाकपार्थिव समास है । 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे'
इस सूत्र द्वारा समास होने पर विम्ब शब्द का अधर शब्द के बाद ही प्रयोग
हो सकता है, क्योंकि अधर उपमेय है और विम्ब लक्ष्यमान है । आचार्य वाम

यति
पत्र
विम
कार
तानक
पुष्परे
वेभ्रस
वश्वं
ति ।
तादी
गाली
तात्त्व
प्यश्च
लः—
वेश्व
गुदि
वयय
चनम्
विम
एम्
लग
प्रयो
प्रयो
वाम

(
र
क
=
त
पु
ए
अ
प्र
कि
इ
रह
ही
स
क
पर
आ
पयो

(वैयाकरण) विम्बाधर समास को मध्यमपदलोपि समास समझते हैं । माम् = रामचन्द्रम् । मण्डनकालहानेः = कालस्य हानिः = कालहानिः । मण्डनेन कालहानिः मण्डनकालहानिः तस्याः मण्डनकालहानेः = शृंगारजन्यविलम्बस्य = शृंगार क्रिया द्वारा होने वाले विलम्ब का । अक्षमम्—न क्षमः = अक्षमः तम् = अक्षमम् = असमर्थम् । वेत्ति इव—जानाति इव । विद् + लट् प्रथम-पुरुष एकवचन । वेलानिल कर्ता है ।

टिप्पणी—केतक—सुगन्धित पत्तियों से युक्त तथा इसी नाम के पुष्पों का एक पौदा । प्रायः यह दलदल में पाया जाता है । सर्प इसकी तीव्र सुगन्ध से आकृष्ट होकर इसके आस पास घूमते हुए पाये जाते हैं ।

इस श्लोक में वायु के स्वाभाविक कार्य में कवि ने बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा प्रस्तुत की है । रामचन्द्र जी सीता जी का अधरपान करने के लिए इतने उत्सुक थे कि वे सीता द्वारा प्रसाधन कार्य में होने वाले विलम्ब को नहीं सह सकते थे । इसी बात को जान कर मानों पवन स्वयं सीता के प्रसाधन कार्य में सहयोग दे रहा हो । यदि तीर-पवन को यह बात न मालूम होती, तो वह ऐसा करता ही क्यों ?

वाच्यपरिवर्तनम्—हे आयतान्नि ! वेलानिलेन केतकरेणुभिः ते आननम् सम्भाव्यते । (तेन) विम्बाधरवद्धतृणः अहम् मण्डनकालहानेः अक्षमः विद्ये । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ १६ ॥

१७—हे सीते ! लो, हम क्षण भर में ही तट पर आगए—

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।

प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात् कूलं फलावर्जितपूगमालम् ॥ १७ ॥

सजी०—एत इति । एते वयं सैकतेषु भिन्नाभिः स्फुटिताभिः शुक्तिभिः पर्यस्तानि परितः क्षितानि मुक्तानां पटलानि यस्मिन् तत् तथोक्तम् । फलैरावर्जिताः आनमिताः पूगमाला यस्मिन् तत् पयोधेः कूलं विमानवेगात् मुहूर्तेन प्राप्ताः ।

अन्वयः—एते वयम् सैकतभिन्नशुक्ति पर्यस्तमुक्तापटलम् फलावर्जितपूगमालम् पयोधेः कूलम् विमानवेगात् मुहूर्तेन प्राप्ताः ।

हिन्दी अनुवाद—हे सीते ! देखो, हम लोग विमान के शीघ्र चलने के कारण मुहूर्त भर में ही समुद्र के तट पर आ पहुँचे हैं, जहाँ कि बालू में फूटी हुई सीपियों से मोतियों का समूह बिखरा पड़ा है और जहाँ फलों के भार से सुपारी के पेड़ नीचे झुके हुए हैं ।

संस्कृत भावार्थ—हे सीते ! पश्य, वयम् पुष्पकविमानवेगात् मुहूर्तेनैव समुद्रतटं संप्राप्ताः । अहो कीदृशं रमणीयमेतत् समुद्रतटम् । अत्र इतस्तत् सिक्तासु प्रस्फुटिताः शुक्तयः दृश्यन्ते, ताभ्यश्च मुक्तानां राशिः इतस्तत् विकीर्ण विद्यते, पूगवृक्षाश्च फलभारेण भूमिसंलग्ना इव वर्तन्ते । विभूतिः विनयश्चोभावपि अत्र एकस्मिन् स्थाने सम्मिलितौ स्तः ॥ १७ ॥

व्याख्या—एते वयम्—संस्कृत का यह एक मुहाविरा है । इसका अर्थ 'लो, हम लोग' जैसा हिन्दी में कर सकते हैं । **सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम्**—सिकतामयो देशः सैकतम् । 'सिकताशर्कराभ्याम् च' इस सूत्र से अण् (अ) प्रत्यय । सैकते भिन्नाः शुक्तयः = सैकतभिन्नशुक्तयः, तामिः पर्यस्तानि मुक्तानां पटलानि यस्मिन् तत् सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम् = बालुकामयप्रदेशस्फुटितशुक्तिविकीर्णमुक्तागणम् = बालू में फूटी हुई सीपियों से बिखरे हुए मोतियों के समूह से युक्त । 'मुक्तास्फोटः स्त्रियां शुक्तिः' इति अमरः । फलावर्जितपूगमालम्—फलैः आवर्जिताः पूगानां मालाः यस्मिन् तत् फलावर्जितपूगमालम् = फलभारनमितपूगपंक्ति = फलभार से झुकी पूगवृक्षपंक्ति से युक्त । **पयोधेः**—पयांसि धीयन्ते अस्मिन् इति पयोधि (पयस् + धा + कि), तस्य पयोधेः = समुद्रस्य । **कूलम्** = तटम् । 'कूलं रोधश्च तीरं च प्रतीरं च तटं त्रिषु' इति अमरः । **विमानवेगात्** = विमानरथात् । हेतौ पञ्चमी । **मुहूर्तेन** = ४८ मिनट में । 'मुहूर्तमल्पकाले स्यात् घटिकाद्वितयेऽपि च' इति शब्दार्णवः । **मुहूर्तं**, क्षण जैसे शब्द यद्यपि संज्ञाएँ हैं, फिर भी तत्तत् विभक्ति के साथ अव्यय जैसा इनका प्रयोग होता है । **प्राप्ताः** = समागताः = आ गए । प्र + आप् + क प्रत्यय = प्राप्ताः इत्यर्थः ॥ १७ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—एतैः अस्माभिः

सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलम्

लने के
में पूरे
भार से

हूँ तैव
तस्त
वेदीना
भाववि

अर्थ
पर्यस्त

स दृष्ट
ताभिः

तम् =

पिपि

इति

तत्

पक्षि

कि),

व तट

न =

विः ।

व्यय

आप्

टलम्

कलावर्जितपूगमालम् पयोधेः कूलम् विमानवेगात् मुहूर्तेन प्राप्तम् । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ १७ ॥

१८—पृथ्वी समुद्र से बाहर निकलती हुई सी प्रतीत होती है—

कुरुष्व तावत् करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम् ।

एषा विदूरीभवतः समुद्रात् सकानना निष्पततीव भूमिः ॥ १८ ॥

संज्ञी०—कुरुष्वेति । “मणिवन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः” इत्यमरः ।

करभ इवोरु यस्याः सा करभोरुः, “ऊरुत्तरपदादौपम्ये” इत्यूङ् प्रत्ययः । तस्याः संबुद्धौ हे करभोरु ! मृग इव प्रेक्षत इति विग्रहः । हे मृगप्रेक्षिणि ! तावत्पश्चान्मार्गे लङ्घिताश्वनि दृष्टिपातं कुरुष्व । एषा सकानना भूमिर्विदूरीभवतः समुद्रान्निष्पतति निष्कामतीव । विदूरशब्दाद्विशेष्यनिष्पत्तिः ।

अन्वयः—हे करभोरु ! हे मृगप्रेक्षिणि ! तावत् पश्चात् मार्गे दृष्टिपातम् कुरुष्व । एषा सकानना भूमिः विदूरीभवतः समुद्रात् निष्पतति इव ।

हिन्दी अनुवाद—मृग के समान नेत्रों वाली तथा सुन्दर जंघाओं वाली हे सीते ! अब तुम तनिक पीछे के मार्ग को तो देखो । वनों से युक्त वह भूमि (क्षण क्षण में) दूर होने वाले समुद्र से बाहर निकलती सी प्रतीत होती है ।

संस्कृतभावार्थ—रामः सीतां कथयति—मृगलोचने हे सीते ! तावत् पश्चात् त्यक्तः मार्गः अपि किञ्चिद् दृश्यताम् । क्षणे क्षणे विदूरीभवति अयं समुद्रः, काननादिसमेता भूमिश्च समुद्राद्बहिर्निर्गता इव दृश्यते ।

व्याख्या—करभोरु—करभ इव ऊरु यस्याः सा करभोरु, तत्संबुद्धौ हे करभोरु = हे करभजंवे = करभ के समान जंघाओं वाली । करभोरु शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा में ‘ऊरुत्तरपदादौपम्ये’ इस सूत्र से ऊङ् प्रत्यय । इस सूत्र का अर्थ यह है कि उपमानवाचक पूर्वपद और ऊरु उत्तरपद वाले समस्त पद से स्त्रीत्वविवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है । करभ ऊरु का उपमान प्रस्तुत करता है । मल्लिनाथ ने ‘मणिवन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः’ इस अमरकोष का उल्लेख कर करभ शब्द का ‘मणिवन्ध अर्थात् कलाई से लेकर कनिष्ठा अंगुली

तक का चढ़ाव-उतार वाला बाहर का भाग' अर्थ किया है। कुछ टीकाकार करभ शब्द से 'हाथी की सूँड़ के ऊपरी गोल भाग' का अर्थ लेते हैं। भट्टिकाव्य ४, १७ में द्विरदनासोरुः पद पाया जाता है। इस प्रकार करभोरु के दो अर्थ होते हैं—(१) कलाई से कनिष्ठा अंगुली तक के चढ़ाव-उतार वाले भाग के समान सुन्दर जंघाओं वाली। (२) हाथी की सूँड़ के समान सुन्दर जंघाओं वाली। दूसरा अर्थ कुछ अधिक सुन्दर है। मृगप्रेक्षिणी—मृग इव प्रेक्षते इति मृगप्रेक्षिणी। तत्संबोधने मृगप्रेक्षिणि = मृगवद्दर्शनशीले—आगे चलते हुए पीछे देखने का मृग का स्वभाव बताया जाता है। तुलना कीजिए—ग्रीवा-भंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टि—शकुन्तला प्र० ८। मृग + प्र + ईच् + णिनि + डीप्। 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इस सूत्र से णिनि (इन्) प्रत्यय। इस सूत्र का अर्थ यह है—जब किसी स्वभाव के व्यक्त करने का प्रसंग हो, तो धातु से णिनि प्रत्यय होता है, वशर्ते कि साथ में लगा हुआ सुबल जातिवाचक न हो। यथा उष्णभोजिन् = उष्ण भोजन करने के स्वभाव वाला। तावत्—नाट्यसाहित्य में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होने वाला एक अव्यय है। यहाँ पर 'प्रथम' अथवा 'किसी और कार्य के करने से पूर्व' इस अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है। पश्चात्—पृष्ठतः = पीछे। अपरस्मिन् देशे = पश्चात्। 'दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' इस सूत्र से अस्ताति प्रत्यय के प्रसंग में 'पश्चात्' इस सूत्र द्वारा आति (आत्) प्रत्यय और अपर शब्द को पश्च आदेश हो जाता है। दृष्टिपातम्—दृष्टेः पातः = दृष्टिपातः तम् दृष्टिपातम् = अक्षिपातम्। दृश् + क्तिन् = दृष्टिः, पठ् + घञ् = पातः। सकानना—काननैः सहिता = सकानना = वनसमेता। विदूरी-भवतः—न दूरः अदूरः, अदूरः दूरः सम्पद्यमानः दूरीभवन्, विशेषेण दूरीभवन् विदूरीभवन् तस्मात् विदूरीभवतः = दूरगच्छतः = दूर होते हुए। निष्पतति इव = निष्क्रामति इव ॥ १८ ॥

टिप्पणी—इस श्लोक के साथ समुद्र-वर्णन भी समाप्त हो जाता है।
वाच्यपरिवर्तनम्—हे करभोरु ! हे मृगप्रेक्षिणी ! तावत् पश्चात् मार्ग

काका

इकाव्य

ो अयं

भाग के

संवाचों

ते इति

ते हुए

ग्रीवा-

प्र+

इन्)

प्रसंग

सुबन्त

ाला।

य हे।

इसका

वात्।

प्र से

प्रत्यय

तः =

ञ् =

दूरी-

भवन

वर्तति

हे।

मार्गे

दृष्टि
समुद्र
गया

यथ
क्व
तेरा

पश
क्व

होत
चल
चल

अन
अन
क्व

यथ
यथ

दृष्टिपातम् (त्वया) क्रियताम् । सकाननया अनया भूम्या विदूरीभवतः
समुद्रात् निष्पत्यते इव । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया
गया है ॥ १८ ॥

१६—हे सीते ! देखो, यह विमान मेरे मन के अनुसार चल रहा है—

क्वचित्पथा सञ्चरते सुराणां क्वचिद् घनानां पततां क्वचिच्च ।

यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ॥ १६ ॥

सर्जी०—क्वचिदिति । हे देवि ! विमानं पुष्पकं मे मनसोऽभिलाषो
यथाविधस्तथा प्रवर्तते । पश्य, क्वचित्सुराणां पथा संचरते । क्वचिद् घनानां,
क्वचित्पततां पक्षिणाञ्च पथा संचरते । 'समस्तृतीया युक्तात्' इति संपूर्वाच्चर-
तेरात्मनेपदम् ।

अन्वयः—विमानम् मे मनसः यथाविधः अभिलाषः, तथा प्रवर्तते,
पश्य । क्वचित् सुराणाम् पथा सञ्चरते, क्वचित् घनानाम् (पथा सञ्चरते),
क्वचित् च पतताम् (पथा सञ्चरते) ।

हिन्दी अनुवाद—हे प्रिये ! देखो, जैसी-जैसी मेरे मन की अभिलाषा
होती है, वैसे वैसे यह विमान चलता है । कभी-कभी यह देवताओं के मार्ग पर
चलता है, कभी कभी मेघों के मार्ग पर और कभी-कभी पक्षियों के मार्ग पर
चलता है ॥ १६ ॥

संस्कृतभावार्थ—अयि देवि ! पश्य, इदं खलु मे पुष्पकविमानम् मम मनसः
अन्तर्मान् जानाति, अत एव यन्मार्गेण गन्तुम् अहम् वाञ्छामि, तमेव मार्गम्
अयम् गृह्णाति । क्वचित् देवानाम् मार्गेण गच्छति, क्वचित् मेघमार्गेण गच्छति,
क्वचिच्च पक्षिणां पथा अग्रे गच्छति । अहो दिव्यशक्तिमानसं मे रथः ॥ १६ ॥

व्याख्या—विमानम् = पुष्पकविमानम् । मे = मम । मनसः = चित्तस्थ ।
यथाविधः—येन प्रकारेण यथा (यत् + यात्), यथा यादृशी विधा प्रकारो
यस्य सः यथाविधः = यादृशः । अभिलाषः = इच्छा । अभिलष्यते इति

अभिलाषः । अभि + लप् + घञ् = अभिलाषः । प्रवर्त्तते = चलति ।
 पश्य = अवलोकय = देखो । दृश् + लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन ।
 सुराणाम् = देवानाम् पथा = मार्गेण । पथिन् शब्द का तृतीया का एकवचन ।
 संचरते = गच्छति । 'समस्तृतीयायुक्तात्' इस सूत्र द्वारा चर् धातु से आत्मने-
 पद हो गया है । इस सूत्र का अर्थ यह है कि चर् धातु यदि सम् पूर्वक हो
 और किसी तृतीयान्त शब्द से संबद्ध हो, तो यह धातु आत्मनेपद ग्रहण करती
 है । घनानाम् = मेघानाम् । पतताम् = पक्षिणाम्—पक्षियों के । 'पतत्स्व-
 रथाण्डजाः' इति अमरः । पतन्ति गच्छन्ति इति पतन्तः, तेषाम् पतताम्, पत् +
 शत् = पतत् ।

टिप्पणी—आकाश में तीन प्रदेशों की इस प्रकार कल्पना की गई है—
 सर्वोच्च प्रदेश में देवता विचरण करते हैं, उसके नीचे वाले भाग में वायु
 चलती है, उसके नीचे वाले भाग में मेघ उड़ते हैं और सबसे नीचे के भाग में
 पक्षी उड़ते रहते हैं । रामचन्द्र जी का पुष्पक विमान वायु वाले प्रदेश के
 अतिरिक्त तीनों भागों में घूमता हुआ बतलाया गया है ।

वाच्यपरिवर्तनम्—विमानेन मे मनसः यथाविधेन अभिलाषेण (भूयते),
 तथा प्रवृत्त्यते, त्वया दृश्यताम् । क्वचित् सुराणाम् पथा सञ्चर्यते, क्वचित्
 घनानाम् पथा (सञ्चर्यते), क्वचित् च पतताम् (पथा सञ्चर्यते) । कर्तृवाच्य
 से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ १६ ॥

२०—हे सीते ! आकाश-वायु तुम्हारी थकान को दूर कर रही है—

असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिर्त्रिमार्गगा वीचि-विमर्द-शीतः ।

आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थान् आचामति स्वेदलवान् मुखे ते ॥ २० ॥

सञ्जी०—असाविति । महेन्द्रद्विपदानगन्धिरैरावतमदगन्धिः । त्रिमार्गगैर्ग-
 च्छतीति त्रिमार्गगा गङ्गा । 'तद्वितार्थ'—इत्ययादिनोत्तरपदसमासः तस्याः वीचीनां
 विमर्देन सम्पर्केण शीतोऽसावाकाशवायुर्दिनयौवनोत्थान्मध्याह्नसम्भवांस्ते मुखे
 स्वेदलवानाचमति हरति । अनेन सुरपथसंचारो दर्शितः ।

अन

वायुः दि

हि

मद से सु

शीतल य

पर के स्वे

संस्

मदमुवासि

मुखे ये स्वे

विमानम्

दृश्यम् ।

व्यास

द्विः महें

इति महे

मदचल

(दि+पा

के स्थान मे

त्रिमार्गगा

(त्रिमार्ग +

वीचीनाम्

संगर्गशीतल

भाकाशवा

थौवनोत्थान

मय्याह । त

मय्याहसंभव

मिदिन्दू

वाः

मद

शी

पर

मद

मुखे

विम

दृश

द्विप

शति

मद

(नि

के

त्रिम

(नि

वीच

संस

भ्रा

यौव

मध्य

मध्य

रमि

अन्वयः—महेन्द्रद्विपदानगन्धिः त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः असौ आकाश-
वायुः दिनयौवनोत्थान् स्वेदलवान् ते मुखे आचामति ।

हिन्दी अनुवाद—हे सीते ! देवराज इन्द्र के (ऐरावत नामक) हाथी के
मद से सुगन्धित एवं त्रिमार्गगामिनी आकाश गंगा की लहरों के संपर्क से
शीतल यह आकाशवायु मध्याह्न की उष्णता के कारण उत्पन्न तुम्हारे मुख
पर के स्वेदकणों को सुखा रहा है ।

संस्कृतभावार्थ—हे सीते ! अयं खलु आकाशसमीरः, यः ऐरावत-
मदसुवासितः आकाशगंगातरङ्गसंसर्गशीतलश्च अस्ति, मध्याह्न काले तव
मुखे ये स्वेदकणाः सञ्जाताः, तान् दूरीकरोति । रामस्यायमभिप्रायः यत् साम्प्रतं
विमानम् सुराणां मार्गेण संचरमाणम् अस्ति । सीतादेव्या च दर्शनीयमिदं
दृश्यम् ।

व्याख्या—महेन्द्रद्विपदानगन्धिः—महान् चासौ इन्द्रः महेन्द्रः, तस्य
द्विपः महेन्द्रद्विपः, तस्य दानम् = महेन्द्रद्विपदानम् तस्य गन्धः अस्य अस्ति
इति महेन्द्रद्विपदानगन्धिः = ऐरावतमदजल-सुवासितः = ऐरावत हाथी के
मदजल से सुगन्धित । द्विपः = द्वाभ्यां शुण्डातुण्डाभ्यां पिवति इति द्विपः
(द्वि + पा + क प्रत्यय) । यहाँ पर पूरे पद में बहुव्रीहि समास है और गन्ध
के स्थान में 'गन्धस्येदुत्पत्ति सु सुरभिभ्यः' इस सूत्र से गन्धि हो जाता है ।
त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः—त्रिभिः मार्गैः गच्छति इति त्रिमार्गगा
(त्रिमार्ग + गम् + ड + टात्) = तीन मार्गों से चलने वाली = गंगा । यस्याः
वीचीनाम् विमर्देन शीतः = त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः = आकाशगंगातरङ्ग-
संसर्गशीतलः = आकाश गंगा की लहरों के संपर्क से शीतल । असौ ।
आकाशवायुः—आकाशस्य वायुः = आकाशवायुः = गगनसमीरः । दिन-
यौवनोत्थान्—दिनस्य यौवनम् = दिनयौवनम् = दिन की परिपक्वता अर्थात्
मध्याह्न । तस्मात् उत्तिष्ठन्ति इति दिनयौवनोत्थाः तान् दिनयौवनोत्थान् =
मध्याह्नसंभवान् । स्वेदलवान्—स्वेदस्य लवाः स्वेदलवाः, तान् स्वेदलवान् =
स्वेदकणान् । वा = पसने की बूँदों की । आचामति = पिवति,

हरति, शोषयति वा । आ + चम् + लट् प्रथमपुरुष एक वचन । आत्पूर्वक चम् अदने धातु (भ्वादि गणी) लट्, लोट्, लङ् और विधि लि में 'ष्टिबु क्लमु चमां शिति' इस सूत्र और 'आङि चम इति वक्तव्यम्' इति वार्तिक द्वारा चाम् में बदल जाती है ॥ २० ॥

टिप्पणी—त्रिमार्गगा—गंगा को त्रिमार्गगा अथवा त्रिपथगा कहते हैं क्योंकि हिन्दुओं के पौराणिक विचारों के अनुसार गंगा स्वर्ग, पृथिवी और पाताल इन तीन स्थानों में बहती है । कहा भी गया है—

क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः ।

दिवि तारयते देवान् तेन त्रिपथगा स्मृता ॥

आकाशवायुः—संस्कृत काव्यों में जब कभी वायु का वर्णन किया जाता है, तो वायु के तीन गुणों—सुगन्ध, शीतलता और मन्दता का वर्णन करते हैं । यह एक कविपरम्परा है । यहाँ पर भी द्विपदानगन्धिः से सुगन्ध गुण और वीचिविमर्दशीतः से शीतलता का उल्लेख किया गया है तथा स्वेदलवा से मन्दता का भी अनुमान किया जा सकता है ॥ २० ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—महेन्द्रद्विपदानगन्धिना त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीति अमुना आकाशवायुना ते मुखे स्वेदलवाः आचम्यन्तो । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ २० ॥

२१—हे सीते ! मेघ भी तुम्हारी सेवा करते से जान पड़ते हैं—

करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या ।

आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयम् उद्भिर्वाविद्युद्वलयो घनस्ते ॥ २१ ॥

सञ्जी०—करेणेति । हे चण्डि ! कोपने ! “चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः” इत्यमरः कुतूहलिन्या विनोदार्थिन्या त्वया कर्त्या वातायने गवाक्षे लम्बितेनावश्रंसिते करेण स्पृष्टः उद्भिर्वाविद्युद्वलयो घनस्ते द्वितीयमाभरणं वलयमामुञ्चतीवार्पयतीव चण्डीत्यनेन कोपनशीलत्वान्दीतः क्षिप्रं त्वामुपचरति मेघ इति व्यज्यते ।

अन्वयः—हे चण्डि ! कुतूहलिन्या त्वया वातायनलम्बितेन करेण स्पृष्टः उद्भिर्वाविद्युद्वलयः घनः ते द्वितीयम् आभरणम् अमुञ्चति इव ॥ २१ ॥

आ
लि
इ

हते
ी औ

जा
क
ध गु
लवा

शति
मवा

॥
यमः
सि
यती

सृष्ट

हिन्दी अनुवाद—क्रोधी स्वभाव वाली हे सीते ! कुतूहलवश गवान् से
नहर निकाले हुए तुम्हारे हाथ से छुआ जाता हुआ यह मेघ फौरन बिजली
को चमका रहा है मानों तुम्हें एक दूसरा कंकण उपहार में दे रहा हो ॥ २१ ॥

संस्कृतभावार्थ—रामः सीतां प्रति कथयति—हे कोपनशीले सीते ! त्वया
कुतूहलवशात् साम्प्रतम् विमानवातायनात् यः स्वकीयः करः निस्सारितः, तेन
स्पृश्यमानः अयम् घनः विद्युद्रूपं बलयम् प्रकाश्य त्वाम् प्रसादयितुम् अपरं
बलयम् अर्पयति इति मे प्रतीयते । प्रकारान्तरेण रामः सीताम् इदमपि सूचयति
यत् साम्प्रतम् विमानम् मेघमार्गेण संचरमाणं विद्यते, यतः त्वद्धस्तः बहि-
निस्सारितः मेघैः परिवृतो दृश्यते, अत एव च बहिः विद्युत्स्फुरणमपि
पश्यते ॥ २१ ॥

व्याख्या—चण्डि—चण्डते कुप्यति या असौ चण्डी (✓चण्ड्+अच्+
ङीप् स्त्रियाम्) संबोधने हे चण्डि=हे कोपनशीले=क्रोधी स्वभाव वाली ।
'चण्डत्वत्यन्तकोपनः' इति अमरः । कुतूहलिन्या—कुतूहलम् अस्ति यस्याः
सा कुतूहलिनी, तथा कुतूहलिन्या=कौतुकवत्या=कुतूहलवश । वातायन-
लम्बितेन—ईयते अनेन इति अयनम् (✓इ+ल्युट्=अयनम्) । वात-य
अयनम् वातायनम् तत्र लम्बितः वातायनलम्बितः तेन वातायनलम्बितेन=
गवान्वावश्रंसितेन=खिड़की से लटकाए हुए । करेण—हस्तेन । स्पृष्टः=
छुआ हुआ । स्पृश्+क्त+स्पृष्ट । उद्भिन्नविद्युद्बलयः=उत्+✓भिद्+
त=उद्भिन्न । विशेषेण द्योतते इति विद्युत् (वि+✓द्युत्+क्विप्) ।
विद्युद्रूपं बलयम्=विद्युद्बलयम् । उद्भिन्नं विद्युद्बलयं यस्य सः उद्भिन्न-
विद्युद्बलयः=प्रकाशिततडितकंकणः=बिजली रूपी कंकण को चमका कर ।
'तडितसौदामिनी विद्युत् चञ्चला चपला अपि' इति अमरः । घनः=मेघः ।
ते=सीतायै=तुभ्यम् वा । द्वितीयम्=अपरम्=दूसरा । आभरणम्=
आभ्रिते अनेन इति आभरणम्=अलंकरणम् बलयमिति यावत् । आ+
✓भृ+ल्युट्=आभरणम् । आभरणम्=अलंकरणम् बलयमिति यावत् । आ+
लट् प्रथमपुरुष एकवचन ।

टिप्पणी—चण्डि—रामचन्द्र जी ने उपहास में इस विशेषण का प्रयोग किया है। उनका तात्पर्य इतना ही है कि सीता जी बड़े भावुक स्वभाव की और तनिक भी आक्षेप को नहीं सह सकती हैं। सीता जी ने उत्सुकता से अपना हाथ निकाला ही था, कि मेघों में यकायक बिजली चमकी पड़ी। सीता जी कुछ भयभीत सी हो उठती हैं और मेघों के प्रति क्रुद्ध हो जाती हैं। रामचन्द्र जी उनके क्रोध को शान्त करने के लिए कहते हैं कि मेघों का उपहार रूप से उन्हें कंकण दे रहा है तथा उन्हें क्रोध नहीं करना चाहिए। कवि ने वैसे बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा प्रस्तुत की है।

हेमाद्रि और चरित्रवर्धन आदि टीकाकारों ने चण्डी शब्द की एक-एक प्रकार से भी व्याख्या की है। उनका कहना है कि मेघ को बिजली के रूप में देखकर सीता जी भ्रमवश रामचन्द्र जी को किसी अन्य के साथ समझ बैठती हैं और इसलिए मेघ से बड़ी क्रुद्ध हो जाती हैं। इस क्रोध को दूर करने के लिये ही रामचन्द्र जी का यह कथन है—आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयम्। चण्डि विशेषण भी इसीलिए प्रयुक्त किया गया है। यह व्याख्या वस्तुतः किताब कल्पना ही कही जा सकती है। वास्तव में 'चण्डि' विशेषण प्रेमसूचक है और भावुकता को व्यक्त करता है। मेघ भी सीता जी की भावुक प्रकृति को जान कर ही उन्हें फौरन कंकण भेंट कर रहा है।

वाच्यपरिवर्तनम्—हे चण्डि ! कुतूहलिन्या त्वया वातायनलंबितेन कर्तुं स्पृष्टेन उद्भिन्नविद्युद्वलयेन घनेन ते द्वितीयाभरणमिव आमुच्यते । कर्तुं वाच्यं से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ २१ ॥

२२—हे सीते ! देखो, यह जनस्थान है, ऋषियों के निर्जन आश्रम स्थान से बस रहे हैं—

अमी जनस्थानमपोढवित्तं मत्वा समारब्धनवोटजानि ।
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोक्तिस्तान्याश्रममण्डलानि ॥ २२ ॥
सब्जी०—अमी इति । अमी चीरभृतस्तापसा जनस्थानमपोढविघ्नमपास्तकिया मत्वा ज्ञात्वा समारब्धा नवोटजाः पर्याशाः । येषु तानि 'पर्याशालोरजोऽस्त्रिया

इत्य
य
जा
वि
अप
वि
प्र
अ
व
चो
स्थ
✓
क
रि
न
र
चि
ता
ल
स्
स
क

इत्यमरः । चिरोज्झितानि, राक्षसभयादित्यर्थः । आश्रममण्डलान्याश्रमविभागान् ।
यथास्वम् स्वमनतिक्रम्याध्यासतेऽधितिष्ठन्ति ।

अन्वयः—अमी चीरभृतः जनस्थानम् अपोढविघ्नम् मत्वा समारब्धनवोट-
जानि चिरोज्झितानि आश्रममण्डलानि यथास्वम् अध्यासते ॥ २२ ॥

हिन्दी अनुवाद—हे सीते ! देखो, यह सामने जनस्थान है । अब इसको
विघ्नरहित समझ कर तपस्विगण यहाँ आ गये हैं और चिरकाल से छोड़े हुए
अपने-अपने आश्रमों में पर्णशालाएँ बना कर रहने लगे हैं ।

संस्कृतभावार्थ—हे वैदेहि ! पश्य, इदम् अस्माकम् सम्मुखे जनस्थानम्
विद्यते । पुरा राक्षसानाम् भयात् तपस्विनः इदम् स्थानम् त्यक्त्वा अन्यत्र
गतवन्तः । साम्प्रतं राक्षसानाम् नाशात् अनुम् प्रदेशम् विघ्नरहितं ज्ञात्वा अब
आगताः सन्ति, स्वेषु स्वेषु आश्रमेषु च नवीनाः पर्णशालाः निर्माय शान्तपूर्वकम्
वसितुं प्रवृत्ताः ।

व्याख्या—अमी । चीरभृतः—चीराणि कषायवस्त्राणि विभ्रति इति
चीरभृतः=तपस्विनः, कषायवस्त्रधारिणः । चीर + भृ + क्विप् । जनानाम्
स्थानम्=जनस्थानम्=एतन्नामकम् स्थानम् । अपोढविघ्नम्—अप +
वृ + क्त = अपोढ = गया हुआ । विहन्यते एभिः इति विघ्नाः (वि + हन् +
क्त) । अपोढाः विघ्नाः यस्मात् तत् अपोढविघ्नम् = अपास्तविघ्नम् = विघ्नो से
रहित । मत्वा = ज्ञात्वा / मन् + क्त्वा = मत्वा । समारब्धनवोटजानि—
नवाश्चते उटजाः = नवोटजाः । समारब्धाः नवोटजाः येषु तानि समारब्धनवो-
टजानि = प्रारब्धनवीनकुटीराणि । बनाए गये हैं नए कुटीर जिनकी में ।
चिरोज्झितानि—उज्झ + क्त = उज्झित । चिरम् उज्झितानि = चिरोज्झि-
तानि = चिरपरित्यक्तानि = बहुत दिनों से छोड़ दिए गये । आश्रममण्ड-
लानि—आश्रमाणां मण्डलानि = आश्रममण्डलानि = आश्रमपरिधान । यथा-
स्वम्—स्वम् स्वम् अनतिक्रम्य = यथास्वम् = अपने अपने । अन्वयीभाव
समास । अध्यासते = अधितिष्ठन्ति निवास करते हैं । ज्ञानि + ज्ञाप् ।
ते प्रथमपुरुष बहुवचन । आम् यादु अर्थादि गणी है । अध्यासते के योग से

आश्रममण्डलानि में 'अविशीङ्स्थासां कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होने
द्वितीया विभक्ति हो गई है ।

टिप्पणी—जनस्थानम्—दण्डक महावन का पूर्वी भाग जनस्थान कहला
था । नासिक नगर (जहाँ कि शूर्पणखा की नाक काटी गई थी) इसी जन
है । शुक्राचार्य की कन्या विरजा के साथ दुर्व्यवहार करने के कारण राजा
दण्ड और उनका राज्य भस्मसात् कर दिया गया था । फिर यह प्रदेश
गहन वन बन गया । जहाँ पर ऋषि लोग अपने आश्रम बनाकर तपस्या क
लगे, वह स्थान जनस्थान कहलाने लगा । कालान्तर में रावण ने खर और
दूषण इन दो राक्षस वीरों के देखरेख में यह प्रान्त रख दिया था । अ
वनवास में रामचन्द्र जी ने यहाँ ही निवास किया और शूर्पणखा से यहाँ
ही भेंट हुई थी ।

अपोदविघ्नम्—जनस्थान में राक्षस बड़ा उपद्रव किया करते थे । रामच
जी ने ही यहाँ से राक्षसों को भगाया और फिर से ऋषियों के लिए तपस्
योग्य यह स्थान बनाया ।

वाच्यपरिवर्तनम्—अमीभिः चीरभृद्भिः जनस्थानम् अपोदविघ्नं स
समारब्धनवोटजानि चिरोज्झितानि आश्रममण्डलानि यथास्वम् अध्यास्यन्ते
कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ २३ ॥

२३—वह स्थान जहाँ कि मैंने एक नूपुर पाया—

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।

अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥ २३ ॥

सञ्जी०—सैषेति । सा पूर्वानुभूता स्थल्येषा दृश्यत इत्यर्थः । यत्र स्थ
त्वां विचिन्वतान्विष्यता मया । त्वच्चरणारविन्देन यो विश्लेषो वियोगस्तेन यदु
तस्मादिव बद्धमौनम् निःशब्दम् । उर्व्यां भ्रष्टमेकं नूपुरं मञ्जीरः । "मञ्जी
नूपुरोऽन्नियाम्" इत्यमरः । अदृश्यत दृष्टम् । हेतुत्वेत्ता ।

अन्वयः—एषा सा स्थली, यत्र त्वाम् विचिन्वता मया त्वच्चरणारवि
विश्लेषदुःखाद् इव बद्धमौनम् उर्व्याम् नूपुरम् अदृश्यत ।

हिन्दी अनुवाद—यह वह ही स्थान है जहाँ कि तुम्हें ढूँढ़ते हुए मैंने पृथ्वी पर पड़ा हुआ तुम्हारा एक नूपुर देखा जो कि चुपचाप पड़ा हुआ था मानो तुम्हारे चरणकमल के वियोग के दुःख में चुपचाप पड़ा हो ।

संस्कृतभावार्थ—रामः सीतां प्रति कथयति—इदम् तदेव स्थानम् वर्तते, यत्र त्वाम् अन्वेपमाणः अहम् पृथिव्यां पतितम् तव एकं नूपुरम् अपश्यम्, यत् खलु नितान्तम् निःशब्दम् आसीत् । मन्ये नूपुरमपि त्वच्चरणकमलविरहेण कातरम् भूत्वा अन्यमनस्कतया तूष्णींभावम् अधारयत् ।

व्याख्या—एषा सा पूर्वानुभूता स्थली = समतलभूमिः दृश्यते । यत्र = यस्मिन् स्थाने = जिस जगह । यत् + त्रल् = यत्र । 'सप्तम्यात्त्रल्' इस सूत्र से त्रल् प्रत्यय । विचिन्वता = अन्विष्यता । वि + √चि + तु + शत् = विचिन्वत् तेन विचिन्वता । त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात्—चरणः एव अरविन्दम् चरणारविन्दम् (उत्तम कर्मधारयसमास) । तव चरणारविन्दम् = त्वच्चरणारविन्दम् (षष्ठी तत्पुरुष) । तेन यो विश्लेषो वियोगस्तेन यद् दुःखम् तस्मात् = त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखात् = त्वत्पादपद्मवियोगकलेशात् । तुम्हारे—चरण कमल से वियुक्त हो जाने के कारण उत्पन्न दुःख से । बद्धमौनम्—मुनेः भावः मौनम् (मुनि + अण्) । बद्धम् मौनं येन तत् बद्धमौनम् = निःशब्दम् = शब्दरहित । उन्व्याम् = पृथिव्याम् । भ्रष्टम् = पतितम् । √भ्रश् + क = भ्रष्टम् । नूपुरम् = मञ्जीरम् । 'मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्' इति अमरः । अदृश्यत् = दृश्यम् । √दृश् + कर्मणि लङ् प्रथमपुरुष एकवचन ।

टिप्पणी—भ्रष्टम् नूपुरम्—स्त्रियों द्वारा पैरों में गट्टे के ऊपर पहिने जाने वाले आभूषण-विशेष को नूपुर कहते हैं । इसमें छोटे छोटे पुँवरु बँधे होते हैं जो कि प्रत्येक चरणन्यास पर ध्वनि करते हैं ।

जब रावण सीता जी को आकाशमार्ग से ले जा रहा था, तब सीता जी ने अपने वस्त्र और आभूषण पृथ्वी पर फेंक दिए थे ताकि रामबन्धु जी सरल-तापूर्वक उनका पता लगा सकें । यहाँ पर जनस्थान में पृथ्वी पर पाए गये ऐसे ही एक नूपुर का उल्लेख किया गया है ।

कवि ने यहाँ पर हेतूप्रेक्षा की योजना की है। नूपुर तो यों ही चुप पड़ा हुआ है। उसके चुप होने का एक अन्य हेतु ही संभावित किया गया है।

वाच्यपरिवर्तनम्—तथा एतया स्थत्या (भूयते) यत्र त्वाम् विचिन्तयन् अहम् त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादि वबद्धमौनम् उर्व्या भ्रष्टम् एकम् नूपुरम् अपश्यम् । कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य में परिवर्तन किया गया है।

२४—हे सीते ! तुम्हारी खोज में लताओं ने भी सहायता की—

त्वं रक्षसा भीरु ! यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।

अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवन्त्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥ २४ ॥

सञ्जी०—त्वमिति—हे भीरु भयशीले “ऊडुतः” इत्यूङ् । ततो नदीत्वात् बुद्धौ ह्रस्वः । त्वं रक्षसा रावणेन यतः येन मार्गेण । सार्वविभक्तिकस्ततिः । अपनीता अपहृता तं मार्गं वागिन्द्रियाभावाद्वक्तुमशक्नुवन्त्यः एता लता आवर्जिता नमिताः पल्लवाः पाणिस्थानीया याभिस्ताभिः स्वावयवभूताभिः कृपया मेऽदर्शयन् । हस्तचेष्टयाऽसूचयन्नित्यर्थः । “शाखा वृक्षान्तरे भुजे” इति विश्वः । लतादीनामपि ज्ञानमस्त्येव । तदुक्तं मनुना—“अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः” इति ।

अन्वयः—हे भीरु ! त्वं रक्षसा यतः अपनीता, तम् मार्गम् एताः लता वक्तुम् अशक्नुवन्त्यः (सत्यः) आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः कृपया मे अदर्शयन् ॥ २४ ॥

हिन्दी अनुवाद—भीरु स्वभाव वाली हे सीते ! रावण तुम्हें जिस मार्ग ले गया था, उस मार्ग को बताने में असमर्थ यह लताएँ कृपा करके मुझे मुझे हुए पत्तों वाली अपनी शाखाओं से सूचित करती थीं ॥ २४ ॥

संस्कृतभावार्थ—रामः सीतां कथयति—भयशीले हे सीते ! येन मार्गेण रावणः त्वाम् लंकाम् अनैषीत्, तम् मार्गम् एताः पुरस्तात् वर्तमानाः लता एव वक्तुम् असमर्थाः अपि नमितपत्राभिः स्वशाखाभिः कृपया मामसूचयन् । अयमपि प्रायः यत् रामचन्द्रम् सीतावियोगविधुरम् दृष्ट्वा लताः अपि दयालुः बभूवुः, स्वशाखास्तैः हस्तैः मार्गं सूचितवन्ति ।

व्याख्या—भीरु = भयशीले । भेतुम् शीलम् अस्याः इति भीरुः, तत्संबोधने हे भीरु । / भी + कृ + ऊङ् स्त्रियाम् = भीरु । संबोधन में ऊ को ह्रस्व हो गया है । यह विशेषण बड़ा ही सुन्दर है । यह सीता जी के रावण द्वारा अपहरण किए जाने के समय के भय को स्पष्टतया अंकित कर देता है । त्वम् । रत्नसा = रत्नसेन रावणेन । यतः = येन मार्गेण । यत् + टा = यतः । यत् शब्द से तृतीया विभक्ति टा के अर्थ में 'सार्वविभक्तिकस्तसिः' इस सूत्र से तसि प्रत्यय हो गयी है । अपनीता = हृता = ले जायी गयी । अपनी + कृ + टाप् स्त्रियाम् । तं मार्गम् = पन्थानम् । वक्तुम् = कथयितुम् = कहने के लिए । अशक्नुवन्त्यः = असमर्थाः । / शक् + नु + शतृ + डीप् = शक्नुवन्ती, ताः शक्नुवन्त्यः, न शक्नुवन्त्यः = अशक्नुवन्त्यः । एताः लताः । आवर्जित-पल्लवाभिः—आवर्जिताः पल्लवाः यामिः तामिः आवर्जितपल्लवाभिः = नमितपत्राभिः = झुके हुए पत्तों वाली । शाखाभिः = भुजैः । 'शाखा वृक्षान्तरे भुजे' इति विश्वः । कृपया = दयावशात् यहाँ हेतु में तृतीया हुई है । मे = मत्तम् । संप्रदाने चतुर्थी । अदर्शयन् = हस्तचेष्टयाऽसूचयन् । / दृश् + णिच् + लङ् प्रथमपुरुष बहुवचन ॥ २४ ॥

टिप्पणी—कृपया लताः मे—लता इत्यादि में भी ज्ञानशक्ति होती है । मनु ने भी कहा है—अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः । वनस्पतियाँ भी आन्तरिक रूप से ज्ञान वाली होती हैं तथा सुख-दुःख का भी इन्हें अनुभव होता है । इसीलिए कालिदास ने लताओं में कृपया का सम्बन्ध जोड़ा है । शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः—शाखाएँ एक प्रकार से लताओं के हाथ ही हैं । लताओं ने शाखाओं द्वारा इस प्रकार मार्ग दिखलाया जैसे कि कोई दयालु स्त्री अपने हाथ से मार्ग बताए ॥ २४ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—हे भीरु ! त्वाम् रत्नः यतः अपनीतवान्, सः मार्गः वक्तुम् अशक्नुवतीभिः एताभिः लताभिः आवर्जितपल्लवाभिः शाखाभिः मे कृपया अदर्शयत । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ २४ ॥

२५—हिरनियों ने भी मेरी सहायता की—

मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन् माम् ।

व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्याम् उत्पद्मराजीनि विलोचनानि ॥२५॥

सञ्जी०—मृग्यश्चेति । दर्भाङ्कुरेषु भक्ष्येषु निर्व्यपेक्षा निःस्पृहा मृग्याङ्गनाश्चोत्पद्मराजीनि विलोचनानि दक्षिणस्यां दिशि व्यापारयन् प्रवर्तयन्त्यः सत्यस्तवागतिज्ञं गत्यनभिज्ञं मां समबोधयन् । दृक्चेष्टया त्वद्गतिबोधयन्नित्यर्थः ।

अन्वय—दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षाः मृग्यः च उत्पद्मराजीनि विलोचनानि दक्षिणस्याम् दिशि व्यापारयन्त्यः तव अगतिज्ञम् माम् समबोधयन् ॥ २५ ॥

हिन्दी अनुवाद—हिरनियों ने भी जो कि कुश के अंकुरों के खाने से उदासीन थीं, अपने नेत्रों को जिनके कि पलक ऊपर उठे हुए थे दक्षिण ओर फेर कर मुझे जो कि तुम्हारी गति के सम्बन्ध में अनभिज्ञ था तुम्हारे मार्ग का संकेत दिया ॥ २५ ॥

संस्कृतभावार्थ—रामः सीतां प्रति कथयति—हे सीते ! एताः हरिण्यः अस्त्वाम् रावणेन नीयमानाम् अपश्यन् । अत एव त्वाम् अन्विष्यन् यदा अहम् अत्र आगतवान्, एताः हरिण्यः अपि स्वमुखप्रासभक्षणविमुखाः भूत्वा स्वनेत्राणि दक्षिणदिशायाम् प्रावर्तयन् । अहम् तव गमनमार्गम् न ज्ञातवान् । एताः हरिण्यः एव स्वनयनव्यापारैः माम् तव गमनदिशाम् असूचयन् ॥ २५ ॥

व्याख्या—दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षाः—वि + अप + ईच् + अ + क्त = स्त्रियाम् = व्यपेक्षा । निर्गता व्यपेक्षा आभ्यः इति निर्व्यपेक्षाः । दर्भाङ्कुराः दर्भाङ्कुराः, तेषु निर्व्यपेक्षाः = दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षाः = कुशप्रदेहभक्षणपराङ्मुखाः = कुश के अंकुरों के खाने से विमुक्त । मृग्यः = हरिण्यः उत्पद्मराजीनि—पद्मराजा राजयः = पद्मराजयः, उद्गताः पद्मराजयः के तानि उत्पद्मराजीनि = उन्नेत्रलोमपंक्तीनि = ऊपर उठे हुए पलकों वाली विलोचनानि = नेत्राणि । विलोच्यते एभिः इति विलोचनानि (वि + लोच् + यु) । व्यापारयन्त्यः = प्रवर्तयन्त्यः ।

णिच् + शत् + डीप् स्त्रियाम् = व्यापारयन्ती । तव अगतिज्ञम् = जानाति इति
ज्ञः (शा + क) इसकी व्युत्पत्ति पृष्ठ २ में गुणज्ञः के व्याख्या में देखिए ।
गतेः ज्ञः = गतिज्ञः । न गतिज्ञः = अगतिज्ञः तम् अगतिज्ञम् = गत्यन-
भिज्ञम् । समबोधयन् = दृक्चेष्टया त्वद्गतिम् अज्ञापयन् । सम् + बुध + णिच् +
लङ्—प्रथमपुरुष बहुवचन ।

टिप्पणी—मृगश्च दर्माङ्कुरनिर्व्यपेक्षाः—कवि यह सूचित करना चाहता
है कि रावण द्वारा सीता के बलात् अपहरण करने पर हिरन भी शोकाकुल
हो गये थे । हिरनों के सम्बन्ध में यह विदित है ही कि यह किसी असाधारण
दृश्य को देख कर घास खाना बन्द कर देते हैं । हिरनियों का उल्लेख विशेष
रूप से इसलिए किया गया है कि वे सीता जी से स्त्री योनि होने के कारण
विशेष सहानुभूति रख सकती हैं ।

वाच्यपरिवर्तनम्—दर्माङ्कुर निर्व्यपेक्षाभिः मृगीभिः उत्पक्ष्मराजीनि
विलोचनानि दक्षिणस्याम् दिशि व्यापारयन्तीभिः तव अगतिज्ञः अहम् समबोध्ये ।
कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ २५ ॥

२६—माल्यवान् पर्वत—प्रथम वर्षा और रामचन्द्र जी का अश्रुविसर्जन—
एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृंगम् ।

नवं पयो यत्र धनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ॥ २६ ॥

सञ्जीव—एतदिति । माल्यवतो नाम गिरेरम्बरलेख्यभ्रंक्षं शृङ्गमेतत्पुर-
स्तादग्राविर्भवति । यत्र शृङ्गे धनैर्मैधैर्नवं पयो मया त्वद्विप्रयोगेण यदश्रु तच्च
समं युगपद्विसृष्टम् । मेघदर्शनाद्वर्षातुल्यमश्रु विमुक्तमिति भावः ।

अन्वय—माल्यवतः गिरेः अम्बरलेखि एतत् शृंगम् पुरस्तात् अविर्भवति
यत्र धनैः नवं पयः मया त्वद्विप्रयोगाश्रु च समम् विसृष्टम् ॥ २६ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी कहते हैं—हे सीते ! देखो, सामने
माल्यवान् पर्वत का यह गगनचुम्बी शिखर चमक रहा है । वर्षा के प्रथम जल
के साथ-साथ यहाँ पर तुम्हारे वियोग में मैंने आँसू भी बरसाए थे । रामचन्द्र
जी का आशय यह है कि वर्षा श्रुत के आने पर मेघों का जलधारा देखकर

मैं इतना विरह-विह्वल हो गया था कि मेरी आँखों से भी बरबस अश्रुधारा चली थी ॥ २६ ॥

संस्कृतभावार्थ—रामचन्द्रः सीतां प्रति कथयति—हे सीते ! माल्य पर्वतस्य पुरस्तात् दृश्यमानम् गगनचुम्बि एतत् शिखरं पश्य । प्रावृष मेघाः जलधाराः अत्र अमुञ्चन्, तदा त्वद्विरहकातरः अहम् अपि आत्मघारयितुम् अशक्तः सन् अश्रुधाराः मुनोच ॥ २६ ॥

व्याख्या—माल्यवतः = एतन्नामकगिरेः । अम्बरलेखि—अम्बरम् आशम् लिखाति इति तत् अम्बरलेखि = आकाशचुम्बि । अम्बर + लिखिणि = अम्बरलेखि । अम्बरलेखि यह नपुंसक लिङ्ग है, क्योंकि इसका विशेष शृंगम् भी नपुंसक लिंग है । पुलिङ्ग में अम्बरलेखी और नपुंसक लिंग में अम्बरलेखिन् होता है । ‘अम्बरम् व्योम पुष्करम्’ इति अमरः । शृंगम् = शिखरम् = चोटी । ‘कूटोऽस्त्री शिखरं शृंगम्’ इति अमरः । पुरस्तात् = अग्रे = सामने यह शब्द एक अव्यय है । पूर्वस्यां दिशि इति पुरस्तात् । पूर्व शब्द से पूर्व शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः’ इस सूत्र से अस्ता प्रत्यय, तदनन्तर ‘अस्ताति च’ इस सूत्र से पूर्व को पुर आदेश आविर्भवति = प्रकटीभवति = दिखाई दे रहा है । आविस् + भू + लट् घनैः = मेघैः । नवम् = नवीनम्, प्रथमम् । पयः = जलम् । प्रथमवर्षाजलम् मयाच = रामचन्द्रेण । त्वद्विप्रयोगाश्रु—वि + प्र + युज् + घञ् = विप्रयोगः वियोगः । तत्र विप्रयोगः = त्वद्विप्रयोगः = त्वद्विप्रयोगेण अश्रु = त्वद्विप्रयोगाश्रु = त्वद्विरहवाष्पः = तुम्हारे वियोग में आँसू । समम् = युक्तम् एकस्मिन् काले = एक साथ । विसृष्टम् = विमुक्तम् । मेघानवलोक्य विह्वलरोऽहम् वर्षतुल्यम् अश्रूणि अमुञ्चम् ॥ २६ ॥

इस श्लोक में सहोक्ति अलंकार है ।

वाच्यपरिवर्तनम्—माल्यवतः गिरेः अम्बरलेखिना शृंगेण एतेन पुरस्तात् आविर्भूयते, यत्र घनाः नवः पयः विसृष्टवान्, अहम् च त्वद्विप्रयोगाश्रु विसृष्टवान् । प्रथम वर्षाकाल में वर्षाकाल से भाववाच्य तथा दूसरे में वर्षा वाच्य से कर्तृवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ २६ ॥

२७—सूखे तालावों की वर्षा से सिक्त होने पर सुगन्ध तथा कदम्बपुष्पों का सौम्य और मयूरों की मधुर वाणी—

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमर्धोद्गतकेशरं च ।

स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुर्य स्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे ॥२७॥

सञ्जी०—गन्धश्चेति । यस्मिञ्छुद्धे धाराभिर्वर्षधाराभिराहतपल्वलानां गन्धश्च । अर्धोद्गतकेशरं कादम्बं नीपकुसुमं च । स्निग्धाः मधुराः शिखिनां बहिराणाम् । “शिखिनौ बह्निर्बहिर्गौ” इत्यमरः । केकाश्च त्वया विना मेऽसह्यानि वन्युः । “नपुंसकमनपुंसकेन—” इति नपुंसकैकशेषः ।

अन्य—यस्मिन् धाराहतपल्वलानाम् गन्धः च, अर्धोद्गतकेशरम् कादम्बं च, स्निग्धाः शिखिनाम् केकाः च त्वया विना मे असह्यानि वन्युः ॥ २७ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे सीते ! माल्यवान् पर्वत की इस चोटी पर ही वर्षा की धाराओं से सिक्त सूखे सरोवरों की सुगन्ध, अथखिले कदम्बपुष्प और मयूरों की मधुर वाणियाँ तुम्हारे विगोग में मेरे लिए बड़ी असह्य हो गई थीं ॥ २७ ॥

संस्कृतभावार्थ—रामचन्द्रः पुनरपि स्वानुभूतां विरहवेदनां सीतोदव्यै निवेदयति—हे प्रिये ! त्वाम् विना अस्मिन् पर्वते मे दिवसाः बहुना कष्टेन व्यतीतानि । यदा वर्षाकाले प्रथमधाराभिः शुष्कसरोवराः सिक्ताः अभवन् तदा तेषां मधुरः अपि सुगन्धः मे अतीव अरुचिकरोऽभवत् । अर्धप्रस्फुटितानि कदम्बपुष्पाणि मनसः संतापकराणि एव अभवन् । मयूराणाम् श्रुतिमधुराणि वचनानि तु मे हृदयं विदारयामासुरेव । ये-ये पदार्थाः त्वत्सन्निधौ सुखकराणि अभवन्, ते त्वद्वियोगे नितरां क्लेशकराणि एव अजायन्त ॥ २७ ॥

व्याख्या—यस्मिन् = माल्यवतः शृंगे = माल्यवान् पर्वत की जिस चोटी पर धाराहतपल्वलानाम्—आ + हन् + क्त—आहत । धाराभिः आहताः = धाराहताः, धाराहताश्च ते पल्वलाः, धाराहतपल्वलाः तेषाम् धाराहतपल्वलानाम् = वर्षाधारासिक्तशुष्कजलाशयानाम् = वर्षा की धारा से सिक्त सूखे

तालावों का । 'वेशन्तः पल्लवम् चाल्पसरः' इति अमरः । गन्धः = आमोदः = सुगन्ध । अर्धोद्गतकेशरम्—उत् + गम् + क्त = उद्गत । अर्धे यथा तथा उद्गताः केशराः यस्मात् तत् अर्धोद्गतकेशरम्—ईषद्विकसितकिञ्जल्कम् = कुखिला हुआ । कादम्बम्—कदम्बस्य कुसुमम् = कादम्बन् = नीपकुसुमम् । कदम्ब का फूल । शिखिनाम् = शिखा अस्ति एषाम् इति शिखिनः, तेषाम् शिखिनाम् = मयूराणाम् । 'शिखिनौ बहिर् बार्हणौ' इति अमरः । स्निग्धाः = मधुराः । केकाः = मयूराणाम् वाण्यः = मयूरों की वाणियाँ । 'केका वाणी मयूरस्य' इति अमरः । त्वया = सीतया । विना = ऋते । त्वया मे विना के योग के कारण 'पृथग्विनानानामिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्' इस सूत्र से तृतीया विभक्ति हो गई है । मे = मम । असह्यानि—सोढुम् योग्यानि = सह्यानि न सह्यानि = असह्यानि (नञ् तत्पुरुष), अरुचिकराणि । बभूवुः = अभूवन् ।
 ✓ भू + लिट् प्रथमपुरुष बहुवचन ।

टिप्पणी—वर्षा ऋतु में प्रथम जलधारा गिरने पर शुष्क मिट्टी में से सुगन्ध निकलती है, कदम्बपुष्प प्रचुरता से इधर-उधर दिखाई देते हैं और मयूरवृन्द भी अपनी मधुर वाणी से वनभूमि को गुञ्जरित बना देता है । यह सब दृश्य प्रेमियों के संयोग में जितने ही आनन्ददायक होते हैं, विरह में उतने ही दुःखदायक हो जाते हैं । इस श्लोक में इन सब दृश्यों को देखकर रामचन्द्र जी को जो विरह-वेदना हुई, उसका ही वर्णन किया गया है ।

असह्यानि—असह्यः, असह्यम्, असह्याश्च इस प्रकार क्रमशः पुलिङ्ग, नपुंसक लिंग और स्त्रीलिंग के स्थान में साधारण रूप से 'असह्यानि' यह नपुंसकलिंग प्रयुक्त हुआ है । 'नपुंसकमनपुंसकेन एकवच्चास्यान्यतरस्याम्' इस सूत्र द्वारा केवल नपुंसक शेष रहता है ॥ २७ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—यस्मिन् धाराहतपल्लवानां गन्धेन, अर्धोद्गतकेशरेण कादम्बेन च स्निग्धामिः शिखिनां केकाभिः च असह्यैः बभूवे । कर्तृवाच्य के भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ २७ ॥

=
वया
म।
वाम्
=
गी
के
ीवा
न
से
और
यह
तेने
वन्द
ग,
यह
इल
रेण
ले

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

२८—मेघगर्जन की स्मृति—

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम् ।

गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथञ्चिद्वधनगर्जितानि ॥ २८ ॥

सञ्जी०—पूर्वेंति । किञ्च हे भीरु ! यत्र शृङ्गे पूर्वानुभूतं कम्पोत्तरं कम्पप्रधानं तवोपगूढमुपगूहनं मेघस्तनितश्रवणेन भीरुस्वभावत्वात्त्वया, कृतमालिङ्गनमित्यर्थः । स्मरता मया गुहाविसारीणि धनगर्जितानि कथञ्चिदतिवाहितानि स्मारकत्वेनोद्दीप-
क्त्वात्क्लेशेन गमितानीत्यर्थः ।

अन्वय—हे भीरु यत्र पूर्वानुभूतं कम्पोत्तरम् तव उपगूढम् स्मरता मया गुहाविसारीणि धनगर्जितानि कथञ्चित् अतिवाहितानि ॥ २८ ॥

हिन्दी अनुवाद—भयशीले हे सीते ! माल्यवान् पर्वत की यह वही चोटी है जहाँ पर कि कम्पन से युक्त पूर्वानुभूत तुम्हारे आलिङ्गन को याद करते हुए मैंने गुफाओं में गूँजने वाले मेघगर्जन को बड़ी कठिनाई से सहन किया था ।

इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि पहिले जब रामचन्द्र जी और सीता जी इस पर्वत पर रहते थे, तब वर्षा ऋतु में जब मेघ गरजते थे तो डर के मारे काँपती हुई सीता जी रामचन्द्र जी को आलिङ्गित कर लेती थीं । उनके वियोग-काल में वर्षा ऋतु आने पर जब भयंकर मेघ-गर्जन हुआ तो रामचन्द्र जी को सीता जी की स्मृति के कारण समय निकालना कठिन हो गया ॥ २८ ॥

संस्कृतभावार्थ—रामः सीतां प्रति कथयति—हे प्राणप्रिये सीते ! अस्मिन् माल्यवति पर्वते निवसन् वर्षाकाले गुहासु प्रतिध्वन्यमानानि मेघगर्जनानि श्रुत्वा अहम् अतीव कातरोऽभवम्, यतः मेघगर्जनानि श्रुत्वा मे मनसि सहस्रैव कम्पनयुक्तानां तव आलिङ्गनानां स्मृतिः जागर्ति स्म । महता कष्टेन खलु वर्षाकालः समाप्ति गतः ॥ २८ ॥

व्याख्या—हे भीरु = भयशीले । यत्र = यस्मिन् । शृङ्गे = शिखरे = चोटी पर । पूर्वानुभूतम्—पूर्व च तत् अनुभूतम् = पूर्वानुभूतम् = प्रागुपभुक्तम् = पहिले उपभुक्त किए हुए । कम्पोत्तरम्—कम्पः उत्तरः यस्मिन् तत् कम्पोत्तरम् = कम्पप्रधानम् = कम्पन से युक्त । उपगूढम्—उप + गुह् + क्त भावे = उपगू-
ढम् = आलिङ्गनम् । स्मरता = स्मृतिविषय

कुर्वता = याद करते हुए । मया = रामचन्द्रेण । गुहाविसारीणि = कन्दर-प्रति-
 ध्वनितानि = गुफाओं में प्रतिध्वनित । विसर्तुं शीलम् एषाम् इति विसारीणि
 (वि + √ स् + णिनि) । गुहासु विसारीणि = गुहाविसारीणि । घनगर्जि-
 तानि = गर्ज + क्त (भावे) गर्जितानि; घनानां गर्जितानि = घनगर्जितानि =
 मेघनिर्घोषाः । कथंचित्—किम् + थम् + चित् = कथंचित् = महता कष्टेन =
 बड़ी कठिनता से । किम् शब्द से 'प्रकार' अर्थ में थम् प्रत्यय, फिर कथम्
 शब्द से चित् का योग । इस प्रकार कथंचित् बनता है । इसका शब्दार्थ 'किसी
 प्रकार' होता है । भावार्थ कठिनाई से माना जाता है । अतिवाहितानि =
 यापितानि । अति + √ वह् + णिच् + त = अतिवाहित । पूर्वानुभूत सुखानाम्
 स्मारकत्वेन उद्दीपकत्वात्कलेशेन गमितानि ॥ २८ ॥

टिप्पणी—माल्यवान् पर्वत को देख कर रामचन्द्र जी को अपनी विरहा-
 वस्था याद आ जाती है और उस विरहावस्था के साथ-साथ वे उस पर्वत
 पर बिताए गए अपने पूर्व संयुक्त जीवन का भी स्मरण करते हैं । संयोग
 में जो बातें सुखदायक होती हैं, वियोग में उनकी स्मृति भी दुःखदायक हो
 जाती है ॥ २८ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—हे भीरु ! पूर्वानुभूतम् कम्पोत्तरं तव उपगूढम् स्मरन् अहम्
 यत्र शृङ्गे गुहाविसारीणि घनगर्जितानि कथंचित् अतिवाहितवान् । कर्मवाच्य से
 कर्तृवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ २८ ॥

२९—पृथ्वी से उठी हुई वाष्प से युक्त नवीन कन्दल-पुष्पों को देखकर
 विवाहकालीन धूम से आरक्त सीता जी के नयनों की स्मृति का होना—

आसारसिक्तचित्तिवाष्पयोगात् मामक्षिणोद् यत्र विभिन्नकोशैः ।

विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूममारुणलोचनश्रीः ॥ २९ ॥

सञ्जीवनी—आसारेति । यत्र शृङ्गे विभिन्नकोशैर्विकसितकुड्मलैर्नवकन्दलैः
 कन्दलीपुष्पैरुणवर्णैरासारसिक्तायाः चित्तेर्वाष्पस्यधूमवर्णस्य योगाद्देतोर्विडम्ब्य-
 मानानुक्रियमाणा ते विवाहधूममारुणलोचनश्रीः । सादृश्येत्स्मर्यमाणेति शेषः ।
 मामक्षिणोदपीडयत् ।

अन्वय—यत्र विभिन्नकोशैः नवकन्दलैः आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगात् विडम्ब्यमाना ते विवाहधूममारुणलोचनश्रीः माम् अक्षिणोत् ।

हिन्दी अनुवाद—यह वही माल्यवान् पर्वत है जहाँ कि खिले हुए नवकन्दल-पुष्पों द्वारा वर्षा-जल से सिक्त पृथ्वी से उठी हुई वाष्प के संयोग के कारण अनुकरण की जाती हुई तुम्हारे लोचनों की वह शोभा, जो कि विवाहयज्ञ के धूम के लगने के कारण अरुण हो गई थी, मेरे स्मृति-पटल पर पुनः अंकित हो मुझे दुःख पहुँचाती रही थी ।

संस्कृतभावार्थ—रामः पुनरपि कथयति—हे सीते ! इदम् तदेव माल्यव-च्छिखरं वर्तते यत्र वर्षाकाले नवजलसिक्तायाः पृथिव्याः वाष्पस्य संपर्केण सद्यो विकसितैः कदलीपुष्पैः मे तव नयनश्रीः स्मारिता, या विवाहकाले यशधूमेन अरुणाऽभवत्, सा च स्मृतिः मामत्यन्तम् अपीडयत् ॥ २६ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् शिखरे = जिस शिखर पर । विभिन्नकोशैः—वि + √ भिद् + क्त = विभिन्न । विभिन्नाः कोशाः येषां तानि तैः विभिन्नकोशैः = प्रस्फुटितकुड्मलैः = खिले हुए । नवकन्दलैः = कदलीपुष्पैः नवकन्दल्याः पुष्पाणि इति नवकन्दलानि, तैः । आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगात्—आसा-रेण सिक्ता आसारसिक्ता । आसारसिक्ता चासौ क्षितिः, आसारसिक्तक्षितिः, तस्याः वाष्पः, आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगः, तस्मात् = आसारसिक्तक्षितिवाष्प-योगात् = धारासंपातार्द्रभूमिधूमसम्पर्कात् = वर्षा जल से सिक्त पृथ्वी से उठी हुई वाष्प के सम्पर्क के कारण । विडम्ब्यमाना = अनुक्रियमाणा = अनुकरण की जाती हुई । वि + √ डम् + य + शानच् = कर्मवाच्य में शानच् प्रत्यय । विवाह-धूममारुणलोचनश्रीः—विवाहस्य धूमः विवाहधूमः, तेन अरुणा विवाहधूमारुणा, विवाहधूमारुणा चासौ लोचनश्रीः = विवाहधूममारुणलोचनश्रीः = विवाहधूमरक्त-नयनशोभा । माम् = रामचन्द्रम् । अक्षिणोत् = अपीडयत्—सताती रही ।
✓क्षि + लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

टिप्पणी—आसारसिक्तक्षितिवाष्पयोगात्—इस शब्द में 'हेतु' अर्थ में पञ्चमी विभक्ति हुई है। प्रथमतया—
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

पृथ्वी से उठी हुई वाष्प के सम्पर्क के कारण नवकन्दली-पुष्प खिल रहे थे । दूसरा प्रकार—नवकन्दली-पुष्प पृथ्वी से उठी हुई वाष्प के सम्पर्क के कारण सीता जी के नेत्रों का सफल अनुकरण कर रहे थे । यह दूसरा अर्थ ही अधिक अच्छा है । नवकन्दल-पुष्पों के विकसित होने में भी पृथ्वी की वाष्प का सम्पर्क कारण हो सकता है, लेकिन ऐसा मानने में कोई काव्य-सौन्दर्य नहीं आता है । कालिदास ने सीता जी के विवाह धूमारूपनयनों और वाष्पयोग से संवृक्त अरुण नवकन्दल-पुष्पों में पूर्णोपमा की योजना की है । वाष्प से संवृक्त अरुण नवकन्दल-पुष्पों और विवाह-धूम से संवृक्त अरुण नयनों का सादृश्य स्पष्ट ही है । कन्दलपुष्प—जंगली कदली का पुष्प जो कि वर्षा के प्रारम्भ होते ही खिल उठता है । यह पुष्प गहरे लाल रंग का होता है तथा नयनों से इसकी तुलना उपयुक्त ही है ।

वाच्यपरिवर्तनम्—यत्र विभिन्नकोशैः नवकन्दलैः आसारसिक्तचित्ति-
वाष्पयोगात् विडम्ब्यमानया विवाहधूमारूपलोचनश्रिया अहम् अक्षीये ।
कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ २६ ॥

३०—वेत्रलताओं से आच्छादित तथा हंसों से घिरी हुई पम्पा नामक भील—

उ पान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।

दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ॥ ३० ॥

सञ्जी०—उपान्तेति । उपान्तवानीरवनोपगूढानि पार्श्वविज्जुलवनच्छन्नान्या-
लक्ष्याः ईषद्दृश्याः पारिप्लवाश्चञ्चलाः सारसा येषु तान्यमूनि पम्पासलिलानि
पम्पासरोजलानि दूरावतीर्णा मे दृष्टिरत एव खेदात्पिबतीव । न विहातुमुत्सहत
इत्यर्थः ।

अन्वय—दूरावतीर्णा मे दृष्टिः उपान्तवानीरवनोपगूढानि आलक्ष्य-
पारिप्लवसारसानि अमूनि पम्पासलिलानि पिबति इव ॥ ३० ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे सीते ! देखो,
सामने यह पम्पासरोवर है । इसका जल किनारों पर उगी हुई वेत्र-लताओं से
आच्छादित है और दूर-दूर घूमते हुए सारस पक्षी वेतों के भुरमुट के कारण

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

इसमें कम ही दिखाई पड़ते हैं। मरी दृष्टि से उपान्तवानीरवन थकान हो जाने से इन जलों को मानों पीती सी है।

संस्कृतभावार्थ—माल्यवत्पर्वतादनन्तरं पुष्पकविमानम् पम्पासरोवरोपरि उड्डीयमानम् वर्तते। रामचन्द्रः पुष्पकविमानादेव सीतायै पम्पासरोवरं दर्शयति कथयति च—हे सीते ! पुष्पकविमानात् अधः पतिता मे दृष्टिः पम्पासरोवरात् नैव प्रत्यावर्तते, प्रत्युत दूराद् गमनेन श्रान्ता सती जलानि अनवरतं पिबन्ती इव मह्यम् लक्ष्यते। पश्य, कीदृशो रमणीयः अयं सरोवरः। अस्य जलानि परितः वेत्रलताभिः प्रच्छन्नानि सन्ति, चञ्चलाश्च सारसपक्षिणः इतस्ततः परिभ्रमन्ति, वेत्रलताभिश्च न ते स्पष्टतया द्रष्टुं शक्याः ॥ ३०

व्याख्या—दूरावतीर्णा—दूरात् अवतीर्णा = दूरावतीर्णा = दूरपतिता = दूर से पड़ी हुई। अव + √त् + क + टाप् स्त्रियाम् = अवतीर्णा। दृष्टिः—√दृश् + ति = दृष्टिः = नेत्रे। उपान्तवानीरवनोपगूढानि—उप + √गृह् + क = उपगूढ। अन्तस्य समीपम् उपान्तम् (अव्ययीभावः)। वानीराणां वनानि = वानीरवनानि। उपान्ते वानीरवनानि—उपान्तवानीरवनानि, तैः उपगूढानि = उपान्तवानीरवनोपगूढानि = प्रत्यन्तवेत्रवनाच्छादितानि = किनारों पर के वेत्र-वनों से ढके हुए। आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि—आ + √लक्ष् + णिच् + य = आलक्ष्य। आलक्ष्याः पारिप्लवाः सारसाः येषु तानि आलक्ष्यपारिप्लवसारसानि = ईषदृश्यचञ्चलसारसानि, जहाँ कि घूमते-फिरते सारस पक्षी थोड़े ही दिखाई देते हैं। पम्पासलिलानि—पम्पाया सलिलानि = पम्पासलिलानि = पम्पाजलानि। खेदान् = श्रमात्। पिबति इव = नितरां पश्यत्येव, न विहातुं शक्नोति।

टिप्पणी—दूरावतीर्णा दृष्टिः—विमान में बैठे होने के कारण रामचन्द्र जी पम्पा के जल को बड़ी दूर से देखते हैं। इसलिए यह पद आया है। पम्पासरोवर—मद्रास प्रान्त में बेलारी नगर के पास पम्पासरोवर विद्यमान है। माल्यवान् पर्वत, ऋष्यमूक पर्वत और पम्पासरोवर एक दूसरे से अधिक दूर नहीं हैं।

‘कुछ’ या ‘थोड़ा सा’ इस अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। ‘आङ्गीपदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे’ इति।

अमूनि—इदम्, एतत्, अदस् और तत् के अर्थ इस प्रकार हैं—सन्निहितमिदमो विषयः समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्। अदसश्च विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्। इदम् शब्द निकट के अर्थ में प्रयुक्त होता है, एतद् ‘और अधिक निकट’ के अर्थ में, अदस् शब्द ‘दूर’ के अर्थ में और तत् परोक्ष के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। अमूनि=दूरे विप्रकृष्टतया विद्यमानानि। खेदात्—हेतु में पञ्चमी विभक्ति हुई है। टीकाकार चरित्रवर्धन ने लिखा है—दूरावतीर्णा, अत एव खेदात् श्रमात् दृष्टिः पम्पानाम्नः सरसः सलिलानि वारीणि पिवतीव सादरं पश्यतीत्यर्थः। अन्योऽपि पथिकः श्रान्तः पानीयं पिवति। हेमाद्रि ने भी लिखा है—दूरावतारेऽम्भःपानं युक्तम्। वल्लभदेव ने भी व्याख्या की है—सामिलापदर्शनात्पम्पाजलानि ग्रसतीव। जैसे कोई थका हुआ पथिक खूब जल पीता है, उसी तरह दृष्टि भी दूर से पड़ने के कारण जल को खूब पी रही है। दृष्टि की पैदल चलने वाले यात्री से तुलना की गई है।

वाच्यपरिवर्तनम्—दूरावतीर्णया मे दृष्ट्या उपान्तवानीरवनोपगूढानि आलक्ष्यपारिस्त्वसारसानि अमूनि पम्पासलिलानि खेदात् पीयन्ते इव। कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३० ॥

३१—चक्रवाक पक्षियों के जोड़े का उल्लेख करते हैं—

अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेशराणि।

द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ॥ ३१ ॥

सञ्जी०—अत्रेति। अत्र पम्पासरस्यन्योन्यस्मै दत्तोत्पलकेशराण्यवियुक्तानि रथाङ्गनाम्नां द्वन्द्वानि चक्रवाकमिथुनानि ते तव दूरान्तरवर्तिना मया हे प्रिये! सस्पृहं सामिलापमीक्षितानि। तदानीं त्वामस्मार्पमित्यर्थः।

अन्वय—हे प्रिये! अत्र अन्योन्यदत्तोत्पलकेशराणि अवियुक्तानि रथाङ्गनाम्नाम् द्वन्द्वानि ते दूरान्तरवर्तिना मया सस्पृहम् ईक्षितानि।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

हिन्दी अनुवाद—हे प्रिय ! इस पम्पासरोवर पर एक दूसरे को कमलों के केसर देने वाले तथा परस्पर संयुक्त चक्रवाकों के जोड़ों को तुझसे दूर रहते हुए मैंने बड़ी अभिलाषा के साथ देखा । सारांश यह है कि परस्पर क्रीड़ा करने वाले चक्रवाक मिथुनों को देखकर रामचन्द्र जी को सीता जी की स्मृति आ गई थी और वे भी उसी प्रकार आनन्द मनाने के लिए आतुर हो उठे थे ॥ ३१ ॥

संस्कृतभावार्थ—पम्पासरोवरं दृष्ट्वा अन्यामपि विराहानुभूतिम् सीतायै निवेदयति श्रीरामचन्द्रः । सः निवेदयति—हे प्रिये ! यदा त्वाम् विना एकाकी विचरन् अहम् पम्पासरोवरम् सम्प्राप्तः, तदा अत्र परस्परं कमलग्रासान् समर्पयत् गोष्ठीमुखं चानुभवत् चक्रवालयुगलम् दृष्ट्वा मे मनसि तव स्मृतिः पुनरपि जायताऽभवत्, अहं च चक्रवाकमिथुनानां प्रणयलीलाः साभिलाषं तत्परतया बहुकालमवलोकितवान् ॥ ३१ ॥

व्याख्या—हे प्रिये ! अत्र = पम्पासरोवर = पम्पासरोवर पर । अत्र = इ दम् + त्रल् । 'अस्मिन्' इस अर्थ में इदम् शब्द से त्रल् प्रत्यय हो जाता है । अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि—अन्योन्यस्मै दत्तानि उत्पलानां केसराणि यैः तानि = अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि = परस्परसमर्पितकमलकिञ्ज/कानि । एक दूसरे के लिए कमल के केसरों को देने वाले । अवियुक्तानि—वि + / युज् + क्त = वियुक्त । न वियुक्तानि = अवियुक्तानि = संयुक्तानि । रथांगनाम्नाम्—रथस्य अंगम् = रथांगम् = चक्रम् । रथांगम् अस्ति नाभिं येषां ते रथांगनामानः, रथांगनाम्न्यः रथांगनामानश्च इति रथांगनामानः, तेषाम् रथांगनाम्नाम् = चक्रवाकानाम् । रथांगनाम्नी और रथांगनामन् शब्दों का द्वन्द्व समास । 'पुमान्स्त्रिया' इस सूत्र द्वारा पुल्लिङ्ग का एकशेष । द्वन्द्वानि = मिथुनानि = जोड़ों को । ते = सीतायाः । दूरान्तरवर्तिना—दूरम् च तत् अन्तरम् दूरान्तरम्, दूरान्तरे वर्तितुम् शीलम् अस्थ इति दूरान्तरवर्ती, तेन दूरान्तरवर्तिना = दूरस्थितेन = दूर पर बैठे हुए । दूरान्तर + / वृत् + णिनि । मया = रामचन्द्रेण सस्पृहम्—स्पृहया सह सस्पृहम् = साभिलाषम् = बड़ी तत्परता से । यह शब्द क्रियाविशेषण है । ईक्षितानि = अवलोकितानि । ईक्ष् + क्त = ईक्षित ।

टिप्पणी—अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि—पक्षियों द्वारा अपने साथियों को फूलों के किजलक देने का मनोरंजन संस्कृत कवियों का प्रिय विषय रहा है। रथांगनाम्नाम् द्वन्द्वानि—दाम्पत्य प्रेम का आदर्श इन पक्षियों में पाया जाता है। यह पक्षी प्रत्येक रात्रि में अपनी प्रेयसी से वियुक्त हो जाता है। सस्पृह-मीक्षितानि—क्योंकि चक्रवाक पक्षियों को अपने-अपने साथियों के साथ घूमता देखकर रामचन्द्र जी को सीता जी की याद आ जाती थी ॥ ३१ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—हे प्रिये ! अब अन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि अवियुक्तानि रथांगनाम्नाम् द्वन्द्वानि ते दूरान्तरवर्ती अहम् सस्पृहम् ईक्षितवान्। कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३१ ॥

३२—पुष्पों के गुच्छों से लदी हुई अशोक लता को भूल से रामचन्द्र जी द्वारा सीता समझ बैठना—

इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम् ।

त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा सास्त्रमहं निषिद्धः ॥ ३२ ॥

सञ्जी०—इमामिति । किं च । स्तनवदभिरामाभ्यां स्तवकाभ्यामभिनम्रां तन्वीमिमां तटाशोकस्य लतां शाखां त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या त्वमेव प्राप्तेति भ्रान्त्या परिरब्धुमालिङ्गितुं कामो यस्य सोऽहम् सौमित्रिणा लक्ष्मणेन सास्त्रं निषिद्धः । नेयं सीतेति निवारितः । परिरब्धुकाम इत्यत्र 'तुङ्काममनसोरपि' वचनान्मकारलोपः ।

अन्वय—(किम्) च स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम् तन्वीम् इमाम् तटाशोकलताम् त्वत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामः अहम् सौमित्रिणा सास्त्रं निषिद्धः ॥ ३२ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता को अपनी और भी एक विरहानुभूति बताते हैं—स्तनों के समान वृत्ताकार पुष्पगुच्छों से भुकी हुई तटवर्तिनी इस पतली अशोकलता को देख कर मुझे तुम्हारा भ्रम हो गया था और मैं इस लता का आलिंगन करना ही चाहता था कि आँखों में आँसू भर कर लक्ष्मण ने मुझे रोक दिया था ॥ ३२ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

संस्कृतभावार्थ—रामचन्द्रः पुनरपि सीतां तद्विरहव्यथायाः एकमन्यम् अनुभवम् कथयति—हे सीते ! समक्षम् या तन्वी तटस्थिता स्तनवद्वृत्ताकार-पुष्पगुच्छकसंबलिता इयम् अशोकलता दृश्यते, ताम् अहम् भ्रमवशात् 'त्वमेव प्राप्ता' इति बुद्ध्या आलिङ्गितुमैच्छम्, परं लक्ष्मणेन अतीव कातरतया अहम् एतस्मात् कार्यात् निवारितः । त्वद्विर मम चेतनाचेतनयोः विवेकः अपि नष्टः अभवत् । अहम् उन्मत्त एवाभवम् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्—अभि+√रम्+घञ्=अभिरामः । स्तनी इव अभिरामौ=स्तनाभिरामौ । स्तनाभिरामौ स्तवकौ=स्तनाभिराम-स्तवकौ, ताम्याम् अभिनम्रा=स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्रा, ताम् स्तनाभिरामस्त-वकाभिनम्राम्=स्तनवद्रमणीयगुच्छकाभिनताम्=स्तनों के समान सुन्दर पुष्प-गुच्छों से भुकी हुई । 'स्याद्गुच्छकस्तु स्तवकः' इत्यमरः । तन्वीम्=कृशाम्=पतली । तनु+ङीप्=तन्वी ताम् । इमाम्=समीपस्थिताम् । तटाशोकलताम्—तटे अशोकः=तटाशोकः, तस्य लता तटाशोकलता ताम्=तटाशोकलताम्=कृलाशोकशाखाम्=तट पर लगे हुए अशोक की शाखा को । त्वत्प्राप्ति-बुद्ध्या—प्र+√आप्+क्ति=प्राप्ति । √बुध्+क्तिन्=बुद्धि । तव प्राप्ति=त्वत्प्राप्तिः, तस्याः बुद्धिः त्वत्प्राप्तिबुद्धिः, तया त्वत्प्राप्ति बुद्ध्या=त्वदुप-लब्धिभ्रान्त्या=तेरे पा जाने के भ्रम से । त्वमेव प्राप्तेति भ्रान्त्या वा । परिर्वधुम्—आलिङ्गितुम् कामः यस्य सः परिर्वधुकामः=आलिङ्गितुमनाः=आलिङ्गन की इच्छा वाला । परि+√रम्+तुमुन्=परिर्वधुम् । परिर्वधुम् काम शब्द से समास होने पर 'तुङ्गाममनसोरपि' इस सूत्र से म् का लोप हो गया है । इस सूत्र का अर्थ यह है कि काम और मनस् शब्दों के परे होने पर तुम् के म् का लोप हो जाता है—यथा वक्तुकामः । अहम्=रामचन्द्रः । सौमित्रिणा—सुमित्रायाः अपत्यं पुमान् इति सौमित्रिः तेन सौमित्रिणा=लक्ष्मणेन । सुमित्रा शब्द से 'बाह्यादिभ्यश्च' इस सूत्र से इञ् प्रत्यय । सास्रम्—अस्त्रेण सह=सास्रम्=साश्रु=आंसुओं के साथ । निषिद्धः=नेयं सीतेति निवारितः । नि+√सिध्+क्त=निषिद्धः ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—इमां तटाशोकलतां च तन्वीम्—संस्कृत कवियों ने प्रायः कोमल और कृश लताओं की तुलना युवतियों से की है। अशोकलता वसन्त ऋतु में पुष्पित होती है और रामचन्द्र जी वसन्त ऋतु में ही पम्पातट पर आए थे। पुष्पों से लदी हुई अशोकलता को रामचन्द्र जी ने प्रमादवश उन्नत स्तनों से कुछ झुकी जाती हुई सीता ही समझ लिया। इसी बात का यहाँ वर्णन किया गया है। तुलना कीजिए—कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु—मेघदूत। अशोक के साथ लता को केवल स्त्रीलिंग बनाने के विचार से जोड़ दिया गया है ॥ ३२ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम् इमां तटाशोकलताम् तन्वीम् तवत्प्राप्तिबुद्ध्या परिरब्धुकामम् मां सौमित्रिः सात्वम् निषिद्धवान्। कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३२ ॥

३३—गोदावरी नदी और सारस पक्षियों का वर्णन—

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिंकिणीनाम्।

प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरी-सारस-पक्षयस्त्वाम् ॥ ३३ ॥

सञ्जी०—अमूरिति। विमानस्यान्तरेण्वकाशेषु लम्बन्ते यास्तासां काञ्चनकिंकिणीनाम् स्वनं श्रुत्वा स्वयूथशब्दध्रमात्त्वमाकाशमुत्पतन्त्योऽमूर्गोदावरी-सारसपक्षयस्त्वाम् प्रत्युद्व्रजन्ति इव।

अन्वय—विमानान्तरलम्बिनीनाम् काञ्चनकिंकिणीनाम् स्वनम् श्रुत्वा खम् उत्पतन्त्यः, अमूरः गोदावरीसारसपक्षयः त्वाम् प्रत्युद्व्रजन्ति इव ॥ ३३ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे सीते ! देखो, विमान में स्थान-स्थान पर लटकी हुई सोने की घंटियों के कलरव को सुनकर आकाश की ओर उड़ने वाली गोदावरी की यह सारसपक्षियाँ तुम्हारा स्वागत सा करती हुई जान पड़ती हैं।

संस्कृतभावार्थ—हे सीते ! पश्य, साम्प्रतं वयं गोदावरीं सम्प्राप्ताः। अस्माकम् विमाने CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri कलध्वानम्

श्रुत्वा स्वयूथभ्रमात् अमूः सारसपंक्तयः आकाशम् प्रति उड्डीयन्ते । मन्ये एताः तव स्वागतार्थम् अस्मिन् प्रदेशे आगच्छन्ति ॥ ३३ ॥

व्याख्या—विमानस्य अन्तराणि—विमानान्तराणि तेषु लभ्यन्ते याः ताः, विमानान्तरलम्बिन्यः तासाम्=विमानान्तरलम्बिनीनाम्=पुष्पकविमानावकाश-लम्बमानानाम्=पुष्पक विमान के अवकाशों में लटकी हुई । विमानान्तर+लम्ब+णिन्+ङीप् । काञ्चनकिंकिणीनाम्=काञ्चनस्य किंकिण्यः, कांचन-किंकिण्यः, तासाम् काञ्चनकिंकिणीनाम्=सुवर्णघण्टिकानाम्=सोने की घंटियों का । स्वनम्=भंकारशब्दम् । 'ध्वनिध्वानरयस्वनाः' इति अमरः । श्रुत्वा+आकर्ण्य । श्रु+त्वा । स्वम्=आकाशम् । उत्पतन्त्यः=उद्गच्छन्त्यः=ऊपर को उड़ने वाली । उत्+यत्+शतृ+ङीप्=उत्पतन्ती । अमूः=दूरे दृश्यमानाः । गोदावरीसारसपंक्तयः—गोदावर्याः सारसानां पंक्तयः=गोदावरीसारस पंक्तयः=गोदावरीसारसश्रेण्यः=गोदावरी के तट पर रहने वाले सारसों की पंक्तियाँ । त्वाम्=सीताम् । प्रत्युद्ब्रजन्ति इव=स्वागतार्थम् प्रत्युद्गच्छन्ति इव । प्रति+उत्+व्रज्+अन्ति=प्रत्युद्ब्रजन्ति ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—गोदावरीसारसपंक्तयः—पंक्तियों का सामने आना अथवा इधर-उधर से निकल जाना एक शुभ सूचक शकुन माना जाता है । गोदावरी—यह दक्षिण की एक प्रसिद्ध नदी है और मुख्य रूप से हैदराबाद में से गुजरती है ।

खमुत्पतन्त्यः—सारस पंक्तियों के आकाश की ओर उड़ने के दो कारण हो सकत हैं—१ उनका भ्रान्तिवश उड़ना—२ तथा घंटियों के शब्द से घबड़ा जाना । भ्रान्तिवश उड़ने के प्रथम कल्प में भी दो बातों की भ्रान्ति हो सकती है—१ सारस-पंक्तियों का किंकिणीरव को सीता के नूपुरों की भंकार समझ लेना—२ अथवा आकाश में दूसरे सारसों की सभावना कर लेना । मल्लिनाथ ने दूसरे प्रकार की भ्रान्ति को ही अपनाया है—स्वयूथशब्दभ्रमात् । प्रथम प्रकार की भ्रान्ति उपेक्षित ही कर दी गई है, क्योंकि यह नितान्त असंगत प्रतीत होती है । यदि सारस-पंक्तियाँ घंटियों के शब्द को सीता जी के नूपुरों

की भंकार समझतीं, तो वे वास्तव में सीता जी के स्वागतार्थ ऊपर उड़तीं। उनका प्रत्युद्ब्रजन वास्तविक ही होता, और कवि 'प्रत्युद्ब्रजन्ति' के साथ 'इव' का प्रयोग नहीं करता। दूसरे प्रकार की भ्रान्ति भी ठीक नहीं जान पड़ती है, क्योंकि घंटियों की आवाज और सारसों के कलरव में सादृश्य बहुत कम ही होता है। इसके अतिरिक्त सारसों का यूथ यदि किसी झील के ऊपर से उड़ता है, तो नीचे वाले सारस ऊपर को कम ही उड़ते हैं, बल्कि ऊपर वाले ही नीचे की ओर आते हैं। अतः यह मानना ही अधिक युक्त होगा कि घंटियों की आवाज से डर कर ही नीचे के सारस ऊपर को उड़ रहे थे। रामचन्द्र जी इस घटना को दूसरे रूप से ही सीता जी को सुना रहे हैं।

इव—इस अव्यय के द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार सूचित हो रहा है ॥ ३३ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—विमानान्तरलम्बिनीनाम् काञ्चनकिंकिणीनाम् स्वनम् श्रुत्वा अमूभिः खम् उत्पतन्तीभिः गोदावरीसारसपंक्तिभिः त्वम् प्रत्युद्ब्रज्यसे इव । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३३ ॥

३४—पञ्चवटी, आम्रपादप और हरिणों का उल्लेख—

एषा त्वया पेशलमध्ययापि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता ।

आह्लादयत्युन्मुख कृष्णसारा दृष्टा चिरात् पञ्चवटी मनो मे ॥ ३४ ॥

सञ्जी०—एपेति । पेशलमध्ययापि । भाराक्षमयापीत्यर्थः । त्वया घटाम्बुभिः संवर्धिता बालचूता यस्याः सा । उन्मुखा अस्मदभिमुखाः कृष्णसारा यस्याः सा चिरात् दृष्टेया पञ्चवटी मे मम मनः आह्लादयत्यानन्दयति ।

अन्वय—पेशलमध्यया अपि त्वया घटाम्बुसंवर्धितबालचूता उन्मुख-कृष्णसारा चिरात् दृष्टा एषा पञ्चवटी मे मनः आह्लादयति ॥ ३४ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी पुष्पक विमान से सीता जी को पञ्चवटी दिखाते हुए कहते हैं—हे सीते! देखो, बहुत दिनों के बाद देखी हुई यह पञ्चवटी मेरे मन को बड़ा आनन्द दे रही है। इस पञ्चवटी में तुमने पतली कमर वाली

(अर्थात् दुर्बल) होते हुए भी स्वयं घड़ों के जल से यहाँ के आम्र पादपों को सींचा था और हिरन अब भी ऊपर की ओर मुख किए हमारी ओर देख रहे हैं ॥ ३४ ॥

संस्कृतभावार्थ—हे सीते ! पश्य, वयम् पंचवटीम् सम्प्राप्ताः । अत्र त्वया भारवहनासमर्थयाऽपि स्नेहवशात् स्वकराम्यम् घटाम्बुदानैः बालाम्रपादपाः सिक्ता हरिकोमलप्रासकवलैः कृष्णसारमृगाश्च सुतनिर्विशेषं लालिताः । एते कृष्णमृगाः साम्प्रतम् अपि पूर्वस्नेहवशात् ऊर्ध्वम् अवलोकयन्ति । बहुकालानन्तरम् दृष्ट्वा इयम् पंचवटी मे हृदयम् अतीव आनन्दयति ॥ ३४ ॥

व्याख्या—पेशलमध्यया—पेशलं मध्यं यस्याः सा पेशलमध्या, तया पेशलमध्यया = क्षीणकक्ष्या, भाराक्षमया = पतली कमर वाली अर्थात् दुर्बल । पेशल शब्द का शब्दार्थ सुन्दर होता है; लेकिन स्त्रियों की कमर के साथ क्षीण अथवा कुश का ही अर्थ लिया जाता है, क्योंकि स्त्रियों की कमर का क्षीण अथवा कुश होना ही सौन्दर्य है। मल्लिनाथ ने 'भाराक्षमयाऽपि' लिखा है। भावार्थ यह है कि पतली कमर होने के कारण सीता जी अपनी कमर पर बोझ नहीं रख सकती थीं, फिर भी वे पानी का घड़ा उठाती थीं। इससे प्रतीत होता है कि आम्र पादपों से उन्हें बड़ा प्रेम था और वे उन्हें अपने पुत्रों के समान पालती थीं। अपि—यह शब्द यहाँ यही सूचित कर रहा है। वास्तव में, पतली कमर होने के कारण सीता जी इस योग्य न थीं कि एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक जल का घट लिए हुए घूमतीं, लेकिन फिर भी वात्सल्य-वश वे ऐसा करती थीं। अपि संभावनाप्रश्नशंकागर्हासमुच्चये । तथा युक्तपदार्थेषु कामचारक्रियासु च ॥ इति विश्वकोषः । घटाम्बुसंवर्धितबालचूता—घटानाम् अम्बूनि घटाम्बूनि । बालाश्च ते चूताः = बालचूताः घटाम्बुभिः संवर्धिताः बालचूताः यस्याम् सा घटाम्बुसंवर्धितबालचूता = कलशजल परिपोषितबालाम्रा = घड़ों के जल से सींचा गया है बाल आम्र पौधों को जहाँ पर। इस पद में 'बाल' विशेषण ध्यान देने योग्य है। यह माता की पुत्र वत्सलता व्यक्त कर रहा है। उन्मुखकृष्ण-सारा—उन्नमितानि मुखानि एवाम् इति उन्मुखाः । कृष्णेन साराः = कृष्ण-

साराः । उन्मुखाः कृष्णसाराः यस्यां सा उन्मुखकृष्णसारा = उद्ग्रीवकृष्णमृगा = जहाँ कि कृष्णमृग अपना सिर उठाए ऊपर को देख रहे हैं । कृष्णसार शब्द में 'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' इस सूत्र द्वारा तत्पुरुष समास हुआ है । इस सूत्र का अर्थ यह है कि तृतीयान्त शब्द के अर्थ द्वारा किए हुए गुण का ज्ञान कराने वाले शब्द के साथ और अर्थ शब्द के साथ समास को प्राप्त होता है—शंकुलया खण्डः = शंकुलाखण्डः; धान्येनार्थः । धान्यार्थः । हेमाद्रि ने कृष्णसार का मयूर अर्थ लिया है और लिखा है—उन्मुखत्वं तु विमानशब्दश्रवणात् । नीलश्यामरामावलोचनेन शब्दबुद्ध्या उन्मुखाः कृष्णसाराः, मयूराः इति वा । हेमाद्रि की यह व्याख्या निःसन्देह बहुत सुन्दर है । चरित्रवर्धन ने भी ऐसी ही व्याख्या प्रस्तुत की है—नीलोत्पलदलाभिरामं रामं विलोक्य जीमूतोऽयमिति भ्रान्तेर्मयूराणामुन्मुखत्वमिति भावः । उक्तञ्चान्यत्र-वीक्ष्य राघवमुपात्तकार्मुकम्, सेन्द्रचापनवमेघशंकया । तत्र तत्र नष्टुः शिखण्डिनः दर्शनादुपरि वाहनोन्मुखाः ॥ उपरि विमानदर्शनादौन्मुख्यम् । सारांश यह है कि रामचन्द्र जी को उनके शरीर के रंग के कारण मयूरों ने मेघ समझकर ऊपर को देखा । मयूर मेघों को देख कर प्रसन्न तो होते ही हैं । यह विचार भी प्रशंसनीय है । लेकिन कृष्णसार शब्द का वास्तव में हिरन अर्थ ही यहाँ पर उपयुक्त है । विमान की घांटियों के शब्द को सुन कर हिरन ऊपर को मुख उठा रहे हैं । हिरनों का उल्लेख इसलिए किया गया है कि वे पूर्व स्मृतियों के कारण अब भी सीता जी की कुटी के चारों तरफ घूमते रहते हैं । चिरात् = बहुकालात् । यहाँ पञ्चमी समय के अन्तराल को सूचित करने के लिए प्रयुक्त की गई है । 'सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये' इस सूत्र द्वारा समय और अध्ववाची शब्दों से सप्तमी और पंचमी विभक्तियाँ होती हैं । पंचवटी—पंचानां वटानां समाहारः इति पंचवटी । पंच + वट + डीप् स्त्रियाम् । यहाँ पर 'संख्यापूर्वो द्विगुः' इस सूत्र द्वारा द्विगु समास हुआ है, 'तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इस सूत्र से पंचन् शब्द का पूर्व प्रयोग और 'द्विगुरेकवचनम्' इस सूत्र द्वारा एक वचन का विधान हो गया है । 'अकारान्तोत्तरपदसमाहारे द्विगुः' इस वार्तिक द्वारा स्त्रीलिङ्ग मान कर 'द्विगो' इस सूत्र से डीप् प्रत्यय । इस प्रकार पंचवटी

बनता है। आह्लादयति = आनन्दयति = प्रसन्न करती है। पंचवटी कर्ता है और मनः कर्म है ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—पंचवटी—नासिक नगर से लगभग दो मील पर गोदावरी के तट पर दण्डकारण्य के भाग-विशेष को पंचवटी कहते हैं। अश्वत्थ, विल्व, धात्री, अशोक और वट इन पाँच प्रकारों के वृक्षों के कारण यह स्थान पंचवटी कहलाता है ॥ ३४ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—पेशलमध्यया अपि त्वया घटाम्बुसंवर्धितबालचूतया एतया उन्मुखकृष्णसारया चिरात् दृष्टया पंचवत्या मे मनः आनन्द्यते। कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३४ ॥

३५—पंचवटी में शिकार से आने के बाद वानीरगृहों में विश्राम करने की मधुर स्मृति—

अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरंगवातेन विनीतखेदः ।

रहस्त्वदुत्संगनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुतः ॥ ३५ ॥

संज्ञा०—अत्रेति पञ्चवत्याम् । गोदा गोदावरी । तस्याः समीपेऽनुगोदम् । 'अनुर्यत्समया' इत्यव्ययीभावः । मृगयाया निवृत्तस्तरङ्गवातेन विनीतखेदो रहो रहसि । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । त्वदुत्संगनिषण्णमूर्धा सन्नहं वानीरगृहेषु सुतः स्मरामि । वाक्यार्थः कर्म । सुत इति यत्तत्स्मरामीत्यर्थः ।

अन्वय—अत्र अनुगोदम् मृगयानिवृत्तः तरंगवातेन विनीतखेदः रहः त्वदुत्संगनिषण्णमूर्धा (सन् अहम्) वानीरगृहेषु सुतः इति स्मरामि ॥ ३५ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी को अपनी एक और स्मृति बताते हैं। हे सीते ! गोदावरी को देखकर मुझे याद आ रहा है कि किस तरह इस नदी के किनारे-किनारे शिकार खेल कर जब मैं वापिस लौटता था और नदी की लहरों से शीतल बनी हुई हवा मेरी थकावट को दूर करती थी, तो तुम्हारी गोद में सिर रखकर मैं बेटों के कुंजों में सो जाया करता था ॥ ३५ ॥

संस्कृतभावार्थ—गुनभूषि श्रीरामचन्द्रः सीतां कथयति—हे सीते ! इमां

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

पंचवटीम् गोदावरीं नदीम् च दृष्ट्वा अहम् स्मरामि किल एतत् यत् पूर्वम्
गोदावरीतटे मृगयां विधाय अहम् स्वकुटीम् आगतवान्, तदा गोदावरी-
कल्लोलैः शीतलाः वायवः मम खेदम् दूरीकृतवन्तः, अहम् च तव उत्संगे स्वशिरः
निधाय वेत्तकुञ्जेषु शान्तनिद्रासुखम् अन्वभवम् ॥ ३५ ॥

व्याख्या—अत्र = पंचवटीयाम् = पंचवटी में । अनुगोदम्—गोदायाः
समीपे अनुगोदम् = गोदावरीसमीपम् = गोदावरी के पास । यहाँ पर ‘अनुर्यत्स-
मया’ इस सूत्र से अव्ययीभाव समास हो गया है । ‘अनुर्यत्समया’ इस सूत्र का
अर्थ यह है कि जिस पदार्थ का सामीप्य प्रकट किया जाए, उस पदार्थ के
वाचक शब्द के साथ अनु का समास होता है ।

मृगयानिवृत्तः—नि + √ वृत् + क्त = निवृत्त = प्रत्यागत । मृगयाः निवृत्तः =
मृगयानिवृत्तः = आखेटप्रतिनिवृत्तः = शिकार से लौटा हुआ । तरङ्गाणाम्
वातेन = तरंगवातेन = वीचिवायुना = लहरों को छूकर आने वाली हवा से ।
विनीतखेदः—वि + √ नी + क्त = विनीत । विनीतः खेदः यस्य सः विनीत-
खेदः = दूरीकृताध्वपरिश्रमः = दूर हो गया है परिश्रम जिसका । रहः = एकान्ते =
एकान्त में । रहस् शब्द का द्वितीया का एकवचन । यहाँ अत्यन्त संयोग में
द्वितीया विभक्ति हुई है । त्वदुत्संगनिषण्णमूर्धा—तव उत्संगः त्वदुत्संगे
निषण्णः मूर्धा यस्य सः त्वदुत्संगनिषण्णमूर्धा = त्वत्कोडस्थापितशिरः = तेरी
गोद में सिर रखकर । नि + √ सद् + क्त = निषण्ण । मूर्धन् = मुद्यति अस्मिन्
आहते इति मूर्धा । ‘उत्तमांगं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्’ इति अमरः ।
वानीराणाम् गृहेषु = वानीरगृहेषु = वेतसनिकुञ्जेषु = वेतों की भाड़ियों में ।
सुप्तः = शयितः । स्मरामि = चिन्तयामि । ‘सुप्तः’ इस क्रिया से समाप्त होने
वाले वाक्य का अर्थ ‘स्मरामि’ का कर्म है । सुप्त इति यत् तत् स्मरामि । ‘सुप्तः
स्मरामि’ यह विशेष प्रयोग ध्यान देने योग्य है । कुछ टीकाकार सुप्तम् (शयनम्)
पाठ मान कर रामि (रा आदाने) स्म इस प्रकार पदच्छेद करते हैं ॥ ३५ ॥

टिप्पणी—गोदावरी—पश्चिमी घाटों के किनारे बहने वाली और बंगाल की
खाड़ी में गिरने वाली नदी का नाम गोदावरी ही है, फिर भी शब्दभेदप्रकाश

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

में गोदा नाम भी पाया जाता है—गोदा गोदावरीनद्यां मथुरा मथुरापुरी ।
कविकम् कविकायां च स्याद्गवेषौ गवेषुका ।

स्मरामि—/धृ धातु सकर्मक है । रहः वानीरगृहेषु सुतः यह वाक्यार्थ
यहाँ पर कर्म है ॥ ३५ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—अत्र अनुगोदम् मृगयानिवृत्तेन तरंगवातेन विनीतखेदेन
रहः त्वदुत्संगनिषण्णमूर्ध्ना मया सुतम् इति स्मर्यते (मया) । कर्तृवाच्य से
कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३५ ॥

३६—अगस्त्य मुनि के आश्रम का उल्लेख—

भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार ।

तस्याविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोः भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ॥ ३६ ॥

सञ्जी०—भ्रूभेदेति । यो मुनिभ्रूभेदमात्रेण भ्रूमङ्गेनैव नहुषं राजानं मघोनः
पदादिन्द्रत्वात्प्रभ्रंशयांचकार प्रभ्रंशयति स्म । आविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोः
कलुषजलप्रसादहेतोस्तस्य मुनेरगस्त्यस्य । अगस्त्योदये शरदि जलं प्रसीदतीत्युक्तं
प्राक् । भूमौ भवो भौमः । स्थानपरिग्रहः आश्रमोऽयम् । दृश्यत इति शेषः ।
भौम इत्यनेन दिव्योऽप्यस्तीति भावः । परिगृह्यत इति परिग्रहः । स्थानं एव
परिग्रहः इति विग्रहः ।

अन्वय—यः भ्रूभेदमात्रेण मघोनः पदात् नहुषम् प्रभ्रंशयांचकार,
आविलाम्भः परिशुद्धिहेतोः तस्य मुनेः भौमः स्थानपरिग्रहः अयम्
(विद्यते) ॥ ३६ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे प्रिये ! देखो,
जिन्होंने अपनी भृकुटि के संकेत मात्र से राजा नहुष को इन्द्र के पद से व्युत
कर दिया था और जो वर्षा के कलुषित जल को शुद्ध करते हैं उन अगस्त्य
मुनि का यह पार्थिव आश्रम दिखाई दे रहा है ॥ ३६ ॥

संस्कृतभावार्थ—हे प्रिये ! पश्य, एतत् अगस्त्यमहर्षेः आश्रमपदम्
पुरस्तात् दृश्यते, एतत् नहुषराजानम् नहुषराजानम् इन्द्रपदात्

पातयामास केवलं स्वभृकुटिसंचारादेव, यश्च वर्षायाः दूषितम् जलम् निर्मलम् करोति । अतुलतपोबलशालिनः महर्षिप्रवरस्य इदम् आश्रमपदमवश्यमेव दर्शनीयम् ॥ ३६ ॥

व्याख्या—भ्रूमेदमात्रेण—भ्रुवोः भेदः, भ्रूमेदः, भ्रूमेद एव भ्रूमेदमात्रम् तेन भ्रूमेदमात्रेण = भृकुटिसंचारमात्रेण = भौहों के चलाने मात्र से । मघोनः = इन्द्रस्य । मघवन् शब्द का षष्ठी का एकवचन । 'श्वयुवमघोना-मतद्धिते' इस सूत्र से व को संप्रसारण और फिर गुण हो जाने से मघोनः बनता है । 'मघवा बहुलम्' इस सूत्र द्वारा वैकल्पिक रूप से मघवत् शब्द भी होता है और इसके रूप श्रीमत् की तरह चलते हैं । पदात् = स्थानात्, इन्द्रत्वात् । यहाँ अपादान में पंचमी विभक्ति हुई है ।

नहुषम् = एतन्नामकम् राजानम् । प्रभ्रंशयांचकार—प्र + √ भ्रंश् + णिच् लिट् = पातयांचकार = गिराया । आविलाम्भः परिशुद्धिहेतो—आवलम् च तत् अम्भः आविलाम्भः, तस्य परिशुद्धिः आविलाम्भः परिशुद्धिः, तस्याः हेतुः, तस्य = आविलाम्भः परिशुद्धि हेतोः = कलुषजलविशुद्धि कारकस्य = कलुषित जल को शुद्ध बनाने वाले । अगस्त्य नक्षत्र अगस्त मास के प्रारम्भ में उदित होता है और तत्र ही नदियों और तालाबों का जल स्थिर हो जाता है और निर्मल बन जाता है । तस्य मुनेः = अगस्त्यस्य । भौमः = पार्थिवः = पृथ्वी पर का । भूमौ भवः = भौमः—भूमि + अण् । भौम विशेषण द्वारा यह भी प्रतीत होता है कि उनका कोई दिव्य आश्रम भी है । स्थानपरिग्रहः—स्थानम् एव परिग्रहः = स्थानपरिग्रहः = आश्रमः । अयम्—दृश्यते ॥ ३६ ॥

टिप्पणी—नहुषम्—यह चन्द्रवंश का एक बुद्धिमान् पराक्रमी राजा था । ययाति का पिता था और राजा आयुस के पाँच पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र था । अपने तपोबल से इसने इन्द्र का पद प्राप्त कर लिया था । अपनी उद्वेगता के कारण उसने इन्द्र की पत्नी शची पर भी अधिकार करना चाहा । शची ने नहुष को धोखा देने की एक युक्ति निकाली । नहुष से ब्राह्मणों और ऋषियों द्वारा उठाई जाती हुई पालकी में बैठ कर आने के लिए कहा ।

तदनुसार नहुष ऋषियों और ब्राह्मणों से अपनी पालकी उठवाकर शची से मिलने के लिए चला। नहुष को उत्सुकता तो थी ही, उसने 'सर्प, सर्प' ऐसा कहकर एक ऋषि के सिर में पैर मार दिया। यह ऋषि अगस्त्य ही थे। उन्होंने क्रोधवश शाप देकर नहुष को स्वर्ग से गिरा दिया और सर्प रूप में बदल दिया। श्लोक के पूर्वार्ध में इसी घटना का उल्लेख किया गया है। बाद में युधिष्ठिर ने राजा नहुष को शापमुक्त किया।

२—अगस्त्य—यह एक बड़े मुनि हुए हैं। यह और वसिष्ठ ऋषि मित्रावरुणों के पुत्र हैं। इसीलिए इन दोनों को मैत्रावरुणि कहा जाता है। अगस्त्य ऋषि ने विन्ध्य पर्वत को वशीभूत किया, वातापि नामक राक्षस को मार खाया और उसके भाई इत्यल को अपनी नेत्रज्योति से भस्म कर दिया। आजकल के नासिक नगर के पास स्थित पंचवटी से कुछ दक्षिण की ओर उनका आश्रम था। उनका विन्ध्य पर्वत को परास्त कर दक्षिण की ओर जाना यह सूचित करता है कि दक्षिण भारत में आर्य सभ्यता का प्रचार उन्होंने ही किया। आकाश के दक्षिणी भाग में उनका स्थान है जहाँ कि वे उस नक्षत्र के रूप में रहते हैं जिसको यूनानी लोग कैनोपस नक्षत्र कहते हैं। अगस्त्य मुनि को कुम्भयोनि भी कहा जाता है—अर्थात् वह जो कुम्भ से उत्पन्न हुआ हो।

प्रभ्रंशयांचकार—प्रपूर्वक/भ्रंश्+णिच् से लिट् लकार में आम् का का आगम और लिट् लकार के लोप हो जाने पर 'कृञ्चानुप्रयुज्यतेलिटि' इस सूत्र द्वारा चकार का अनुप्रयोग—इस प्रकार यह रूप बनता है। दूसरे रूप प्रभ्रंशयाम्भभूव और प्रभ्रंशयामास होते हैं। कवि ने यहाँ पर प्रभ्रंशयाम् से चकार को अलग कर दिया है। पतंजलि के महाभाष्य के अनुसार यह रूप ठीक नहीं है। लेकिन कुछ वैयाकरणों द्वारा यह रूप भी ठीक माना गया है। वे पाणिनि के 'कृञ्चानुप्रयुज्यतेलिटि' इस सूत्र में आए हुए अनुप्रयुज्यते का यह अर्थ लेते हैं कि कृञ् धातु का बाद में प्रयोग होना चाहिए। ऐसा अनिवार्य नहीं है कि कृञ् धातु का बाद में प्रयोग हो। कालिदास भी

इसी मत का समर्थक प्रतीत होता है। यत्र तत्र ऐसे प्रयोग भी उसकी कविता में पाए जाते हैं जहाँ चकार, आस और वभूव का व्यवहित प्रयोग देखा जाता है :—

(१) तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री
वन्यस्य नेत्रविवरे महिषस्य मुक्तः ।
निर्भिद्य विग्रहमशोणितलिप्तपुंस्व-
स्तं पातयाम्प्रथममास पपात पश्चात् ॥ ६. ६१ ॥

(२) इत्यूचिवानुपहृताभरणः क्षितीशं
श्लाघ्यो भवान् स्वजन इत्यनुभाषितारम् ।
स योजयां विधिवदास समेतवन्धुः
कन्यामयेन कुमुदः कुलभूषणेन ॥

इन स्थलों में भी कालिदास ने आमन्त शब्द और आस में व्यवधान रखा है ।

अश्वघोष के बुद्धचरित में भी ऐसा ही व्यवधान देखने में आता है—

पूजाभिलाषेण च बाहुमन्यद्विबौकसस्तं जगृहुः प्रविद्धम् ।
यथावदेनं दिवि देवसंघा दिव्यैर्विशेषैर्मह्यां च चक्रुः ॥

कवि और वैयाकरण भट्टिकवि भी व्यवहित प्रयोग करते हैं—

ऊक्षां प्रचक्रुः नगरस्य मार्गान् । (प्रोक्षां चक्रुः) काशिकावृत्ति के व्याख्या-
कार हरदत्त भी व्यवहित प्रयोग के समर्थक हैं । उन्होंने पतंजलि और
कात्यायन को खूब फटकारा है ।

लेकिन वर्तमान शैली के अनुयायी पंडित कवि की इस उक्ति को उचित नहीं मानते हैं । खुवंश के एक अन्य व्याख्याकार श्री चरित्रवर्धन तो इस प्रकार के प्रयोगों को अशुद्ध ही मानते हैं । उन्होंने 'पातयां—प्रथममास' पर व्याख्या करते हुए लिखा है—पातयां प्रथममासेति व्यवहितोऽनुप्रयोगः कविप्रमादः ।

कि पाणिनि अव्यवहित अनुप्रयोग का नियामक तो है, लेकिन कालिदास के समय में पाणिनीय व्याकरण सर्वथा प्रामाणिक नहीं हो पाया था। कुछ प्रयोग अपाणिनीय होते हुए भी पूर्वपरम्परा के अनुसार काम में आते थे। कालिदास ने पूर्वप्रभाव के वशीभूत होकर ही ऐसे प्रयोगों को अपनाया है। दूसरे काव्य में प्रवाह लाने के लिए कभी-कभी कवियों को स्वतन्त्र होना ही पड़ता है ॥ ३६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—येन भ्रूमेदमात्रेण नहुषः मघोनः पदात् प्रभ्रंशयांचक्रे, आविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोः तस्य मुनेः भौमेन स्थानपरिग्रहेण अनेन। (भूयते) । प्रथमवाक्यांश में कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य, द्वितीय वाक्यांश में कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३६ ॥

३७—अगस्त्य मुनि की पवित्र यज्ञवह्नि के धूम का वर्णन—

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तैस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ।

घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा ॥ ३७ ॥

सङ्गी०—त्रेतेति । अनिन्द्यकीर्तैस्तस्यागस्त्यस्याक्रान्तविमानमार्गम् । हविर्गन्धोऽस्यास्तीति हविर्गन्धि । त्रेताग्निरग्नित्रयम् । “अग्नित्रयमिदं त्रेता” इत्यमरः । त्रेतान्नेर्धूमाग्रमिदं घ्रात्वाऽग्राय रजसो गुणाद्विमुक्तो मे आत्मा लघिमानं लघुत्वं समश्नुते प्राप्नोति ।

अन्वय—अनिन्द्यकीर्तैः तस्य आक्रान्तविमानमार्गम् हविर्गन्धि त्रेताग्नि-धूमाग्रम् इदम् घ्रात्वा रजोविमुक्तः मे आत्मा लघिमानम् समश्नुते ॥ ३७ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे सीते ! उज्ज्वल कीर्ति वाले इन अगस्त्य ऋषि के आश्रम में तीनों अग्नियाँ प्रज्वलित हो रही हैं और हवन-द्रव्यों की सुगन्ध से युक्त तथा हमारे विमान के मार्ग में फैले हुए इस यज्ञधूम को सूँघ कर रजोगुण से विमुक्त होकर मेरी हल्केपन का अनुभव कर रही है ॥ ३७ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्री रामचन्द्रः सीतां प्रति निवेदयन्—हे देवि ! पश्य, अयम् खलु महनायकशः महर्षिः अगस्त्यः । आहिताग्निः अयं

महर्षिः अग्नित्रयम् सर्वदा आदधाति । हवनद्रव्याणां सुगन्धेन संपृक्तः आकाशे
परिव्याप्तश्च वर्तते यज्ञवह्नीनाम् धूमः । अमुम् आघ्राय अहम् एतदनुभवामि-
यदहम् रजोगुणात् विमुक्तो भूत्वा सत्त्वगुणातिरेकात् लघुः संजातोऽस्मि । मम
आत्मा अहंकारविमुक्तः आनन्दमग्नः वर्तते ॥ ३७ ॥

व्याख्या—अनिन्द्यकीर्तेः—निन्दितुं योग्या=निन्द्या । न निन्द्या=
अनिन्द्या । अनिन्द्या कीर्तिः यस्य सः अनिन्द्यकीर्तिः तस्य अनिन्द्यकीर्तेः=
महनीययशसः=उत्तम कीर्तिवाले । तस्य=अगस्त्यस्य । आक्रान्तविमान-
मार्गम्—आ+✓क्रम्+क्त=आक्रान्त । विमानस्य मार्गः=विमानमार्गः ।
आक्रान्तः विमानमार्गः येन तत् आक्रान्तविमानमार्गम्=परिव्याप्तगगनमण्ड-
लम्=आकाश मण्डल में फैला हुआ । हविर्गन्धि—हवषः गन्धः हविर्गन्धः,
सः अस्य अस्ति इति हविर्गन्धि=हवनद्रव्यगन्धयुक्तम्=हवनद्रव्य धृत आदि
की सुगन्ध से युक्त । हविर्गन्ध शब्द से ‘अत इनिठनौ’ इस सूत्र द्वारा मत्वर्थीय
इन् प्रत्यय । नपुंसक लिंग द्वितीया का एकवचन हविर्गन्धि । त्रेताग्निधूमाग्रम्
=त्रयः एव त्रेता । त्रेता चासौ अग्निः त्रेताग्निः तस्य धूमः, त्रेताग्निधूमः तस्य
अग्रम् त्रेताग्निधूमाग्रम्=अग्नित्रयधूमशिखाम्=त्रिविध अग्नि के धूम के अग्र
भाग को । ‘आग्नत्रयमिदं त्रेता’ इत्यमरः । घ्रात्वा—✓घ्रा+त्वा=घ्रात्वा=
आघ्राय=सूँध कर । रजोविमुक्तः—रजसः विमुक्तः रजोविमुक्तः (पञ्चमी
तत्पुरुष)=रजोगुणरहितः, अहंकारविमुक्तः=अहंकार से रहित होकर,
लघिमानम्—लघोः भावः लघिमा तम् लघिमानम्=लघुत्वम् लघु शब्द से
‘पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा’ इस सूत्र से भावार्थक इमनिच् प्रत्यय । लघिमन् शब्द
पुंलिंग है । समश्नुते—सम्+✓अद्+नु+ते=समश्नुते=प्राप्नोति । आत्म
कर्ता है और लघिमानम् कर्म है ।

टिप्पणी—त्रेताग्निधूमाग्रम्—गार्हपत्य, दक्षिण और आहवनीय इन
तीन अग्नियों को अग्नित्रय कहते हैं । आहिताग्नि अपि वह कहलाता है
जो इन तीनों अग्नियों को अपने यहाँ संचित किए रहता है । रजोविमुक्तः—
यज्ञ की अग्नि का धूम अपने सम्यक् से ही रजोगुण के दोष को दूर कर
देता है ॥ ३७ ॥

वच्यपरिवर्तनम्—आनिन्य सीतेः तस्मै पञ्चाप्सरो नाम विहारी त्रिहविर्गन्धि
 वेताभिधूमाग्रम् धात्वा रजोविमुक्तेन मे आत्मना लविमा समश्यते । कर्तृवाच्य
 से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३७ ॥

३८—शातकर्ण मुनि के पञ्चाप्सर नामक सरोवर का वर्णन—

एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि ।
 आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुविम्बम् ॥ ३८ ॥

सङ्की०—एतदिति । हे मानिनि ! शातकर्णेर्नाम मुनेः सम्बन्धि पञ्चाप्सरो
 नाम पञ्चाप्सर इति प्रसिद्धम् । पञ्चाप्सरसो यस्मिन्निति विग्रहः । पर्यन्तेषु वनानि
 यस्य तत्पर्यन्तवनमेतद्विहारवारिक्रीडासरो विदूरान्मेघानामन्तरे मध्य आलक्ष्य-
 मीषदृश्यम् । ‘आ ईषदर्थेऽभिव्याप्तौ’ इत्यमरः । इन्दुविम्बमिव आभाति ।

अन्वय—हे मानिनि ! शातकर्णः मुनेः पञ्चाप्सरो नाम पर्यन्तवनम्
 एतत् विहारवारि विदूरात् मेघान्तरालक्ष्यम् इन्दुविम्बम् इव आभाति ॥ ३८ ॥

हिन्दी अनुवाद—अयि मानिनि सीते ! देखो, सामने शातकर्ण मुनि का
 यह पञ्चाप्सर नामक क्रीडा सरोवर दिखाई दे रहा है । चारों तरफ वनश्रेणियों
 से घिरे होने के कारण दूर से यह ऐसा लगता है मानों मेघों के बीच में कुछ-
 कुछ दिखलाई पड़ने वाला चन्द्रमण्डल हो ॥ ३८ ॥

संस्कृतभावार्थ—रामचन्द्रः सीतां प्रति निवेदयति—अयि मानवति प्रिये
 पुरस्तात् शातकर्णिनामकस्य मुनेः पञ्चाप्सरो नाम क्रीडासरोवरं दृश्यते । इदम्
 खलु सर्वतः वनराजिर्वाष्टितम् अस्ति । अतः विदूरात् इदम् मेघानां मध्ये
 ईषदृश्यमानम् चन्द्रविम्बम् इव प्रतीयते । यथा मेघपरिवृतः चन्द्रः अतीव शोभते,
 तथैव इदमपि शोभायमानमस्ति । त्वम् एतद् दृश्यं पश्य ॥ ३८ ॥

व्याख्या—मानिनि—मननम् इति मानः । मन् + घञ् = मानः । स
 अस्याः अस्ति इति मानिनि (मान + इन् + डीप् स्त्रियाम्) तत्संबोधने हे
 मानिनि = मानवति । स्त्रियों के लिए इस प्रकार के संबोधन किसी विशेष
 तात्पर्य के बिना ही प्रयुक्त किए जाते हैं । शातकर्णः = एतन्नामकस्य । मुनेः—
 मुनुते इति मुनिः—मन्ता वेदशास्त्रार्थतत्त्वावगन्ता मुनिः । मन् धातु से ‘मनेरुच्च’
 इस उणादिसूत्र द्वारा C-इन्-प्रत्यय और मन् के अ को उ हो जाता है ।

पञ्चाप्सरी नाम = पञ्चापसरः इति प्रसिद्धम् = पञ्चाप्सर नाम से प्रसिद्ध
 पञ्च अप्सरसो यस्मिन् इति तत् पञ्चापसरः । विहारवारि—विहाराय वारि यस्
 तत् = विहारवारि = क्रीडासरोवरम्, क्रीडा करने का सरोवर । पर्यन्तवनम्—
 पर्यन्तेषु वनानि यस्य तत् पर्यन्तवनम् = वनराजिपरिवृतम् = चारों तरफ वन से
 ढका हुआ । विदूरात् = दूरस्थानात् = दूर जगह से । मेघान्तरालक्ष्यम्—
 मेघानाम् अन्तरे आलक्ष्यम् = मेघान्तरालक्ष्यम् = घनावकाशेषदृश्यम् =
 बादलों के बीच में कुछ-कुछ दिखाई पड़ने वाले । इन्दुविम्बम्—इन्दो
 विम्बम् = इन्दुविम्बम् = चन्द्रमण्डलम् । इव । आभाति = प्रतीयते । आ+
 भा+ति । आ अदादि से लट् प्रथमपुरुष एकवचन । आलक्ष्यम् में 'आ
 'कुछ-कुछ' के अर्थ में है । 'आ ईषदर्थेऽभिव्यासौ' इत्यमरः ।

टिप्पणी—शातकर्णेः—रामायण के अरण्यकाण्ड सर्ग ६ के अनुसार तो
 इस सरोवर के स्वामी का नाम माण्डकर्णि है । संभवतः शातकर्णि यह उसका
 दूसरा नाम है । हेमाद्रि टीकाकार भी माण्डकर्णि जैसा पाठ ही यहाँ मानते हैं ।

पञ्चाप्सर—अपनी अलौकिक शक्तियों द्वारा शातकर्णि ऋषि द्वारा बनाए
 गए विहारसरोवर का यह नाम है । यह नाम इस सरोवर का इसलिए पड़ा
 कि शातकर्णि ऋषि ने इन्द्र द्वारा उनकी तपस्या को भङ्ग करने के लिए भेजी
 हुई पाँच अप्सराओं के साथ इसमें विहार किया ।

इस श्लोक में उपमा अलंकार है । विहारवारि की इन्दुविम्ब से तुलना की
 गई है और वनों की मेघों से ॥ ३८ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—हे मानिनि ! शातकर्णेः मुनेः एतेन पञ्चाप्सरसा नाम्ना
 पर्यन्तवनेन विहारवारिणा विदूरात् मेघान्तरालक्ष्येण इन्दुविम्बेन इव आभायते ।
 कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३८ ॥

३९—इन्द्र द्वारा अप्सराओं के मायाजाल में शातकर्णि मुनि के फँसे
 जाने का वर्णन—

पुरा स दर्भाङ्कामात्रवृत्तिश्चरन् मृगैः सार्धमृषिर्मघोना ।

समाधिभीतं तत्काले सदा पञ्चाप्सरसोपनिषन्धम् ॥ ३९ ॥

सङ्गी०—पुरा दर्माङ्कुरमात्रवृत्तिः साधर्म्यं सह चरन्
 स ऋषिः समाधेस्तपसो भीतेन पञ्चानामप्सरसां यौवनम् । 'तद्वितार्थ'
 इत्यादिनोत्तरपदसमासः । तदेव कूटबन्धं कपटयन्त्रमुपनीतः । "उन्माथः कूटबन्धः
 स्यात्" इत्यमरः । किलेत्यैतिह्ये । मृगसाहचर्यान्मृगवदेव बद्ध इति भावः ।

अन्वयः—पुरा दर्माङ्कुरमात्रवृत्तिः मृगैः सार्धम् चरन् स ऋषिः समाधिभीतेन
 मघोना पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम् उपनीतः किल ।

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे सीते ! यह
 शातकर्ण मुनि पहिले कुश के अंकुरमात्र खाकर रहा करते थे और हरिणों के
 साथ ही घूमते रहते थे । इनकी उग्र तपस्या से डरकर इन्द्र ने पाँच अप्सराओं
 के यौवनरूपी कपटजाल में इन्हें फँसा लिया था । ऐसी प्राचीन कथा सुनने
 में आती है ।

संस्कृतभावार्थ—रामचन्द्रः सीतां प्रति निवेदयति—हे सीते ! श्रूयताम्
 तावत् । पुरा अयम् शातकर्णः मुनिः कुशाङ्कुरानेव भक्षयन् स्वशरीरं पालयामास,
 वन्यैः हरिणैश्च सह इतस्ततः विचचार । अस्य जीवनम् मृगवत् सरलम्, अयं
 च मृगवत् सरलस्वभावः आसीत् । परम् अस्य तपश्चर्या अतीव उग्रा अभवत् ।
 अस्य महर्षेः अचलसमाधिप्रभावात् भीतः इन्द्रः अस्य तपः स्वलयितुं पञ्च अप्सरसः
 अस्य समीपं प्रेषितवान् । ताश्च तम् सरलस्वभावं मुनिम् स्वयौवनविचेष्टितैः
 व्यामोहयामासुः तस्य तपश्च स्वलयांचक्रुः । एतादृशी कथाऽनुश्रूयते ॥ ३६ ॥

व्याख्या—पुरा = पूर्वस्मिन् काले । यह शब्द एक अव्यय है । दर्माङ्कुर-
 मात्रवृत्तिः—वर्तते अनया इति वृत्तिः (✓ वृत् + क्तिन्) । दर्मानाम्
 अङ्कुराः = दर्माङ्कुराः, ते एव दर्माङ्कुरमात्राः, दर्माङ्कुरमात्रैः वृत्तिः यस्य
 सः = दर्माङ्कुरमात्रवृत्तिः = कुशप्ररोहमात्राहारः = कुशों के अंकुरों का ही
 भोजन करने वाला । मृगैः = हरिणैः । सार्धम् = सह । मृगैः में 'सह युक्तेऽ-
 प्रधाने' इस से सूत्र सार्धम् के योग के कारण तृतीया विभक्ति हो गई है । चरन् =
 परिभ्राम्यन् । ✓ चर + शत् = चरन् । समाधिभीतेन—समाधीयते अनेन इति

समाधिः, सम्+आ+√धा+कि । 'उपसर्गं धोः किः' इस सूत्र द्वारा सम्+आ पूर्वक/धा धातु से कि प्रत्यय हुआ है । यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह शब्द पुलिङ्ग है यद्यपि यह स्त्रीलिङ्ग जैसा प्रतीत होता है । समाधिः भीतः=समाधिभीतः, तेन सनःधिभीतेन=तपःशंकितेन=तपस्या से डरे हुए । आत्मसंयम, धार्मिक व्रत, ध्यान अथवा परब्रह्म में मन के लगाने को समाधि कहते हैं । दूसरे शब्दों में तपस्या या भक्ति को भी समाधि कह सकते हैं । मघोना=इन्द्रेण । पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम्—पञ्च च अप्सरसः=पञ्चाप्सरसः, तासाम् यौवनम्=पञ्चाप्सरो यौवनम् तदेव कूटबन्धः, तम्=पञ्चाप्सरोयौवन कूटबन्धम्=पञ्चस्वर्गवाङ्मनायौवनकपटयंत्रम्=पाँच अप्सराओं के यौवन रूपी कपटजाल में । 'उन्माथः कूटबन्धः स्यात्' इति अमरः । किसी भी धोखा देने वाली चीज को कूट कह सकते हैं । प्रत्यक्ष में यह हानिकारक नहीं मालूम देती है, लेकिन वास्तव में ऐसी नहीं होती है । पाँच-पाँच अप्सराओं का यौवन ही कूटबन्ध का कार्य करने के लिए काम में लाया गया था । उपनीतः=प्रापितः । मल्लिनाथ ने लिखा है—मृगसाहचर्यान्मृगवदेव वद्धः । चूँकि ऋषि हरिणों के साथ रहते थे, इसलिए हरिणों की तरह ही जाल में फँसे गए । किल—यह शब्द कथा की ऐतिहासिकता सूचित करता है ॥ ३६ ॥

टिप्पणी—समाधिभीतेन इन्द्रेण—इन्द्र ने अपना यह पद तपस्या के द्वारा प्राप्त किया है । उसका यह पदं प्रतियोगितात्मक है । कोई भी कठोर तपस्या करने वाला इस पद को प्राप्त कर सकता है । अतः यह स्वाभाविक है कि किसी की कठोर तपस्या को देख कर इन्द्र भयभीत हो जाएँ । स्वर्ग की अप्सराएँ ही उनका अस्त्र हैं । शातकर्णि ऋषि को उन्होंने अप्सराओं के मोहजाल में ही फँस कर उनकी तपस्या नष्ट कर दी ॥ ३६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—पुरा दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिम् मृगैः सार्धम् चरन्तम् तम् ऋषिम् समाधिभीतः पृथुवा पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम् उपनीतवान् । कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ३६ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

४०—शातकर्ण ऋषि के संगीत की मृदंगध्वनि का वर्णन—

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसंगीतमृदंगघोषः ।

वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥ ४० ॥

सङ्गी०—तस्येति । अन्तर्हितसौधभाजो जलान्तर्गतप्रासादगतस्य तस्य शातकर्णैरयं प्रसक्तः संगीतमृदङ्गघोषो वियद्गतः सन् पुष्पकस्य चन्द्रशालाः शिरोग्रहाणि । “चन्द्रशाला शिरोग्रहम्” इति हलायुधः । क्षणं प्रतिश्रुद्भिः प्रतिध्वानैर्मुखरा ध्वनन्तीः करोति । “स्त्रीप्रतिश्रुत्प्रतिध्वाने” इत्यमरः ।

अन्वय—अन्तर्हितसौधभाजः तस्य अयम् प्रसक्तसंगीतमृदंगघोषः वियद्गतः सन् पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणम् प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥ ४० ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे प्रिये ! जल के भीतर बने हुए प्रासाद में रहने वाले इन ऋषि के सतत संगीत की मृदंगध्वनि आकाश में आकर पुष्पक विमान-चन्द्रशालाओं को क्षण भर के लिए अपनी प्रतिध्वनि से मुखरित कर रही है ॥ ४० ॥

संस्कृतभावार्थ—श्री रामचन्द्रः सीतां सम्बोधयति—आर्य्ये ! श्रूयताम् तावत् । पञ्चाप्सरोनामकस्य एतस्य सरसः मध्ये विनिर्मितस्य प्रासादस्य अन्तः शातकर्णैः ऋषिः निवसति । स च तत्र निरन्तरं वारांगनागोष्ठीसुखमनुभवन् संगीतप्रबन्धमपि कारयति । ततश्च समुत्थितः अयम् मृदंगस्वनः आकाशं प्राप्तः सन् अस्माकम् पुष्पकविमानस्य उच्चकक्षाणि स्वप्रतिध्वनिना क्षणम् मुखराणि करोति । कीदृशं मधुरं च तत् मृदंगवाद्यम् ॥ ४० ॥

व्याख्या—अन्तर्हितसौधभाजः—अन्तर + √ धा + क्त = अन्तर्हित । ‘दधातेर्हिः’ इस सूत्र से √ धा को ‘हि’ आदेश हो गया । सुधया धवलितम् ग्रहम् सौधम् (सुधा + अण्), अन्तर्हितम् सौधम् = अन्तर्हितसौधम् तत् भजते इति अन्तर्हितसौधभाक्, तस्य अन्तर्हितसौधभाजः = जलान्तर्गत प्रासादगतस्य = ल के भीतर के प्रासाद में रहने वाले । ‘सौधोऽस्त्री राजसदनम्’ इति अमरः । स्य = शातकर्णेः । प्रसक्तसंगीतमृदंगघोषः—प्र + √ सङ् + क्त = प्रसक्तम् । म् + √ गै + क्त = संगीतम् । प्रसक्तं च यत्संगीतम् प्रसक्तसंगीतम् तस्य

मृदंगः = प्रसक्तसंगीतमृदंगः, तस्य घोषः = प्रसक्तसंगीतमृदंगघोषः = सतत-
 संगीतमृदंगरचनः = निरन्तर चलते रहने वाले संगीत के मृदंग की आवाज ।
 वियद्गतः = वियति गतः = वियद्गतः = आकाशव्याप्तः सन् । 'वियद्
 विष्णुपदमाकाशम्' इति अमरः । पुष्पकचन्द्रशालाः—पुष्पकस्य चन्द्र-
 शालाः = पुष्पकचन्द्रशालाः = पुष्पकशिरोग्रहाणि = पुष्पक विमान के ऊपरी
 भाग के कमरे । 'चन्द्रशाला शिरोग्रहम्' इति हलायुधः । क्षणम् = मुहूर्त-
 मात्रम् = कुछ समय के लिए । प्रतिश्रुन्मुखराः—प्रतिश्रूयते इति प्रतिश्रुतः
 (प्रति + √श्रु + क्विप्), प्रतिश्रुद्धिः मुखराः = प्रतिश्रुन्मुखराः = प्रतिध्वान-
 निनादिनीः = प्रतिध्वनि से गुञ्जायमान । 'स्त्री प्रतिश्रुत्प्रतिध्वाने' इति अमरः ।
 करोति = विदधाति ॥ ४० ॥

टिप्पणी—अन्तर्हित सौधभाजः—शातकर्णि ऋषि ने अपने योग-बल से
 जल के भीतर यह प्रासाद बना रक्खा था ।

संगीत—कुछ टीकाकार 'स्त्रीणां रंगोपविष्टानां गानं संगीतकम्' इस प्रकार
 संगीत की व्याख्या करते हैं । लेकिन संगीत का अधिक उपयुक्त अर्थ नृत्य, वाद्य
 और गीत ही है । 'नृत्यं वाद्यं तथा गीतम् त्रयम् संगीतमुच्यते'—ऐसा संगीत-
 रत्नाकर में कहा गया है ।

मृदंगः—मृत् अंगम् अस्य अस्ति स मृदंगः । गर्दन में लटका कर बजाए
 जाने वाले अथवा किसी स्टूल पर रख कर बजाए जाने वाले गोल आकार के
 एक वाद्य-विशेष का नाम । पहिले यह मिट्टी का ही बनता था । इसके दोनों
 सिरों पर खाल मढ़ी होती है ।

चन्द्रशालाः—विमान के सबसे ऊँचे भाग पर स्थित कमरा । संभवतः
 इसे चन्द्रशाला इसलिए कहते होंगे, क्योंकि यहाँ बैठकर चाँदनी का पूर्ण
 आनन्द लिया जा सकता होगा । क्षणम्—यह शब्द यह सूचित करता है कि
 पुष्पक विमान शातकर्णि के स्थान से क्षण भर में ही गुजर गया था ॥ ४० ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—अन्तर्हितसौधभाजः तस्य अनेन प्रसक्त-संगीतमृदंग-
 घोषेण वियद्गतेन पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणम् प्रतिश्रुन्मुखराः क्रियन्ते । कर्तृवाच्य
 से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ४० ॥

४१—पञ्चाग्नितपस्या में संलग्न सुतीक्ष्ण ऋषि का वर्णन—

हविर्भुजाध्ववतां चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः ।

असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दातः ॥ ४१ ॥

सञ्जी०—हविरिति । नाम्ना सुतीक्ष्णः सुतीक्ष्णनामा चरितेन दान्तः सौम्योऽसावपरस्तपस्वी । एध्ववतामिन्धनवताम् । “काष्ठं दार्विन्धनं त्वेषः” इत्यमरः । चतुर्णां हविर्भुजामग्नीनां मध्ये ललाटं तपतीति ललाटंतपः । “असूर्यललाटयोर्दृशितपोः” इति खश्प्रत्ययः । “अरुद्विषतः” इत्यादिना मुनागमः । ललाटंतपः सप्तसप्तिः सप्ताश्वः सूर्यां यस्य स तथोक्तः सन् । तपस्यति तपश्चरति । “कर्मणो रोमन्धतपोभ्यां वर्तिचरोः” इति क्यङ् । “तपसः परस्मैपदं च” इति शक्तव्यम् ।

अन्वय—नाम्ना सुतीक्ष्णः चरितेन दान्तः असौ अपरः तपस्वी एध्ववताम् चतुर्णाम् हविर्भुजाम् मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः (सन्) तपस्यति ॥ ४१ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी कहते हैं—हे सीते ! देखो, यह सामने सुतीक्ष्ण मुनि दीख रहे हैं, जो कि चारों तरफ अग्नि जला कर और सूर्य की ओर टकटकी लगाए पञ्चाग्नि तपस्या में लगे हुए हैं । यद्यपि इनका नाम सुतीक्ष्ण है, लेकिन हैं यह बड़े सौम्य स्वभाव वाले ॥ ४१ ॥

संस्कृतभावार्थ—देवि, पुरः अयम् अपरः तपस्वी दृश्यते । अस्य नाम यद्यपि सुतीक्ष्णः अस्ति, परं चरित्रेण अयमतीव सौम्यः वर्तते । परितः अग्नि-चतुष्टयं प्रज्वाल्य सूर्याभिमुखं च पश्यन् अयम् पञ्चाग्निसाधनं नाम उग्रम् तपः चरति ॥ ४१ ॥

व्याख्या—नाम्ना = आख्यया = नाम से । सुतीक्ष्णः = एतन्नामकः । चरितेन = आचारेण । दान्तः—✓ दम् + णिच् + क्त = दान्तः = सौम्यः । तपस्वी—तपः अस्य अस्ति इति तपस्वी । तपस् शब्द से ‘तपः सहस्राभ्यां विनीनी’ इस से सूत्र विनि (विन्) प्रत्यय हो गया । एध्ववताम्—एधाः काष्ठानि विद्यन्ते एध्वि० इति एध्ववताम्, एध्ववताम् = इन्धनवताम् ।

‘तदस्यास्त्यस्मिन्निति मनुप्’ इस सूत्र से मनुप् प्रत्यय । ‘मादुपधायाश्च मतोवोऽय-
वादिभ्यः’ इस सूत्र से म को व हो गया । हविर्भुजाम्—हवींषि भुजते इति
हविर्भुजः (हविस् + भुज् + क्विप्) तेषाम् हविर्भुजाम् = हुताशनानाम् = यज्ञ-
वह्नियों के । ललाटन्तपसप्तसप्तिः—सप्त सप्तयः यस्य सः सप्तसप्तिः । ललाटम्
तपति इति ललाटन्तपः । ललाटन्तपः सप्तसप्तिः यस्य सः = ललाटन्तपसप्तसप्तिः =
ललाटन्तपसूर्यः = ललाट को तपा रहा है सूर्य जिसको ‘ललाटन्तप’ में ललाटपूर्व-
क/तप् धातु से ‘असूर्यललाटयोर्दशितपोः’ इस सूत्र से खश् प्रत्यय हुआ । तदनन्तर
‘अरुद्धिषदजन्तस्य मुम्’ इस सूत्र से मुम् (म्) का आगम हो गया । इस प्रकार
ललाटन्तप शब्द बना है । सप्ति शब्द अश्व का पर्यायवाची है । ‘वाजिवाहव-
गन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः’ इति अमरः । तपः चरिति इति तपस्यति = तपस्याम
करोति । तपस् शब्द से ‘रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः’ इस सूत्र से क्यङ् प्रत्यय
हुआ और ‘तपसः परस्मैपदं च’ इस सूत्र से/तपस्य धातु से परस्मैपद के ही
रूप चलते हैं । ‘रोमन्थतपोभ्याम्’ इस सूत्र का अर्थ यह है कि रोमन्थपूर्वक वृत्
धातु और तपस् पूर्वक/चश् धातु के होने पर इन शब्दों से क्यङ् प्रत्यय होता
है । ‘तपसः परस्मैपदश्च’ इस सूत्र द्वारा परस्मैपद हो जाने से तपस्यति रूप होता
है, अन्यथा तपस्यते रूप होता ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः—यहाँ पर कवि ने बड़ी अच्छी
शब्दयोजना की है । कवि यह कहना चाहता है कि यद्यपि कवि का नाम
सुतीक्ष्ण था लेकिन वे बड़े उदार स्वभाव के थे ।

इस श्लोक में कवि ने सुतीक्ष्ण ऋषि के पञ्चाग्निसाधन नामक तप का
उल्लेख किया है । यह तपस्या सबसे अधिक कठोर समझी जाती है । सूर्य
को भी अग्नि माना गया है—‘अग्निः सविता सवितैवाग्निः’ इस श्रुतिप्रमाण
को देखिए ।

यह श्लोक इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि रामचन्द्र जी ग्रीष्म ऋतु में
लंका से लौटे थे ॥ ४१ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—0. Prof. Satya Vardan Shastri Collection.
नाम्ना सुतीक्ष्णेन चरितेन दान्तेन अमुना अपरेण

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तपस्विना एधवतां चतुर्णां हविर्भुजाम् मध्ये ललाटन्तपसप्तसतिना सता तपस्यते ।
कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ४१ ॥

४२—इन्द्र द्वारा भेजी गई अप्सराओं के द्वारा भी सुतीक्ष्ण ऋषि के
विचलित न होने का वर्णन—

अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि ।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशंकम् सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि ॥ ४२ ॥

सङ्गी०—अमुमिति । जनितेन्द्रशङ्कं जनिता इन्द्रस्य शङ्का भयं येन तं ।
तपसेति शेषः । अमुं सुतीक्ष्णं सहासं प्रहितानीक्षणानि दृष्टयो येषु तानि ।
व्याजेन केनचिन्मिषेण । अर्धमीपत्संदर्शिता मेखला येषु तानि सुराङ्गनामिन्द्र-
प्रेषितानां विभ्रमा विलासा एव चेष्टितानि विकर्तुं स्वलयितुमलं समर्थानि न
बभूवुरिति शेषः ।

अन्वय—सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि सुराङ्गना-
विभ्रमचेष्टितानि जनितेन्द्रशंकम् अमुम् विकर्तुम् अलम् न (बभूवुः) ॥ ४२ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी कहते हैं—हे सीते! यह सुतीक्ष्ण ऋषि बड़े
पक्के हैं । इनकी तपस्या को देखकर इन्द्र के मन में जत्र शंका हुई, तब उसने
इनके तप को खण्डित करने के लिए अप्सराओं को भेजा, लेकिन मुस्कराहट
के साथ देखना, किसी न किसी बहाने से अपने कटिभाग को दिखला देना
तथा अप्सराओं की इसी प्रकार की अन्य विलासमय चेष्टाएँ भी इनके मन
को विचलित न कर सकीं ॥ ४२ ॥

संस्कृतभावार्थ—रामचन्द्रः सीतादेवीं विज्ञापयति—हे प्रियतमे ! अयं
सुतीक्ष्णनामा तपस्वी अतीव कठोरतराः वर्तते । अयम् इन्द्रस्यापि मनसि
स्वकठोर तपश्चर्यया शंकामुदपादयत् । भीतः स स्वाप्सरसः अस्य समीपे प्रेषित-
वान् । तासाम् मधुरहासपूर्वकाः दृष्टिमाताः, येन केनापि मिषेण मेखलासन्दर्श-
नानि, अन्यानि च विलासमयानि कार्याणि अमुम् मुनिम् तपसः चालयितुम्
समर्थानि न बभूवुः । एतादृशोऽयं महातपाः अस्ति ॥ ४२ ॥

व्याख्या—सहासप्रहितेक्षणानि—हसिते सहासम् = सहासम्, सहासम्

प्रहितानि ईक्षणानि येषु तानि सहासप्रहितेक्षणानि = सस्मितप्रदत्तकटाक्षानि = मुस्कराहट के साथ किए गए दृष्टिपात से युक्त । प्र+धा+क्त = प्रहित । दृष्टिपात के साथ मुस्कराहट का इसलिए प्रयोग किया होगा कि वे सुतीक्ष्ण की तपस्या को कुछ भी नहीं समझती थीं और बड़ी सरलता से उन्हें विचलित कर सकती थीं ।

व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि—सम्+दृश्+णिच्+क्त प्रत्यय = सन्दर्शित । अर्धं सन्दर्शिताः = अर्धसन्दर्शिताः । व्याजेन अर्धसन्दर्शिताः मेखलाः येषु तानि = व्याजार्धसन्दर्शितमेखलानि = केनापि मिषेण ईषद्वर्शित-कटिभूषणानि । यहाँ पर व्याज शब्द मिस्र (वहाना) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और अर्ध शब्द कुछ-कुछ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । सुरांगनाविभ्रम-चेष्टितानि—विभ्रमाः एव चेष्टितानि = विभ्रमचेष्टितानि । सुरांगनानाम् विभ्रमचेष्टितानि सुरांगनाविभ्रमचेष्टितानि = दिव्यांगनाविलासकार्याणि = अप्सराओं की विलासमयी चेष्टाएँ अर्थात् हाव-भाव । जनितेन्द्रशंकम्—जनिता इन्द्रस्य शंका येन तम् जनितेन्द्रशंकम् = उत्पादितेन्द्रभयम् = तपस्या से इन्द्र को भी भयभीत करने वाले । अमुम् = सुतीक्ष्णम् । विकर्तुम्—स्खलयितुम् = विचलित करने को । वि+कृ+तुमुन् = विकर्तुम् । अलम् शब्द यहाँ पर पर्याप्ति का वाचक है । इसलिए विपूर्वककृधातु से 'पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु' इस सूत्र द्वारा तुमुन् प्रत्यय हो गया । अलम्—समर्थानि । न बभूवुः ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—नालं विकर्तुम्—जिस प्रकार शातकर्षि ऋषि की तपस्या खण्डित करने के लिए इन्द्र ने अप्सराओं का प्रयोग किया था, उसी प्रकार सुतीक्ष्ण की भी तपस्या को खण्डित करने के लिए इन्द्र ने अप्सराओं का प्रयोग किया । लेकिन सुतीक्ष्ण के सम्बन्ध में इन्द्र के प्रयोग असफल रहे और वे यथापूर्व तपस्या ही करते रहे ॥ ४२ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—सहासप्रहितेक्षणैः व्याजार्धसन्दर्शितमेखलैः सुरांगनाविभ्रमचेष्टितैः जनितेन्द्रशंकम् अमुं विकर्तुं नालं बभूवुः । कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

४३—श्री रामचन्द्र जी के अभिवादन करने के लिए सुतीक्ष्ण के दक्षिण

हाथ के उठाने का वर्णन—

एषोऽक्षमालावलयं मृगाणाम् कण्डूयितारं कुशसूचिलावम् ।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते ॥ ४३ ॥

सञ्जी०—एष इति । ऊर्ध्वबाहुरेपः सुतीक्ष्णोऽक्षमालावलयो यस्य तं
मृगाणां कण्डूयितारं । कुशा एव सूचयस्ता लुनातीति कुशसूचिलावस्तम् ।
“कर्मण्यण्” इत्यण् । एभिर्विशेषणैर्जयशीलत्वं भूतदया कर्मक्षमत्वं च द्योत्यते ।
सव्यादितरं दक्षिणं भुजं मे मम सभाजने सम्माननिमित्ते । “निमित्तात्कर्मयोगे”
इति सप्तमी । इतः प्राध्वं प्रकृतानुकूलबन्धं प्रयुङ्क्ते । “आनुकूल्यार्थकं प्राध्वम्”
इत्यमरः । अव्ययं चैतत् ।

अन्वय—ऊर्ध्वबाहुः एषः अक्षमालावलयम् मृगाणाम् कण्डूयितारम्
कुशसूचिलावम् सव्येतरम् भुजं मे सभाजने इतः प्राध्वम् प्रयुङ्क्ते ॥ ४३ ॥

हिन्दी अनुवाद—ऊपर को हाथ उठा कर तपस्या करने वाला यह
सुतीक्ष्ण ऋषि रुद्राक्षों की माला से विभूषित, हरिणों की खुजली को दूर करने
वाले तथा कुशों की नोक को तोड़ने वाले अपने सीधे हाथ को मेरे सम्मान
में इस तरफ ही अनुकूल भाव से दिखा रहा है ॥ ४३ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्री रामचन्द्रः सीतां निवेदयति—हे सीते ! पश्य, भुजौ
ऊर्ध्वं प्रसार्य तपश्चरन् अयं सुतीक्ष्णः रुद्राक्षमालायाः वलयेन विभूषितम्,
हरिणानां कण्डूयनापनोदकम्, कुशानाम् अग्रभागापहारकम् च स्वदक्षिणहस्तम्
माम् अभिनन्दितुम् इत एव अनुकूलभावेन प्रदर्शयति । दक्षिणहस्तम् मदभिमुखम्
प्रसार्य मामभिवादयते ॥ ४३ ॥

व्याख्या—ऊर्ध्वबाहुः—ऊर्ध्वं बाहु यस्य सः = ऊर्ध्वबाहुः = ऊर्ध्वभुजः =
ऊपर को भुजाएँ उठाए हुआ । अक्षमालावलयम्—अक्षमाला माला =
अक्षमाला । अक्षमाला-
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विभूषितम् = रुद्राक्षों की माला का ही कंकण पहिने हुए । मृगाणाम् = हरिणानाम् । कण्डूयितारम् — कण्डूयति असौ कण्डूयिता, तम् कण्डूयितारम् = खर्जकम् = खुजलाने वाले । / कण्डूय धातु से कर्ता के अर्थ में तृच् प्रत्यय । मृगाणाम् में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र तथा 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' इस सूत्र द्वारा पठ्ठी विभक्ति हो गई है । कुशसूचिलावम् — कुशानां सूचयः कुशसूचयः, ताः लुनाति इति कुशसूचिलावः, तम् कुशसूचिलावम् = दर्भाङ्कुरचायकम् = कुशों के अग्रभाग को काटने वाले । / लूञ् छेदने धातु से 'कर्मण्यण्' इस सूत्र द्वारा अण् प्रत्यय । सव्येतरम् — सव्यात् इतरम् = सव्येतरम् = दक्षिणम् । भुजम् = हस्तम् । मे = मम सभाजने = सम्माने = सम्मान में । / सभाज् + ल्युट् = सभाजनम् + सभाजन शब्द में 'निमित्तात्कर्मयोगे' इस वार्तिक द्वारा सप्तमी हुई है । इस वार्तिक का अर्थ यह है कि किसी कार्य का फल बताने वाले शब्द में अक्सर सप्तमी होती है । विमान की ओर हाथ के दिखाने का फल रामचन्द्र जी को प्रणाम करना ही है । अतः सभाजन में सप्तमी हो गई । प्राध्वम् = प्रकृतानुकूलबन्धम् = अनुकूल भाव से । 'आनुकूल्यर्थकं प्राध्वम्' इति अमरः । प्राध्वम् — यह एक अव्यय है । इतः = अस्याम् दिशि = इस ओर । इदम् शब्द से सप्तमी विभक्ति के अर्थ में तस् प्रत्यय । प्रयुङ्क्ते — प्र + युज् + शनम् + ते = प्रयुङ्क्ते । / युजिश् योगे रुधादि, लट् प्रथम-पुरुष एकवचन । प्रयुङ्क्ते = प्रसारयति । भुजम् इस क्रिया का कर्म है और ऊर्ध्वबाहुः इसका कर्ता है ॥ ४३ ॥

टिप्पणी — सव्येतरम् भुजम् — भुजम् के तीन विशेषण दिए गए हैं । अक्षमालावलयम् से मुनि के जप करने के स्वभाव की व्यञ्जना होती है । मृगाणां कण्डूयितारम् से सर्वप्राणिदया का बोध होता है और कुशसूचिलावम् से मुनि की कार्यतत्परता का ज्ञान होता है ॥ ४३ ॥

वाच्यपरिवर्तनम् — ऊर्ध्वबाहुना एतेन अक्षमालावलयः मृगाणां कण्डूयिता कुशसूचिलावः सव्येतरः भुजः सो सभाजने प्रसस्तः प्रयुज्यते । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ४३ ॥

४४—रामचन्द्र जी के प्रत्यभिवादन को स्वीकार कर सुतीक्ष्ण का पुनः

अपनी तपस्या में लग जाना—

वाचंयमत्वात् प्रणतिं ममैष कम्पेन किञ्चित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः ।

दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्रार्चिषि संनिधत्ते ॥ ४४ ॥

सञ्जी०—वाचंयमेति । एष सुतीक्ष्णः । वाचं यच्छतीति वाचंयमो मौनव्रती । “वाचि यमो व्रते” इति खच् प्रत्ययः । तस्य भावस्तत्त्वान्मम प्रणतिं किञ्चिन्मूर्ध्नः कम्पेन प्रतिगृह्य विमानेन व्यवधानं तिरोधानं तस्मान्मुक्ताम् । “अपेतापोढमुक्तपतित...” इत्यादिना पञ्चमीसमासः । दृष्टिं पुनः सहस्रार्चिषि सूर्ये संनिधत्ते । सम्यग्धत्त इत्यर्थः । अन्यथाऽकर्मकत्वप्रसङ्गात् ।

अन्वय—एष वाचंयमत्वात् मम प्रणतिं किञ्चित् मूर्ध्नः कम्पेन प्रतिगृह्य विमानव्यवधानमुक्ताम् दृष्टिम् पुनः सहस्रार्चिषि संनिधत्ते ॥ ४४ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—मौनव्रत धारण किए होने के कारण से मेरे प्रणाम को कुछ-कुछ अपने सिर के कम्पन से स्वीकार कर यह सुतीक्ष्ण ऋषि विमान के बीच में आ जाने से हट गई हुई दृष्टि को पुनः सूर्य की ओर लगा रहा है ॥ ४४ ॥

संस्कृतभावार्थ—रामचन्द्रः सीतादेवीं विज्ञापयति—हे प्रिये ! अयम् ऋषिः साम्प्रतम् मौनव्रतमाचरन् वर्तते । अतः अनेन मम प्रणामः स्वशिरसः ईषत्संचालनेनैव प्रतिगृहीतः । मम पुष्पकविमानम् अस्य दृष्टिम् सूर्यात् व्यवहिताम् अकरोत् । साम्प्रतम् विमाने अग्रे आगते सति अयम् पुनरपि स्वदृष्टिम् सूर्ये नियोजयति । महान् खल्वयं तपोधनः ॥ ४४ ॥

व्याख्या—एषः—सुतीक्ष्णः । वाचंयमत्वात्—वाचं यच्छति इति वाचंयमः, तस्य भावः=वाचंयमत्वम्, तस्मात्=वाचंयमत्वात्=मौनव्रत-धारित्वात्=मौनव्रत धारण किए होने के कारण । प्रणतिम्=प्रणामम्=नमस्कार को । प्र+नम्+क्तिन्=प्रणतिः । किञ्चित्=ईषत्=कुछ । मूर्ध्नः=शिरसः । प्रतिगृह्य=स्वीकृत्य=

स्वीकार कर । प्रति + √ग्रह + ल्यप् (य) = प्रतिग्रह्य । विमानव्यवधान-
मुक्ताम्—विमानेन व्यवधानम् विमानव्यवधानम्, तस्मान् मुक्ताम् = विमान-
व्यवधानमुक्ताम् = विमानतिरोधानविरहिताम् = विमान के द्वारा किए गए
व्यवधान से मुक्त । दृष्टिम्—पश्यति अनया इति दृष्टिः । √दृश् + क्तिन् =
दृष्टिः, ताम् दृष्टिम् = दर्शनम् । पुनः = भूयः = फिर । सहस्रार्चिषि—सहस्रार्चि
अर्चींषि यस्य सः, तस्मिन् = सहस्रार्चिषि = सूर्ये । संनिधत्ते—सम् + नि + √
धा + ते (लट्) = संनिधत्ते = सम्यक् धत्ते दधाति वा = दृढ़ता से लगाता
है ॥ ४४ ॥

टिप्पणी—जब रामचन्द्र जी का विमान सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम के
ठीक ऊपर से निकल रहा था, तब उन्होंने ऋषि को प्रणाम किया । सुतीक्ष्ण
ऋषि बड़े प्रसन्न हुए । लेकिन मौनव्रत धारण किए होने के कारण उन्होंने कोई
आशीर्वाद न दिया । विमान के बीच में आ जाने से उनकी निगाह भी सूर्य से
हट गई, लेकिन ज्योंही विमान आगे बढ़ा, उन्होंने अपनी दृष्टि सूर्य पर फिर
स्थिर कर ली ।

वाचंयमत्वात्—वाचम् पूर्वक √यम् उपरमे धातु से 'वाचियमोव्रते' इस सूत्र
द्वारा खच् प्रत्यय हुआ । इस सूत्र का अर्थ यह है कि द्वितीयान्त वाच् शब्द के
उपपद होने पर √यम् धातु से खच् प्रत्यय होता है यदि किसी व्रत का भाव
जतलाना हो । एक दूसरे सूत्र 'वाचंयमपुरन्दरौ च' के द्वारा वाचम् की अम
विभक्ति के लोप का निषेध भी हो जाता है । इस प्रकार वाचंयम शब्द सिद्ध
होता है । यदि किसी व्रत का विचार न हो और कोई अशक्ति अथवा अन्य
कारण से नहीं बोलता है, तो वाग्यामः बनेगा, वाचंयमः नहीं ।

विमानव्यवधानमुक्ताम्—'विमानव्यवधानात्' इस पञ्चम्यन्त शब्द की
'मुक्त' शब्द के साथ 'अपेतापोटमुक्तपतितापन्नस्तैरल्पशः' इस सूत्र द्वारा पञ्चमी
तत्पुरुष समास हुआ है । इस सूत्र का अर्थ यह है कि अपेत, अपोट, मुक्त, पतित
और अपन्नस्त इन शब्दों के पञ्चम्यन्त पूर्वपद से तत्पुरुष समास होता है ।
संनिधत्ते—सम् + नि + √धा + ते (लट्) का अर्थ 'पास में आना' होता है । लेकिन

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

इस अर्थ में यह धातु अकर्मक हो जाती है। यहाँ पर 'दृष्टिम्' यह कर्म वतमान है। अतः इसका शब्दार्थ 'खलना' ही यहाँ उपयुक्त रहेगा। दृष्टिम् संनिधत्ते का अर्थ है—दृढ़ता के साथ देखता है ॥ ४४ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—एतेन वाच्यमत्वात् मम प्रणतिं किञ्चित् मूर्धः कम्पेन प्रतिगृह्य विमानव्ययधानमुक्ता दृष्टिः पुनः सहस्रार्चिषि सन्निधीयते। कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ४४ ॥

४५—शरभंग ऋषि के प्राचीन आश्रम का वर्णन—

अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः।

चिराय संतर्प्य समिद्धिरग्निम् यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत् ॥ ४५ ॥

सङ्गी०—अद इति। शरणे रक्षणे साधुः शरण्यम्। पावयतीति पावनम्। अदो दृश्यमानं तपोवनमाहिताग्नेः शरभङ्गनाम्नो मुनेः सम्बन्धि। यः शरभङ्ग-
श्चिराय चिरमग्निं समिद्धिः सन्तर्प्य ततो मन्त्रैः पूतां शुद्धां तनुमप्यहौषीद्
हुतवान्। जुहोतेर्लुङ्।

अन्वय—शरण्यम् पावनम् अदः तपोवनम् आहिताग्नेः शरभंगनाम्नः
(अस्ति), यः चिराय समिद्धिः अग्निम् संतर्प्य मन्त्रपूतां तनुम् अग्नि-
अहौषीत् ॥ ४५ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे सीते! देखो,
सामने यह पवित्र और सब को शरण देने वाला जो तपोवन दीख रहा है, वह
निरन्तर यज्ञ करने वाले उन शरभंग ऋषि का है जिन्होंने कि बहुत दिनों
तक समिधाओं से अग्नि को तृप्त करने के बाद अन्त में मन्त्रों से पवित्र
हुआ अपनी शरीर भी अग्नि में छोड़ दिया था अर्थात् उसकी भी आहुति
देदी थी ॥ ४५ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतां संबोधयति—अग्निं प्रियतमे! पश्य,
तावत् सम्मुखीनम् अमुम् पवित्रम् सर्वेषाम् रक्षकञ्च आश्रमम्। अयम् आश्रमः
अहिताग्नेः तस्यैव शरणमस्ति। यः बहुकालम् देवतुल्यम्

भगवन्तम् अग्निम् परितोष्य मन्त्रशुद्धम् स्वदेहमपि आहुतिरूपेण तस्मै समर्पयामास।
अतितीव्रतपाः खलु आसीत् स महर्षिवरः ॥ ४५ ॥

व्याख्या—शरण्यम्—शरणे रक्षणे साधुः = शरण्यः, तत् शरण्यम् = आति-
थेयम् = आगन्तुकों को आश्रय देने वाला। शरण शब्द से 'तत्र साधुः' इस
सूत्रद्वारा यत् प्रत्यय। पावनम्—पावयति इति पावनम् = पवित्रम् = पवित्र करने
वाला। √ पू + णिच् + ल्युट् = पावनम्। तपसः वनम् = तपोवनम् = तप-
काननम्। शरभंगनाम्नः—शरभंग इति नाम यस्य सः शरभंगनामा, तस्य
शरभंगनाम्नः = शरभंगनामकस्य = शरभंग नाम वाले। विराध राक्षस को
मारने के बाद दक्षिण की ओर यात्रा करते समय रामचन्द्र जी शरभंग ऋषि
के आश्रम में ठहरे थे। आहिताग्नेः—आ + √ धा + क्त = आहित। आहितः
अग्निः येन सः आहिताग्निः, तस्य आहिताग्नेः = रक्षितयज्ञवह्नेः = निरन्तर
यज्ञ करने वाले। उस ऋषि को आहिताग्नि कहा जाता है जो अग्नि हमेशा
प्रज्वलित रखता है। चिराय = बहुकालम् = बहुत समय तक। समिद्भिः =
यज्ञेन्धनैः = समिधाओं से। शमी, उदुम्बर और आम इत्यादि की लकड़ियों
को समिधा कहते हैं। सन्तर्प्य = परितोष्य = प्रसन्न कर। सम् + √ तृप् + णिच् +
ल्यप् = सन्तर्प्य। मन्त्रपूताम्—√ पू + क्त = पूत। मन्त्रैः पूता = मन्त्रपूता ताम्
मन्त्रपूताम् = मन्त्रशुद्धाम् = मन्त्रों से पवित्र हुई। तनुमपि = स्वशरीरमपि।
अहौपीत् = हुतवान् = अग्नौ प्रक्षिप्तवान् = अग्नि में आहुति दे दी। √ हु
धातु से लुङ् लकार के प्रथमपुरुष का एकवचन। इस क्रिया का तनुम् कर्म
है और यः कर्ता है ॥ ४५ ॥

टिप्पणी—यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौपीत्—शरभंग ऋषि बहुत वृद्ध और
अशक्त हो गए थे। वे जीवन संबन्धी साधारण शुद्धिकार्य भी नहीं कर पाते
थे। इसलिए शास्त्रों की आज्ञानुसार अपने नश्वर शरीर को मन्त्रों द्वारा पवित्र
अग्नि में छोड़ देने का उन्होंने विचार किया। ठीक उसी समय, दक्षिण की ओर
जाते हुए रामचन्द्र जी उनके आश्रम में पहुँचे और उन्होंने अपने रहने
का विचार प्रस्तुत किया। शरभंग ऋषि ने रामचन्द्र जी को अपनी स्थिति

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

समझा दी और निकट में ही स्थित सुताक्ष्ण ऋषि के आश्रम में भी उन्हें भोज दिया तथा स्वयं अग्नि प्रवेश कर लिया। प्राचीन शास्त्रों में भी इस तरह के शरीरत्याग की अनुमति दी गई है।

वाच्यपरिवर्तनम्—अमुना आहिताग्नेः शरभंगान्नः शरण्येन पावनेन तपोवनेन (भूयते); येन चिराय अग्निम् समिद्धिः सन्तर्प्य मन्त्रपूता तनुरपि अहावि। प्रथम वाक्य में कर्तृवाच्य से भाववाच्य और द्वितीय वाक्य में कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन हुआ है ॥ ४५ ॥

४६—शरभंग ऋषि के तपोवन में स्थित वृक्ष छाया और फलों द्वारा अतिथियों की सेवा करते हैं—

छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसम्भाव्यफलेष्वमीषु।

तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ॥ ४६ ॥

सञ्ज्ञी०—छायेति। अधुनास्मिन्काले तस्य शरभङ्गस्य संवर्धिन्यतिथीनां सपर्यातिथिपूजा। “पूजा नमस्यापचितिः सपर्या चार्हणाः समाः” इत्यमरः। छायाभिर्विनीतोऽपनीतोऽध्वपरिश्रमो यैस्तेषु भूयिष्ठानि बहुमानि सम्भाव्यानि श्लाघ्यानि फलानि येषां तेष्वमीषु पादपेषु सुपुत्रेष्विव स्थिता। तत्पुत्रैरिव पादपैरनुष्ठीयत इत्यर्थः।

अन्वय—अधुना तस्य अतिथीनाम् सपर्या छाया विनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेषु अमीषु पादपेषु सुपुत्रेषु इव स्थिता ॥ ४६ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—शरभंग ऋषि अपने अतिथियों की विशेष सेवा किया करते थे। उनका यह अतिथि-सत्कार का भाव सुपुत्रों की तरह इस आश्रम के वृक्षों में भी पाया जाता है, जो कि अपनी छाया से थके हुए यात्रियों के मार्गश्रम को दूर करते हैं और जिन पर कि मधुर फल प्राचुर्य के साथ पाए जाते हैं ॥ ४६ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतां प्रति निवेदयति—हे देवि! पूर्वम् यदा शरभंगः ऋषिः जीवितः आसीत्, स स्वाश्रमम् आगतानाम् जनानाम् महतीम् सेवाम् अकरोत्। स एव तदा शरीरं त्यज्यमानो तेषां दिवंगते सति तेनारोपिताः

आश्रमवृत्ताः अपि अभ्यागतानाम् समुचिताम् सेवां कुर्वन्ति, स्वच्छायया तेषां मार्गश्रमम् अनयन्ति, मधुरफलैश्च तेषां बुभुक्षां दूरीकुर्वन्ति । यथा कश्चित् सुपुत्रः स्वपितरि दिवंगते सति स्वपितृमर्यादाः परिपालयति, एवमेव उत्तराधिकार-रूपेण ऋषेः समुपागतम् अतिथिधर्मम् इमे वृत्ताः अपि छायादानेन फलसमर्पणेन च परिपालयन्ति । नूनमिमे पादपाः तस्य सुपुत्राः सन्ति ॥ ४६ ॥

व्याख्या—अधुना = संप्रति = इस समय । ‘एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतम् तथा’ इति अमरः । अस्मिन् काले इस अर्थ में अस्मिन् शब्द से ‘अधुना’ इस सूत्र द्वारा अधुना प्रत्यय हो जाता है । इदम् शब्द का लोप और फिर केवल अधुना वच रहता है । तस्य = शरभंगस्य । अतिथीनाम्—न विद्यते तिथिः यस्य सः अतिथिः, तेषाम् अतिथीनाम् = अभ्यागतानाम् = मेहमानों का । सपर्या—/सपर + य + अ + टाप् स्त्रियां सपर्या = परिचर्या = सेवा-सत्कार । ‘पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्या चार्हणाः समाः’ इति अमरः । छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु—वि + /नी + क = विनीत । अध्वनः परिश्रमः अध्वपरिश्रमः । छायाया विनीतः अध्वपरिश्रम यैः ते, छायाविनीताध्वपरिश्रमाः, तेषु छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु = अनातपदूरीकृतमार्गस्वेदेषु = छाया से मार्ग की थकावट दूर करने वालों में । ‘छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः’ इति अमरः । भूयिष्ठसंभाव्यफलेषु—सम् + /भू + ण्यत् = सम्भाव्य । अतिशयेन बहूनि इति भूयिष्ठानि (बहु + इष्ट = भूयिष्ठ) । भूयिष्ठानि सम्भाव्यानि फलानि येषु तेषु = भूयिष्ठसंभाव्यफलेषु = बहुलश्लाघ्यफलेषु = बहुतायत के साथ जिन पर मधुर फल आते हैं । मल्लिनाथ ने सम्भाव्य शब्द का श्लाघ्य अर्थ लिया है । चरित्रवर्धन आदि टीकाकार ‘प्राप्य’ अर्थ लेते हैं । लेकिन ‘उपयुक्त’ अथवा ‘उत्पाद्य’ अर्थ भी अनुचित नहीं है, क्योंकि सम् पूर्वक/भू धातु से यह अर्थ नितान्त संगत बैठता है । पादपेषु—पादैः पिबन्ति इति पादपाः, तेषु पादपेषु = वृक्षेषु । पाद + /पा + क = पादप । ‘आतोऽनुपसर्गं कः’ इस सूत्र द्वारा क प्रत्यय । सुपुत्रेषु—शोभनाः पुत्राः = सुपुत्राः, तेषु = सुपुत्रेषु = सुसुतेषु । स्थिता = रक्षिता विद्यते । अपिपुत्रैरिव ऋषिधर्मः अतिथिसत्कारः अनुष्ठीयते ॥ ४६ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

टिप्पणी—शरभंग ऋषि अब नहीं है और न उनके कोई पुत्र ही हैं जो कि पवित्र आश्रम की परम्पराओं को सुरक्षित रख सकें। बहुत से पवित्र कार्य जो कि प्रति दिन होते रहते थे, अब निश्चय ही विल्कुल छूट सकते थे। अतिथियों का सत्कार तो अब हो ही कैसे सकता था। लेकिन सौभाग्यवश ऐसी बात नहीं थी। ऋषि ने अपने आश्रम में जो वृक्ष लगाए थे, वे अब ऋषि की अनुपस्थिति में अतिथियों की छाया तथा फलों द्वारा निरन्तर सेवा करते रहते हैं मानों कि वे ऋषि के पुत्र हों। अतिथीनाम् सपर्या—प्रत्येक गृहस्थ का यह परम धर्म है कि वह अतिथि का स्वागत करे और उसको सब प्रकार का आराम पहुँचावे। शकुन्तला नाटक में हम देखते ही है कि कण्व ऋषि ने अपनी अनुपस्थिति में अतिथिसेवा का कार्य शकुन्तला को सौंप दिया था ॥ ४६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—अधुना तस्य अतिथीनाम् सपर्याया छायाविनीताध्व-परिश्रमेण भूयिष्ठसम्भाव्यफलेषु अमीषु पादपेषु सुपुत्रेषु इव स्थितया भूयते। कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ४६ ॥

४७—चित्रकूट पर्वत का वर्णन—

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृंगाग्रलग्नान्बुदवप्रपंकः ।

वध्नाति मे बन्धुरगात्रि चर्चद्विप्रः ककुद्मानिव चित्रकूटः ॥ ४७ ॥

सञ्जी०—धारेति । धारा निर्भरधाराः यद्वा धारया सातत्येन स्वनोद्गारिदर्येव मुखं यस्य सः शृङ्गं शिखरं विषाणं च । तस्याग्रे लग्नोऽम्बुद एव वप्रपङ्को वप्रकीडासक्तपङ्को यस्य सः असौ चित्रकूटो हे बन्धुरगात्रि उन्नतान-ताङ्गि ! “बन्धुरं तून्नतानतम्” इत्यमरः । दत्तः ककुद्मान् वृषभ इव मे चक्षुर्वध्ना-त्यनन्यासक्तं करोति ।

अन्वय—हे बन्धुरगात्रि ! धारास्वनोद्गारिदरीमुखः शृंगाग्रलग्नान्बुदवप्रपंकः असौ चित्रकूटः दत्तः ककुद्मान् इव मे चक्षुः वध्नाति ॥ ४७ ॥

हिन्दी अनुवाद—हे सुन्दर अंगों वाली सीते ! निर्भरधाराओं की ध्वनि से निनादित मुख जैसी गुफाओं वाला तथा चोटियों के अग्रभाग पर पंक की

तरह लगे हुए मेघों से युक्त यह चित्रकूट पर्वत मदोद्धत वृषभ की तरह मेरे
नेत्रों को अपनी ओर खींच रहा है ॥ ४७ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्री रामचन्द्रः सीतां संवोधयति—अयि सुन्दरांगि ! अयम् चित्रकूटपर्वतः मम दृष्टिम् स्वाभिमुखम् आकर्षति । प्रतीयते चायम् मदोद्धतः वृषभ इव । यथा कस्यचिन्मदोद्धतस्य वृषभस्य दरीसदृशात् सुखात् धारया (सातत्येन) घोरगर्जनम् निःसरति, तथैवायं पर्वतः अपि धाराणां (निर्भरधाराणाम्) स्वनं स्वदरीमुखेषु निनादयन् बहिर्निःसारयति । यथा च कस्यचिन्मदोद्धतस्य वृषभस्य शृंगाग्रे वप्रक्रीडायाम् संलग्नः पङ्कः अत्यन्तम् शोभते, तथैवास्य पर्वतस्यापि शिखरेषु संलग्नाः मेघाः अत्यन्तं शोभन्ते । नूनमयम् मदोद्धतेन वृषभेण साधर्म्यं भजते ॥ ४७ ॥

व्याख्या—बन्धुरगात्रि—बन्धुराणि गात्राणि यस्याः सा तत्संबुद्धौ हे बन्धुर-
गात्रि = सुन्दरांगि = सुन्दर शरीर वाली। ‘बन्धुरं’ सुन्दरे रम्ये’ इति विश्वः।
मल्लिनाथ ने ‘बन्धुर’ शब्द का ‘उन्नतानत’ अर्थ माना है और बन्धुरगात्रि का
‘उन्नतानताङ्गि’ पर्याय दिया है तथा ‘बन्धुरं तून्नतानतम्’ इस अमर कोष का भी
उल्लेख किया है। लेकिन विश्वकोष के आधार पर दिया गया पूर्व व्याख्यान
अधिक अच्छा है। धारास्वनोद्गारिदरीमुखः—इस शब्द की पर्वत के पक्ष
में निम्न व्याख्या होगी। धाराणाम् स्वनः = धारास्वनः। दरीणाम् मुखानि =
दरीमुखानि। धारास्वनम् उद्गिरन्ति इति तानि धारास्वनोद्गारीणि (धारास्वन +
उद् + गृ + णिनि) धारास्वनोद्गारीणि दरीमुखानि यस्य सः = धारास्वनोद्-
गारिदरीमुखः = निर्भरकलरवनिनदत्कन्दराननः = झरनों के कलरव से गुँजती
हुई गुफाओं वाला। वृषभ के पक्ष में निम्न अर्थ होगा—धारया सातत्येन
स्वनाः = धारास्वनाः। दरी इव मुखम् = दरीमुखम्। धारास्वनैः उद्गारि
दरीमुखं यस्य सः = धारास्वनोद्गारि दरीमुखः = अविरलध्वनत्कन्दराननः =
लगातार गर्जते हुए गुफा जैसे मुखवाला। शृंगाग्रलभाम्बुद्वप्रपंकः—अम्बूनि
ददाति इति अम्बुदः (अम्बु + दा + क)। वप्रे यः पंकः = वप्रपंकः। अम्बुद
एव वप्रपंकः = अम्बुद्वप्रपंकः। शृंगाग्रलभाम्बुद्वप्रपंकः = शृंगाग्रम्। शृंगाग्रे

त
ने

नि
बु
घो
स्
श
शि
भ

ग
म
ए
उ
अ
में
द
उ
गा
हुई
स्वः
दरी
लग
दद
एव

लग्नः अम्बुदवप्रपंकः यस्य सः = शृंगाग्रलम्बाम्बुदवप्रपंकः = चोटियों के अग्रभाग पर कीचड़ के समान लगे हुए मेघ वाला । वृषभ के साथ यह अर्थ होगा—सींगों के अग्रभाग पर बादल के समान लगी हुई कीचड़ वाला । शिखरासक्त-मेघकर्दमः, विषाणासक्त मेघकर्दमो वा । चित्रकूटः = एतन्नामकः पर्वतः । दृप्तः मदोद्धतः = मतवाले = ककुद्मान्—ककुत् अस्य अस्ति इति ककुद्मान् = वृषभः । (ककुद् + मतुप्) चक्षुः = दृष्टिम् । वध्नाति = अनन्यासक्तम् करोति = विशेष रूप से अपनी ओर खींचता है ॥ ४७ ॥

टिप्पणी—दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः—यहाँ पर चित्रकूट और वृषभ में उपमा है । दरी और मुख में उपमा है । अम्बुद और पंक में उपमा है तथा शिखरों और सींगों में उपमा है । मदोद्धत वृषभ एक विशेष प्रकार से गरजता है । चित्रकूट पर्वत भी जलप्रपातों द्वारा निरन्तर ध्वनि देता रहता है । मदोद्धत वृषभ प्रायः मिट्टी के टीलों और नदियों के किनारों से टक्कर मारता है और कुछ कीचड़ उसके सींगों में लग ही जाती है । पर्वत भी अपनी चोटियों पर बादलों को धारण करता है और वे बादल कीचड़ की तरह ही प्रतीत होते हैं ।

चित्रकूट—बुन्देलखण्ड में बाँदा नगर से दक्षिणपूर्व की ओर लगभग ५० मील पर मन्दाकिनी के तट पर यह पर्वत स्थित है । इलाहाबाद से दक्षिण की ओर लगभग ५५ मील दूर यह स्थान होगा । रामचन्द्र जी के भक्तों के लिए यह पवित्रतम स्थान है और प्रतिवर्ष हजारों यात्री यहाँ आते हैं । राम और लक्ष्मण के अनेक मन्दिर यहाँ पर बने हुए हैं और आदिकवि महर्षि वाल्मीकि का निवास-स्थान भी यहाँ पर माना जाता है ॥ ४७ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—हे बन्धुरगात्रि ! धारास्वनोद्गारिदरीमुखेन शृंगाग्रलम्बा-म्बुदवप्रपङ्केन अमुना चित्रकूटेन दृप्तेन ककुद्मता इव मे चक्षुः बध्यते । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ४७ ॥

४८—चित्रकूट पर्वत की तलहटी में बहती हुई मन्दाकिनी नदी का मुक्तावली के समान प्रतीत होना—

एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद् विदूरान्तरभावतन्वी ।

मन्दाकिनी मीरि नमोऽप्युदयमुत्तमवली कण्ठगतैव भूमेः ॥ ४८ ॥

सञ्जी०—एपेति । प्रसन्नो निर्मलः स्तिमितो निःस्पन्दः प्रवाहो यस्याः स विदूरस्यान्तरस्य मध्यवर्त्यवकाशस्य भावात्तन्वी दूरदेशवर्तित्वात्तनुत्वेनावभासमानमन्दाकिनी नाम काचिच्चित्रकूटनिकटवर्तिन्येषा सरिन्नगोपकण्ठे भूमेः कण्ठगता मुक्तावलीव भाति । अत्र नगस्य शिरस्त्वं तदुपकण्ठस्य कण्ठत्वं गम्यते ।

अन्वय—प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा विदूरान्तरभावतन्वी एषा मन्दाकिनी सरित् नगोपकण्ठे भूमेः कण्ठगता मुक्तावली इव भाति ॥ ४८ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी को चित्रकूट के नीचे बहती हुई मन्दाकिनी नदी दिखलाते हुए कहते हैं—स्वच्छ और निश्चल प्रवाह वाली तथा दूरी के कारण पतली दिखलाई पड़ने वाली यह मन्दाकिनी नदी चित्रकूट के निकट भगवती वसुन्धरा के कण्ठ में पड़ी हुई मुक्तावली के समान शोभित हो रही है ॥ ४८ ॥

संस्कृतभावार्थ—हे प्रिये ! पश्य तावत् चित्रकूटपर्वतस्य समीपे प्रवहमानाम् मन्दाकिनीम् नदीम् । अस्याः जलम् अतीव निर्मलम्, प्रवाहश्चापि अतीव शान्तः वर्तते । दूरत्वाच्चेयम् अत्यन्तं क्षीणा दृश्यते । भगवत्याः वसुन्धरायाः कण्ठे शोभमाना मौक्तिकमाला इव इयम् सरित् प्रतीयते ॥ ४८ ॥

व्याख्या—प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा—प्र + √वह् + घञ् = प्रवाहः । प्रसन्नश्चासौ स्तिमितश्च प्रसन्नस्तिमितः । प्रसन्नस्तिमितः प्रवाहः यस्याः सा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा = निर्मलनिःस्पन्दसलिला = स्वच्छ और शान्त जल से युक्त । 'प्रसन्न' विशेषण नदी और माला दोनों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है । विदूरान्तरभावतन्वी—तनु + ङीप् = तन्वी । 'वोतो गुणवचनात्' इस सूत्र से वैकल्पिक ङीप् प्रत्यय । विशेषण दूरम् विदूरम् । विदूरम् अन्तरं यस्य तत् विदूरान्तरम्, तस्य भावः विदूरान्तरभावः, तेन तन्वी विदूरान्तरभावतन्वी = दूरदेशवर्तित्वात्तनुत्वेनावभासमाना = दूर पर स्थित होने के कारण पतली दिखलाई पड़ने वाली । मन्दाकिनी = काचिन्नदी । यों तो गंगा को भी मन्दाकिनी कहते हैं लेकिन यह एक अन्य ही छोटी सी नदी है । नगोपकण्ठे—न गच्छति इति नगः (नञ् + गम् + ङ) । कण्ठस्य समीपम् उपकण्ठम् । नगस्य उपकण्ठम् = नगोपकण्ठम्

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

तस्मिन् नगोपकण्ठे = पर्वतसमीपे = पर्वत के पास । कण्ठे गता = कण्ठगता = कण्ठस्थिता = कण्ठ में पड़ी हुई । मुक्तावली—मुक्तानाम् आवली = मुक्तावली = मौक्तिकमाला = मोतियों की माला । भाति = शोभते । यहाँ चित्रकूट पर्वत को पृथ्वी का सिर और उसके निम्न भाग को पृथ्वी का कण्ठ माना गया है ॥ ४८ ॥

टिप्पणी—मन्दाकिनी नदी और मुक्तावली में उपमानोपमेय भाव है । ‘प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा’ विशेषण दोनों में ही समान रूप से घटता है ॥ ४८ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—प्रसन्नस्तिमित प्रवाहया विदूरान्तरभावतन्वया मन्दाकिन्या एतया सरिता नगोपकण्ठे भूमेः कण्ठगतया मुक्तावल्या इव भायते । कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ४८ ॥

४९—चित्रकूट के निकट स्थित तमाल वृक्ष का वर्णन—

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य ।

यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयावतंसः परिकल्पितस्ते ॥ ४९ ॥

सञ्जी०—अयमिति । गिरेः समीपम् अनुगिरम् “गिरेश्च सेनकस्य” इति समासान्तष्टच्प्रत्ययः । सुजातः स तमालोऽयं दृश्यते यस्य तमालस्य । शोभनो गन्धो यस्य तत्सुगन्धि । “गन्धस्य...” इत्यादिनेकारः समासान्तः । प्रवालं पल्लवमादाय मया ते यवाङ्कुरवदापाण्डौ कपोले शोभते यः सोऽवतंसः कर्णालङ्कारः परिकल्पितः ।

अन्वय—अनुगिरम् सुजातः तमालः अयम् (दृश्यते), यस्य सुगन्धि प्रवालम् आदाय मया ते यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी अवतंसः परिकल्पितः ॥ ४९ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे प्रिये ! देखो, पर्वत के पास यह जो सुन्दर तमाल वृक्ष दीख रहा है, यह वही तमाल वृक्ष है जिसके सुगन्धित पत्तों को लेकर जौ के अंकुर के समान कुछ-कुछ पीले तुम्हारे कपोलों को शोभित करने वाला कर्णफूल मैंने बनाया ॥ ४९ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतां प्रति निवेदयति—हे देवि ! चित्रकूट-समीपम् दृश्यमानः अयम् स एव तमालवृक्षः तमालवृक्षः अस्ति यस्य सुगन्धितं

नवपत्रम् गृहीत्वा अहम् यवाङ्कुरवत् गौरवर्णयोः तव कपोलयोः शोभादायकम्
कर्णभूषणम् निर्मितवान् ॥ ४६ ॥

व्याख्या—अनुगिरम्—गिरेः समीपम्=अनुगिरम् । गिरि शब्द का
अनु के साथ अव्ययीभाव समास । ‘गिरेश्च सेनकस्य’ इस सूत्र द्वारा टच्
प्रत्यय । इस प्रकार अनुगिरम् बनता है । अनुगिरम्=पर्वतसमीपम्=पर्वत
के पास । सुजातः—सुष्ठु जातः=सुजातः=सुन्दरः । तमालः=तमाल
वृक्षः । सुगन्धि—शोभनो गन्धो यस्य तत् सुगन्धि=सुरभि=सुगन्धित ।
बहुव्रीहि समास के बाद ‘गन्धस्येदुत्पत्तिसुसुरभिभ्यः’ इति सूत्र से इकार अन्तादेश
हो जाता है । प्रवालम्=पल्लवम् । आदाय=गृहीत्वा । आ+दा+ल्यप् ।
यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी—यवस्य अंकुरः=यवांकुरः । ईषत्पाण्डुः=
आपाण्डुः । यवांकुर इव आपाण्डुः=यवाङ्कुरापाण्डुः, तथाविधः कपोलः
यवांकुरापाण्डुकपोलः, यवांकुरापाण्डुकपोले शोभते यः सः=यवांकुरापाण्डु
कपोलशोभी=व्रीह्यङ्कुरापीतकपोलशोभावर्धकः=जौ के अंकुरों के समान
कुछ-कुछ पीले कपोलों की शोभा बढ़ाने वाला । अवतंसः—अवतंस्यते भूष्यते
अनेन इति अवतंसः=कर्णभूषणम्=कर्णफूल । परिकल्पितः=रचितः ।
परि+कृप्+णिच्+क्त=परिकल्पितः । कृप् धातु के रू को ‘कृपो रो लः’
इस सूत्र से ल् हो जाता है ॥ ४६ ॥

टिप्पणी—‘मयावतंसः’ में ‘मया अवतंसः’ इस पाठ के स्थान में ‘मया-
वतंसः’ ऐसा भी पढ़ सकते हैं । ‘वण्टि भागुरि रल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः’ यह
भागुरि मत तो विदित ही है ॥ ४६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—अनेन सुजातेन तमालेन भूयते । यस्य सुगन्धि प्रवालम्
आदाय अहम् यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभिनम् अवतंसम् परिकल्पितवान् ।
कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ४६ ॥

५०—अत्रि ऋषि के तपोवन का वर्णन—

अनिप्रहत्रासविनीतसत्त्वमपुष्पलिङ्गात् फलवन्धिवृक्षम् ।

वनं तपः साधनमतदत्राविकृतोदग्रतरप्रभावम् ॥ ५० ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

सञ्जी०—अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वं निग्रहत्रासाः दण्डभयराहताः अपि विनीताः सत्त्वा

जन्तवो यस्मिंस्तत् । अपुष्पलिङ्गात्पुष्परूपनिमित्तं विनैव फलबन्धिनः फलग्राहिणो
वृक्षा यस्मिंस्तत् । अत एवाविष्कृतोदग्रतरप्रभावमत्रेर्मुनेस्तपःसाधनं वनमेतत् ।

अन्वय—अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम् अपुष्पलिङ्गात् फलबन्धिवृक्षम् आविष्कृ-
तोदग्रतरप्रभावम् अत्रेः तपःसाधनम् वनम् एतत् ॥ ५० ॥

हिन्दी अनुवाद—श्री रामचन्द्र जी सीता जी को अत्रि ऋषि का आश्रम
दिखलाते हुए कहते हैं—हे सीते ! देखो, सामने यह अत्रि ऋषि का तपोवन
दीख रहा है । यहाँ पर दण्ड के भय के बिना ही समस्त प्राणी विनीत भाव
से रहते हैं, पुष्पों के आए बिना ही समस्त वृक्ष अपने-अपने फल देते हैं और
इस प्रकार ही अत्रि ऋषि की तपस्या का उग्र प्रभाव यहाँ दिखलाई पड़ता
है ॥ ५० ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतां संबोधयति—प्रिये ! पश्य तावत्
सम्मुखीनं महर्षेः अत्रेः आश्रमपदम् । अत्र खलु भगवतोऽत्रेः तपस्यायाः अतीव
उत्कटः प्रभावः दृष्टिपथमायाति । सर्वेऽपि प्राणिनः दण्डस्य भयं विनैव अत्र
नम्राः शिष्टाश्च सन्ति, वृक्षेषु च पुष्पागमनं विनैव फलानि समागच्छन्ति ।
अतीव महिमामयं खलु एतत् तपोवनम् ॥ ५० ॥

व्याख्या—अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम्—नि + √ग्रह् + अप् = निग्रहः ।
निग्रहस्य त्रासः निग्रहत्रासः । न निग्रहत्रासः येषां ते अनिग्रहत्रासाः । अनिग्रह-
त्रासाः अपि विनीताः सत्त्वाः यस्मिन् तत् = अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वम् = अदण्ड-
भयशान्तजीवम् = दण्ड भय के बिना ही शान्त रहने वाले जीवों से युक्त ।
अपुष्पलिङ्गात्—पुष्प एव लिङ्गम् = पुष्पलिङ्गम् । न पुष्पलिङ्गम् = अपुष्प-
लिङ्गम्, तस्मात् अपुष्पलिङ्गात् = पुष्परूपचिह्नात् विनैव = पुष्परूप सूचक चिह्न
के बिना ही । 'अपुष्पलिङ्गात्' में 'पुष्पलिङ्गम् अप्राप्यापि' इस प्रकार ल्यबर्थ
के लोप की कल्पना होने से 'ल्यबलोपे कर्मण्यधिकरणे च' इस वार्तिक से
पंचमी विभक्ति हुई है । फलबन्धिवृक्षम्—फलानि बध्नन्ति इति फलबन्धिनः ।
फलबन्धिनः वृक्षाः यस्मिन् तत् फलबन्धिवृक्षम् = फलवत्पादपम् = फल वाले वृक्षों

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

से युक्त । **आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम्**—**आविस् + कृ + त = आविष्कृत** ।
आविस् प्रकाश अर्थ में प्रयुक्त होने वाला एक अव्यय है । **उदगतम्** अग्रमस्य
 इति उदग्रम् । अतिशयेन उदग्रः = उदग्रतरः । **आविष्कृतः** उदग्रतरः प्रभावः
 यस्मिन् तत् **आविष्कृतोदग्रतरप्रभावम्** = प्रकटीकृतोत्कटसामर्थ्यम् = अत्यन्त
 उग्र प्रभाव को प्रकट करने वाला । **तपःसाधनम्** = तपःसहायकम् । एतत्
 वनं दृश्यते ॥ ५० ॥

टिप्पणी—**अत्रिः**—मनु के मानसिक दस पुत्रों में से एक पुत्र तथा
 प्रजापति । इनकी पत्नी का नाम अनसूया था । अत्रेः तपःसाधनम् वनम्—
 दूसरे ऋषियों के तपोवन की अपेक्षा अत्रि का तपोवन अधिक प्रभावशाली
 है । इनके तपोवन में शेर, चीते तथा अन्य हिंसक जन्तु स्वभाववश अपनी
 पशुवृत्ति को छोड़ कर शान्त भाव से रहते हैं । वृक्ष भी सर्वदा फल देते रहते
 हैं । पुष्पों के आए बिना ही एकदम फल देना उनका स्वभाव सा है ॥ ५० ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वेन अपुष्पलिङ्गात् फलबन्धि-
 वृक्षेण आविष्कृतोदग्रतरप्रभावेण अत्रेः तपःसाधनेन एतेन वनेन भूयते ।
 कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ५० ॥

५१—अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया द्वारा गंगा के लिए जाने का वर्णन—

अत्राभिपेकाय तपोधनानाम् सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम् ।

प्रवर्तयामास किलानसूया त्रिस्तोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम् ॥ ५१ ॥

सर्जी०—अत्रेति । अत्र वनेऽनुसूयात्रिपत्नी । सप्त च ते ऋषयश्च सप्तर्षयः ।
 “दिक् संख्ये संज्ञायाम्” इति तत्पुरुषः । तेषां हस्तैरुद्धृतानि हेमपद्मानि यस्यास्तां
 त्र्यम्बकमौलिमालां हरिशिरःस्रजं त्रिस्तोतसं भागीरथीं तपोधनानामृषीणामभिपेकाय
 स्नानाय प्रवर्तयामास प्रवाहयामास । किलेत्यैतिह्ये ।

अन्वय—अत्र अनसूया सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम् त्र्यम्बकमौलिमालाम्
 त्रिस्तोतसम् तपोधनानाम् अभिपेकाय प्रवर्तयामास किल ॥ ५१ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी अत्रि आश्रम का वर्णन करते हुए कहते
 हैं—हे सीते ! इस आश्रम में अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया ने तपस्वियों के

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

स्नान के लिए उसे त्रिपत्नीयुगपत् के अर्चन करने लगे। प्रवाहित किया जिसके कि सुनहरे कमलों को सप्तर्षि स्वयं अपने हाथों से तोड़ा करते थे और जो भगवान् शंकर के मस्तक पर माला के समान विराजती थीं ॥ ५१ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः अत्रिमहर्षेः आश्रमम् वर्णयन् कथयति—
हे सीते ! पश्य अखण्डपतिव्रतायाः भगवत्याः अनसूयायाः पुण्यप्रभावम् ।
यदा अस्मिन् भूतले सर्वे जीवमण्डलम् अनावृष्टिर्व्याकुलं बभूव, तदा स्वपुण्य-
प्रभावात् भगवती अनसूया तपस्विनां स्नानादिनित्यकर्मसंपादनार्थम् स्वर्गात्
भगवतीम् गंगाम् नीचैः अवतारयामास । इयम् सैव स्वर्गंगा, यस्याः हेमक-
मलानि सप्तर्षयः स्वहस्तैः अवाचिन्वन् या च भगवतः शंकरस्य मौलौमालेव
विराजयामास । अहो महत् तेजोबलम् भगवत्याः अनसूयायाः ॥ ५१ ॥

व्याख्या—अत्र = अस्मिन् तपोवने । अनसूया = अत्रिपत्नी । सप्तर्षि-
हस्तोद्भृतहेमपद्माम्—सप्त च ते ऋषयः = सप्तर्षयः । सप्तर्षीणां हस्तैः सप्तर्षि-
हस्तैः । सप्तर्षिहस्तैः उद्भृतानि हेमपद्मानि यस्याः सा ताम् = सप्तर्षिहस्तोद्भृ-
तहेमपद्माम् = सप्तर्षिकरावचितकनकमलाम् = सप्तर्षियों के करों द्वारा तोड़े
गए सुनहरे कमल जिसके । 'सप्तर्षि' शब्द में 'दिवसंख्येसंज्ञायाम्' इस सूत्र
द्वारा कर्मधारय समास हुआ है । इस सूत्र का अर्थ यह है—दिशावाची और
संख्यावाची शब्द समानविभक्तिक अन्य शब्दों के साथ समस्त होते हैं यदि
समस्त पद संज्ञावाची हो । सात ऋषियों के नाम पर पड़े हुए नक्षत्रों के समूह-
विशेष का नाम सप्तर्षि है । त्र्यम्बकमौलिमालाम्—त्रीणि त्र्यम्बकानि यस्य
सः त्र्यम्बकः, तस्य मौलिः = त्र्यम्बकमौलिः, तस्य माला ताम् त्र्यम्बकमौलि-
मालाम् = शिवजी के मुकुट की माला को । त्रिस्तोतसम्—त्रीणि स्तोतांसि
अस्याः सा त्रिस्तोताः, ताम् त्रिस्तोतसम् = गंगाम् । तपोधनानाम्—तप एव
धनं येषां ते = तपोधनाः तेषाम् तपोधनानाम् = तपस्विनाम् = तपस्वियों के ।
अभिषेकाय—अभि + √सिच् + घञ् = अभिषेकः, तस्मै = अभिषेकाय =
स्नानाय । प्रवर्तयासास—प्र + √वृत् + णिच् + लिट् = प्रवर्तयामास—प्रवाह-
यामास = प्रवाहित किया । किल = ऐतिह्यं द्योतयति ॥ ५१ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

टिप्पणी—सतपि—सात ऋषि निम्नलिखित हैं—मरीचिरत्रिः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः । वसिष्ठश्च महाभागः सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥ बृहत्संहिता में ८ वतलाए गए हैं—जमदग्नि, भरद्वाज, विश्वामित्र, अत्रि, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप और अगस्त्य ।

अनसूया—अपने सतीत्व और पातिव्रत्य के लिए परम विख्यात तथा अत्रि ऋषि की धर्मपत्नी । इन्होंने अपने पातिव्रत्य से अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर ली थीं । ऐसा कहा जाता है कि अत्रि ऋषि के आश्रम के आस पास की भूमि लगातार १० वर्ष तक वर्षा न होने से लगभग जल सी गई थी । उस समय अत्रिपत्नी अनसूया ने कठोर तपस्या द्वारा फल और फूल उपजा दिए और स्वर्ग की गंगा को भूतल पर प्रवाहित किया ताकि मुनिजन सुख और सुविधा के साथ अपने नित्यकर्म कर सकें ।

वाच्यपरिवर्तनम्—अत्र अनसूयया सतपिहस्तोद्धृतहेमपुद्गा त्र्यम्बकमौलि-माला त्रिस्रोताः तपोधनानाम् अभिषेकाय प्रवर्तयामासे किल । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ५१ ॥

५२—आश्रम में स्थित वृद्धों के भी ध्यानमग्न होने का वर्णन—

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणाममी समध्यासितवेदिमध्याः ।

निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ॥५२॥

सङ्गी०—वीरेति । वीरासनैर्जयसाधनैः । ध्यानं जुषन्ते सेवन्त इति ध्यानजुषः । तेषां तैरुपविश्य ध्यायतामृषीणां सम्बन्धिनः समध्यासितवेदिमध्याः । इदं वीरासनस्थानीयम् । अमी शाखिनोऽपि निवाते निष्कम्पतया योगाधिरूढा इव ध्यानभाज इव विभान्ति । ध्यायन्तोऽपि निश्चलाङ्गा भवन्ति । वीरासने वशिष्ठः—“एकपादमथैकस्मिन्विन्यस्योरुणि संस्थितम् । इतरस्मिंस्तथा चान्यं वीरासनमुदाहृतम् ।”

अन्वय—वीरासनैः ध्यानजुषाम् ऋषीणाम् समध्यासितवेदिमध्याः अमी शाखिनः अपि विषमनिष्कम्पतया योगाधिरूढा इव विभान्ति ॥ ५२ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—वीरासन लगा कर ध्यानमग्न रहने वाले ऋषियों द्वारा वेदी के मध्य लगाए हुए वृद्ध वायु-प्रवाह के न होने से निश्चल खड़े हुए हैं। ऐसा लगता है मानों वे भी समाधि लगाए हुए हों ॥ ५२ ॥

संस्कृतभावार्थ—अत्रिमुनेः आश्रमं सीतादेवीं दर्शयन् श्रीरामचन्द्रः कथयति—हे देवि ! पश्य तावत् । अस्य आश्रमवेदिकामु यत्र तत्र वृद्धाः दृश्यन्ते । इमे वीरासनस्थितैः ध्यानमग्नैः ऋषिभिरेव आरोपिताः सन्ति । साम्प्रतम् वायुः न वाति, अतः इमे वृद्धाः नितान्तम् निश्चलाः सन्ति, योगाभ्यासं कुर्वन्तः समाधिसंलग्नाश्च इव प्रतीयन्ते ॥ ५२ ॥

व्याख्या—वीरासनैः—/आस्+ल्युट्=आसनम् । वीराणाम् आसनम्=वीरासनम्, तैः वीरासनैः=उपवेशप्रकारविशेषैः=वीरासन द्वारा । ध्यानजुषाम्—ध्यानम् जुषन्ते सेवन्ते इति ध्यानजुषः, तेषाम्=ध्यानजुषाम्=ध्यानमग्नानाम्=ध्यान में लगे हुए । ध्यान+जुप्+क्विप्=ध्यानजुद् । समध्यासितवेदिमध्याः—वेद्याः मध्यम्=वेदिमध्यम् । समध्यासितम् वेदिमध्यम् यैः ते समध्यासितवेदिमध्याः=वेदिकाकेन्द्रस्थिताः=चबूतरों के बीच में स्थित । शाखिनः—शाखाः विद्यन्ते एषाम् इति शाखिनः=वृद्धाः । शाखा+इन्=शाखिन् । निवातनिष्कम्पतया—वातस्य अभावः निवातः, तेन निष्कम्पता=निवातनिष्कम्पता=वाताभावजन्यनिश्चलतया=वायु के अभाव के कारण उत्पन्न हुई निश्चलता के कारण । योगाधिरूढाः—युज्+वञ्=योग । अधि+रूह्+क्त=अधिरूढ । योगम् अधिरूढाः=योगाधिरूढाः=ध्यानलगाः । विभान्ति=प्रतीयन्ते=प्रतीत होते हैं ॥ ५२ ॥

टिप्पणी—वीरासनैः—योगाभ्यास में एक विशेष प्रकार से बैठने को वीरासन कहते हैं । वीरासन के सम्बन्ध में वसिष्ठ जी ने इस प्रकार लिखा है—एक पैर एक जंघा पर रखो और दूसरा पैर दूसरी जंघा पर रखो । बस, वीरासन हो गया । बल्लभदेव ने प्रकारान्तर से वीरासन को समझाया है—अंगुष्ठान्गैः ऊर्ध्वबाहुभिः सहोदरैश्चोक्तम् वीरासनम् ।

समध्यासितवेदिमध्याः—वेदि अथवा वेदिका किसी भी ऊँची उठाई हुई समतल भूमि को कह सकते हैं। धार्मिक कृत्यों, घरेलू कार्यों अथवा सड़क के किनारे बोझा रखने और आराम करने के लिए इसका उपयोग होता है। यहाँ पर पेड़ के नीचे चारों तरफ बने हुए चबूतरे के लिए वेदि शब्द का प्रयोग हुआ है।

ऋषि लोग ऊँचे चबूतरों पर बैठ कर शान्त भाव से योगाभ्यास किया करते हैं। उनके लगाए हुए वृद्ध भी ठीक वैसा ही कर रहे हैं। वृद्ध भी चबूतरों के बीच में लगे हुए हैं, बिल्कुल सीधे खड़े हैं तथा हवा के न चलने के कारण नितान्त निश्चल हैं। पूरे योगी प्रतीत होते हैं ॥ ५२ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—वीरासनैः ध्यानजुषाम् ऋषीणाम् समध्यासितवेदिमध्यैः अमीभिः शास्त्रिभिः अपि निवातनिष्कम्पतया योगाधिरूढैः इव विभायते। कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ५२ ॥

५३—सर्वदा हरितवर्णं धारण करने वाले वट वृद्ध का वर्णन—

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः श्याम इति प्रतीतः।

राशिमर्णीनामिव गारुडानाम् सपद्मरागः फलितो विभाति ॥ ५३ ॥

सञ्जी०—त्वयेति । त्वया यः पुरस्तात्पूर्वमुपयाचितः प्रार्थितः । तथा च

रामायणे—“न्यग्रोधं तमुपस्थाय वैदेही वाक्यमब्रवीत् । नमस्तेऽस्तु महावृद्ध पालयेन्मे व्रतं पतिः।” इति । श्याम इति प्रतीतः स वटोऽयं फलितः सन् । सपद्मरागो गारुडानां हरिन्मर्णीनां मरकतानां राशिरिव विभाति ।

अन्वय—त्वया पुरस्तात् यः उपयाचितः श्याम इति प्रतीतः सः वटः अयं फलितः (सन्) सपद्मरागः गारुडानां मर्णीनाम् राशिः इव विभाति ॥ ५३ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे प्रिये ! देखो, यह वही श्याम नामक वट वृद्ध है जिसकी कि पहिले तुमने प्रार्थना की थी। यह अब बड़ा होकर तथा फलों से लदा हुआ ऐसा लगता है मानो पद्मराग से मिश्रित मरकत मणिओं के समान हो।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

संस्कृतभावाय—श्री रामचन्द्रः सीता वटवृक्षम् दर्शयन् कथयति—आर्ये !

पश्य, सम्मुखं दृश्यमानः अयम् स एव श्यामनामकः वटवृक्षः अस्ति, यः पूर्वं त्वया प्रार्थ्यमानः आसीत् मम संसलकामनार्थम्, साम्प्रतं पूर्णवृद्धिं गतः फल-भारावनतश्च अयम् पद्मरागैः ग्रथितः मरकतमणिराशिरिव शोभते, दृष्टिम् आनन्दयति च ॥ ५३ ॥

व्याख्या—त्वया = सीतया । पुरस्तात् = पूर्वम् = पहिले । पूर्वस्मिन् काले इति पुरस्तात् । ‘दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः’ इस सूत्र से अस्ताति ‘अस्तात्’ प्रत्यय और ‘पूर्वाधरावराणामसि पुरध्वश्चैषाम्’ ‘अस्ताति च’ इन सूत्रों से पूर्व को पुर आदेश—इस प्रकार पुरस्तात् बनता है। यह एक अव्यय है । उपयाचितः—उप + √ याच् + क्त = उपयाचितः = प्रार्थितः । श्याम इति = श्याम इति नाम्ना । प्रतीतः = प्रथितः, प्रसिद्धो वा । प्रति + √ इ + क्त = प्रतीतः । फलितः—फलानि संजातानि अस्य सः फलितः = फल-युक्तः = फलों से युक्त । ‘तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्’ इस सूत्र से इतच् (इत) प्रत्यय । सपद्मरागः—पद्मरागैः सहितः सपद्मरागः = पद्मरागमिश्रितः = पुखराज से मिली हुई । गारुडानाम् मणीनाम् = मरकतमणीनाम् = मरकत-मणियों की । राशिः = पुञ्जः । विभाति = शोभते । वि + √ भा + ति ॥ ५३ ॥

टिप्पणी—पुरस्तादुपयाचितः—रामचन्द्र जी गंगा को पार कर भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुँचे । फिर उन्होंने यमुना पार की और चित्रकूट की ओर चले । यमुना के दक्षिणी तट पर ही यह वट वृक्ष है । जनश्रुति यह बतलाती है कि यह वृक्ष सर्वदा हरा रहता था (इसीलिए इसका नाम ही श्याम था) और अपने भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण कर सकता था । वन जाते हुए सीता जी इस वट वृक्ष के पास गई और कुशलपूर्वक वापिस लौट आने की प्रार्थना की । इस वट वृक्ष को अक्षयवट भी कहते हैं । इसके अवशिष्ट अंश प्राचीन किले में इलाहाबाद में अब भी देखने में आते हैं । अकबर के शासन-काल में किले के बनाते समय इस वृक्ष को काट दिया गया था ।

इस श्लोक में रामचन्द्र का अङ्कुर है—पके हुए लाल फलों से मिश्रित वट

वृत्त की प्रतिष्ठितियों पर प्रमाणों से मिश्रित मरकतमणियों की राशि के

समान दिखाई देती हैं ।

गारुडानाम् मणीनाम्—गरुड के समान गहरे नीले रंग के होने के कारण इस मणि को गारुड मणि कहते हैं । गरुड से सम्बद्ध होने के कारण साँप के विष को दूर करने में यह काम में लाई जाती है । इसको 'गरलारि' भी कहते हैं ॥ ५३ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—त्वम् पुरस्तात् यम् उपयाचितवती तेन श्याम इति प्रतीतेन वटेन अमुना फलितेन सपञ्चरागेण गारुडानां मणीनां राशिना इव विभायते । मूल वाक्य में कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है । त्वम्—उपयाचितवती में कर्मवाच्य से कर्तृवाच्य किया गया है ॥ ५३ ॥

५४—कहीं-कहीं पर मोती और इन्द्रनील मणियों से गुँथी हुई तथा कहीं-कहीं पर श्वेत कमलों और नीलकमलों से एक साथ गुँथी हुई माला के समान शोभायमान गंगा-यमुना-संगम का वर्णन—

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।

अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरैव ॥ ५४ ॥

(पश्यानवद्यांगि विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः)

सञ्जी०—“क्वचित्...” इत्यादिना चतुर्भिःश्लोकैः प्रयागे गङ्गायमुनासंगमं वर्णयति । हे अनवद्याङ्गि ! पश्य । यमुनातरङ्गैर्भिन्नप्रवाहा व्यामिश्रोषा गङ्गा जाह्नवी विभाति । केव; क्वचित्प्रदेशे प्रभया लिम्पन्ति संनिहितमिति प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैरनुविद्धा सहगुम्फिता मुक्तामयी यष्टिरिव हारावलि रिव । अन्यत्र प्रदेश इन्दीवरैर्नीलोत्पलैरुत्खचितान्तरा सह ग्रथिता सितपङ्कजानां पुण्डरीकाणां मालैव । विभातीति सर्वत्र सम्बन्धः ।

अन्य—(हे अनवद्याङ्गि ! पश्य, यमुना तरंगैःभिन्नप्रवाहा गंगा) क्वचित् प्रभालेपिभिः इन्द्रनीलैः अनुविद्धा मुक्तामयी यष्टिः इव (विभाति), अन्यत्र इन्दीवरैः उत्पलैरुत्खचितान्तरा सितपङ्कजानाम् माला इव (विभाति) ॥ ५४ ॥

के
के
ण
मी
वि
व
।

हिन्दी अनुवाद—श्री रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—अयि सुन्दर अंगों वाली सीते ! देखो, यमुना की तरंगों से मिश्रित प्रवाह वाली गंगा बड़ी शोभायमान हो रही है । कहीं-कहीं पर चमकती हुई इन्द्रनील मणियों के साथ गुँथी हुई मोतियों की माला की तरह यह शोभित हो रही है और कहीं कहीं पर तो बीच-बीच में नीलकमलों के साथ गुँथी हुई श्वेत कमलों की माला की तरह शोभित हो रही है ॥ ५४ ॥

संस्कृतभावार्थ—अयि कान्तकलेवरे सीते ! पश्य, सम्प्रति वयं प्रयागं समुपागताः । गङ्गायमुनयोः संगमः अतीव रमणीयः दृश्यते । यमुनातरंगैः मिश्रितः गङ्गायाः प्रवाहः बहूनि रमणीयानि दृश्यानि उपस्थापयति । कस्मिंश्चित्प्रदेशे तु कान्तिमद्भिः इन्द्रनीलमणिभिः सह गुम्फिता मौक्तिकमाला इव गङ्गा शोभते, क्वचित्तु नीलकमलैः सह प्रथिता श्वेतकमलमालेव गङ्गा अलौकिकी शोभां दधाति ॥ ५४ ॥

व्याख्या—क्वचित् = कस्मिंश्चित्स्थाने = कहीं-कहीं पर । ‘कस्मिन्’ से ‘किमोऽत्’ इस सूत्र द्वारा अत् (अ) प्रत्यय । ‘क्वाति’ इस सूत्र से क्व आदेश तथा अनिश्चितता का बोध कराने के लिए ‘चित्’ प्रत्यय का प्रयोग । प्रभालेपिभिः—प्रभया लिम्पन्ति संनिहितम् इति प्रभालेपिभिः, तैः प्रभालेपिभिः = कान्तियुक्तैः = चमक छोड़ने वाले (प्रभा + √ लिप् + णिन्) । इन्द्रनीलैः = इन्द्रनीलमणिभिः । अनुविद्धा—अनु + √ व्यध् + क टाप् = अनुविद्धा = सहगुम्फिता = साथ गुँथी हुई । मुक्तामयी—मुक्तानि सन्ति अस्यामिति मुक्तामयी = मुक्ताबहुला । मुक्ता शब्द से ‘तत्प्रकृतवचने मयर्’ इस सूत्र द्वारा मयर् प्रत्यय । यष्टिः = हारावलिः इव । इन्दीवरैः = नीलकमलैः । उत्खचितान्तरा—उत् + √ खच् + क = उत्खचित । उत्खचितम्—अन्तरं यस्याः सा उत्खचितान्तरा = सहप्रथिता = साथ गुँथी हुई । सितपंकजानाम्—पंकं जातानि पंकजानि । पंक + √ जन् + ड । ‘सप्तम्यां जनेर्ङः’ इस सूत्र से ङ प्रत्यय । सितानि च तानि पंकजानि सितपंकजानि तेषाम् सितपंकजानाम्—श्वेतकमलानाम् ।

टिप्पणी—गंगा का जल शुभ्र है और यमुना का नीला । प्रयाग में दोनों नदियों का संगम होता है और यह दृश्य बड़ा ही रमणीय लगता है । संगम की शोभा को हृदयंगम कराने के लिए कवि ने बड़ी सुन्दर-सुन्दर उपाय प्रयुक्त की हैं ।

५४, ५५, ५६, ५७ श्लोकों में कवि ने संगम का ही वर्णन किया है । चारों श्लोकों में एक ही मूल वाक्य है । 'पश्यानवद्यांगि विभाति गंगा यमुना-तरंगैः भिन्नप्रवाहा'—इस वाक्य का प्रत्येक श्लोक से सम्बन्ध है ॥ ५४ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—(हे अनवद्यांगि ! त्वया दृश्यताम् । यमुनातरंगैः भिन्नप्रवाहया गंगया) क्वचित् प्रभालेपिभिः अनुविद्धया मुकामय्या यस्या इव (विभायते), अन्यत्र इन्दीवरैः उत्खचितान्तरया सितपंकजानाम् मालया इव (विभायते) । कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ५४ ॥

५५—श्वेत हंसों तथा कृष्णहंसों की मिली जुली पंक्ति और श्वेतचन्दन तथा कृष्णचन्दन की मिश्रित शृंगार-रचना के समान गंगा का वर्णन—

क्वचित् खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः ।

अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥ ५५ ॥

सङ्गीत—क्वचित्कादम्बसंसर्गवती नीलहंससंसृष्टा प्रियं मानसं नाम सरो-
येषां तेषां खगानां राजहंसानां पंक्तिरिव । "राजहंसास्तु ते चञ्चुरणैर्लोहितैः
सिताः" इत्यमरः । अन्यत्र कालागुरुणा दत्तपत्रा रचितमकरिकापत्रा भुवश्चन्दन-
कल्पिता भक्तिरिव ।

अन्वय—(यमुनातरंगैः भिन्नप्रवाहा गंगा) क्वचित् कादम्बसंसर्गवती प्रियमानसानां खगानाम् पंक्तिः इव (विभाति), अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा चन्दनकल्पिता भुवः भक्तिः इव विभाति ॥ ५५ ॥

हिन्दी अनुवाद—यमुना की तरंगों से मिश्रित प्रवाह वाली गंगा कहीं-कहीं पर नीले हंसों से मिली हुई मानसरोवर के समान आकाशवाणी वाली राजहंसों की पंक्ति की तरह शोभायमान है और कहीं-कहीं पर तो पृथ्वी के मुखमंडल पर

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

काले अग्र के लेप से बनाई हुई पत्ररचना के साथ-साथ सफेद चन्दन की शृंगार-रचना के समान शोभित हो रही है ॥ ५५ ॥

संस्कृतभावार्थ—गंगायमुनयोः संगमस्य सौन्दर्यं प्रकारान्तरण वर्णयन् श्रीरामचन्द्रः कथयति—अयि सुन्दरि सीते ! पश्य, कियद् विलक्षणं सौन्दर्यं वर्ततेऽस्य संगमस्य । यमुनायाः कल्लोलैः व्यामिश्रसलिला गंगा क्वचित् कृष्ण-हंसैः संसृष्टा राजहंसपंक्तिः इव वैचित्र्यमादधाति, क्वचित्तु भगवत्याः भूदेव्याः सुखमण्डले कृष्णागुरुदत्तपत्ररचना श्वेतचन्दननिर्मिता शृंगाररचना इव शोभते ॥ ५५ ॥

व्याख्या—क्वचित् = कस्मिंश्चित्स्थाने । कादम्बसंसर्गवती—सम् + √ सृज् + वञ् = संसर्ग । कादम्बानाम् संसर्गः = कादम्बसंसर्गः, सः अस्ति यस्याः इति कादम्बसंसर्गवती = नीलहंससंसृष्टा = नीले हंसों से मिली हुई । कादम्ब-संसर्ग + मतुप् + ङीप् स्त्रियाम् । काले पंखों वाले हंस कादम्ब कहलाते हैं । 'कादम्बास्तु कलहंसाः पक्षैः स्फुरन्ति धूसरैः' इति अभिधानकोषः । प्रियमान-सानाम्—प्रियम् मानसम् येषां ते = प्रियमानसाः, तेषाम् प्रियमानसानाम् = अभिलषितमानसरोवराणाम् = मानस सरोवर से प्रेम रखने वाले । खगानाम्—खे गच्छन्ति इति खगाः, तेषां खगानाम् = पक्षिणाम् । खम् = आकाशम् । ख + गम् + ड = खग । कालागुरुदत्तपत्रा—कालम् च तत् अगुरु = कालागुरु । दत्तानि पत्राणि यस्याः सा दत्तपत्रा । कालागुरुणा दत्तपत्रा = कालागुरुदत्तपत्रा = कृष्णागुरुदत्तपत्रावलिः = काले अग्र के द्वारा की गई है पत्र-रचना जिसमें । भुवः = भूदेव्याः । पृथ्वी का यहाँ मानवीकरण किया गया है । चन्दनकल्पिता—क्लप् + णिच् + क्त = कल्पित । चन्दनेन कल्पिता = चन्दन-कल्पिता = श्वेतचन्दनरचिता = श्वेत चन्दन से बनाई हुई । भक्तिः = शृंगार रचना । इव—विभाति ॥ ५५ ॥

टिप्पणी—हंस कई प्रकार के होते हैं । कुछ सफेद होते हैं और कुछ काले या नीले । श्वेत हंस जो कि निर्मल जल के बड़े प्रेमी होते हैं, वर्षा ऋतु में मानसरोवर चले जाते हैं । ऐसी कविपरम्परा है—'जलधरसमये मानसं यान्ति हंसाः' । काले पंखों वाले हंसों को कादम्ब कहते हैं ।

प्राचीन समय में पुरुष तथा विशेष रूप से स्त्रियाँ अपने अंग पर सफेद चन्दन के लेप से अनेक प्रकार की सजावट करती थीं। विभिन्न प्रकार की कलात्मक रचनाएँ इस सजावट में होती थीं। कवि का आशय यह है कि यदि पृथ्वी के मुखमण्डल पर श्वेतचन्दन से शृंगार-रचना की जाए और बीच-बीच में काले अंगर के लेप से पत्र-रचना की जाए तो ऐसी ही शोभा हो जैसी कि यमुना और गंगा के संगम की हो रही है ॥ ५५ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—क्वचित् कादम्बसंसर्गवत्या प्रियमानसानां खगानाम् पंक्या इव (विभायते); अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रया भुवः चन्दनकल्पितया भक्त्या इव (विभायते) । कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ५५ ॥

५६—अन्धकार से मिश्रित चाँदनी अथवा कहीं-कहीं पर दीखने वाले आकाश से युक्त शरत्कालीन बादलों के समान गंगा-यमुना के संगम की शोभा—

क्वचित् प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।

अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा ॥ ५६ ॥

सङ्गी०—क्वचिच्छायासु विलीनैः स्थितैस्तमोभिः शबलीकृता चान्द्रमसी प्रभा चन्द्रिकेव । अन्यत्र रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा शुभ्रा शरदभ्रलेखा शरन्मेषपंक्तिरिव ।

अन्वय—क्वचित् छायाविलीनैः तमोभिः शबलीकृता चान्द्रमसी प्रभा इव, अन्यत्र रन्ध्रेषु आलक्ष्यनभः प्रदेशा शुभ्रा शरदभ्रलेखा इव (गंगा विभाति) ॥ ५६ ॥

हिन्दी अनुवाद—श्री रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे प्रिये ! देखो, यमुना की तरंगों से मिश्रित गंगा कहीं-कहीं पर वृक्षों के नीचे छाया में स्थित अन्धकार के द्वारा शबलित चाँदनी के समान शोभित हो रही है और कहीं-कहीं पर शरद् ऋतु की उस स्वच्छ मेघपंक्ति के समान शोभायमान है, जिसमें कि बीच-बीच में कुछ आकाश दिखाई दे रहा है ॥ ५६ ॥

धन,
तत्र क
गंगाया

प्रभा

संस्कृतभाषाया—श्रीरामचन्द्रः गङ्गायमुनयोः संगमस्य शोभा निरूपयन्

सीतादेवीं प्रति कथयति—अयि प्रिये, दृश्यतामेष संगमः, यमुनातरंगैः मिश्रिता गङ्गा क्वचित् प्रदेशे वृक्षाणामधः वर्तमानैः अन्धकारैः कर्चुरीकृता ज्योत्स्ना इव शोभते, क्वचित्तु एतादृशी शरत्कालीना धवला मेघपङ्क्तिरिव यस्याः अन्तरालेषु यत्र तत्र नीलं गगनम् दृश्येत, शोभते ॥ ५६ ॥

व्याख्या—छायाविलीनैः—वि + ली + क्त = विलीन । छायासु विलीनानि तैः छायाविलीनैः = छायाश्रितैः = छाया में स्थित । तमोभिः = अन्धकारैः । शबलीकृता—अशबला शबला कृता इति शबलीकृता = कर्चुरीकृता = चितकवरी बनाई हुई । शबल + च्वि + क्त + क्त = शबलीकृत । चान्द्रमसी—चन्द्रमसः इयम् = चान्द्रमसी प्रभा = चन्द्रिका । रन्ध्रेषु—छिद्रेषु । आलक्ष्यनभःप्रदेशा—ईषत् लक्ष्याः = आलक्ष्याः । आ + लक्ष् + ण्यत् = आलक्ष्य । नभसः प्रदेशाः = नभःप्रदेशाः । आलक्ष्याः नभःप्रदेशाः यस्याम् सा आलक्ष्यनभः-प्रदेशा = ईषद्दृश्यगगनविभागा = आकाश के भाग जिसमें कुछ दिखाई देते हों । शुभ्रा = निर्मला । शरदभ्रलेखा—शरदः अभ्रं शरदभ्रम् तस्य लेखा शरदभ्रलेखा = शरन्मेघमाला । इव शोभते ॥ ५६ ॥

टिप्पणी—चाँदनी रातों में वृद्धों के नीचे की भूमि शुभ्र ज्योत्स्ना से धवलित हो जाती है और यह ज्योत्स्ना वृद्धों के नीचे विद्यमान छाया से यत्र तत्र कर्चुरित सी पाई जाती है । छाया और प्रकाश के इस प्रकार के मिश्रण से गङ्गायमुना के संगम का विशद चित्र नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता है ।

शरद् ऋतु में बादल जल से रहित हो जाते हैं और रजत के समान शुभ्रता धारण कर लेते हैं । आकाश का स्वाभाविक रंग सर्वदा नीला ही रहता है । जब आकाश बादलों के टुकड़ों से ढक जाता है, तब इन टुकड़ों में से नीला आकाश भी दिखाई देता रहता है और इस प्रकार श्वेत और कृष्ण का मिश्रण उपस्थित हो जाता है । इसीलिए गङ्गायमुना के संगम से इसकी तुलना की गई है ॥ ५६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—क्वचित् छायाविलीनैः तमोभिः शबलीकृता चान्द्रमस्या

प्रभया इव, अन्यत्र रन्ध्रेषु आलक्ष्य नभःप्रदेशया शुभ्रया । शरदभ्रलेखया इ
विभायते । कर्तृवाच्य से 'भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ५६ ॥

५७—भस्म से विभूषित महादेव जी के शरीर के समान संगम की शोभा
का वर्णन—

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।

पश्यानवद्यांगि विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ॥ ५७ ॥

संज्ञी०—क्वचित्कृष्णोरगभूषणा भस्माङ्गरागेश्वरस्य तनुरिव विभाति
शेषो व्याख्यातः । कलापकम् ।

अन्वय—हे अनवद्यांगि ! पश्य, यमुनातरंगैः भिन्नप्रवाहा गंगा क्वचित्
च कृष्णोरगभूषणा भस्माङ्गरागा ईश्वरस्य तनुः इव विभाति ॥ ५७ ॥

हिन्दी अनुवाद—अयि सुन्दर अंगों वाली सीते ! देखो, यमुना की
तरंगों से मिश्रित प्रवाह वाली गंगा काले सर्पों से विभूषित तथा श्वेत भस्म के
अंगराग से युक्त महादेव जी की देह के समान शोभित हो रही है ॥ ५७ ॥

संस्कृतभावार्थ—गंगायमुनयोः संगमस्य शोभां निरूपयन् श्रीरामचन्द्रः
कथयति—हे प्रिये, पश्य तावत् संगमस्य शोभनम् दृश्यम् । यमुनातरंगैः
मिश्रिता गंगा कस्मिंश्चित् प्रदेशे तु कृष्णसर्पैः अलंकृता श्वेतभस्मनः अंगरागेण
च विभूषिता भगवतः शंकरस्य तनुः इव शोभां दधाति ॥ ५७ ॥

व्याख्या—न अवद्यानि अनवद्यानि । अनवद्यानि अंगानि यस्याः सा अनव-
द्यांगी, तत्संबुद्धौ हे अनवद्याङ्गि = सुन्दरांगि = सुन्दर अंगों वाली । यमुना-
तरंगैः—यमुनायाः तरङ्गाः यमुनातरंगाः, तैः यमुनातरंगैः = यमुनावीचिभिः =
यमुना की लहरों से । भिन्नप्रवाहा = $\sqrt{\text{भिद्}} + \text{क्त} = \text{भिन्न}$ । प्र + $\sqrt{\text{वह्}} +$
घञ् = प्रवाहः । भिन्नः प्रवाहः यस्याः सा भिन्नप्रवाहा = व्यामिश्रनीरा = मिश्रित
जल वाली । कृष्णोरगभूषणा—उरसा गच्छन्ति इति उरगाः (उरस् + गम् +
ङ) । भूष्यते एभिः इति भूषणानि ($\sqrt{\text{भूष}} + \text{ल्युट्}$) कृष्णाश्च ते उरगाश्च
कृष्णोरगाः, ते एव भूषणानि यस्याः सा कृष्णारगभूषणा = कृष्णसर्पविभूषिता =

काले सपों से विभूषित । भस्माङ्गरागा—अंगस्य रागः अंगरागः, भस्मनः अंगरागः यस्याः सा भस्माङ्गरागा = भूतिभूषणा = भस्म लगी हुई । ईश्वरस्य = शिवस्य । तनुः = शरीरम् । इव विभाति ॥ ५७ ॥

टिप्पणी—५४, ५५, ५६ और ५७ वें श्लोकों में गंगा-यमुना के संगम की शोभा वर्णित की गई है । चार श्लोकों के समूह को, जिसमें एक ही क्रिया हो, कलापक कहते हैं । 'द्वान्यां तु युग्मकं प्रोक्तम् त्रिभिः प्रोक्तम् विशेषकम् । कलापकं चतुर्भिः स्यात्तदूर्ध्वं कुलकम् मतम्' ॥ ५७ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—क्वचित् च कृष्णोरगभूषणया भस्माङ्गरागया ईश्वरस्य तन्वा इव यमुनातरङ्गैः भिन्नप्रवाहया गङ्गाया विभायते । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ५७ ॥

५८—संगम-स्नान से मोक्षप्राप्ति का वर्णन—

समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।

तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ॥ ५८ ॥

सङ्गी०—समुद्रेति । अत्र समुद्रपत्न्योर्गङ्गायमुनयोर्जलसंनिपाते संगमेऽभिषेकात्स्नानात्पूतात्मनां तनुत्यजां शुद्धात्मनां पुंसां तत्त्वावबोधेन तत्त्वज्ञानेन विनापि प्रारब्धशरीरत्यागानन्तरं भूयः पुनः शरीरबन्धः शरीरयोगो नास्ति किल । अन्यत्र ज्ञानादेव मुक्तिः । अत्र तु स्नानादेव मुक्तिरित्यर्थः ।

अन्वय—समुद्रपत्न्योः जलसन्निपाते अत्र अभिषेकात् पूतात्मनाम् तनुत्यजाम् तत्त्वावबोधेन विनापि भूयः शरीरबन्धः न अस्ति किल ॥ ५८ ॥

हिन्दी अनुवाद—समुद्र की पत्नियों अर्थात् गंगा और यमुना के इस संगम में स्नान करने से पवित्र हुई आत्मा वाले मनुष्यों को तत्त्वज्ञान के बिना भी शरीर छोड़ने के बाद मोक्ष हो जाती है । उन्हें आवागमन के चक्र में फिर नहीं पड़ना पड़ता है ॥ ५८ ॥

संस्कृतभावार्थ—गङ्गायमुनयोः संगमस्य माहात्म्यं वर्णयन् श्रीरामचन्द्रः

सीतादेवीं प्रति कथयति—गङ्गायमुनयोः संगमेऽस्मिन् स्नानात् सपदि एव आत्मा

शुद्धः संजायते, तत्त्वज्ञानम् विनाऽपि शरीरत्यागानन्तरम् पुनर्जन्म न भवति मोक्षश्च संजायते । अलौकिक एव अस्य तीर्थराजस्य महिमा वर्तते ॥ ५८ ॥

व्याख्या—समुद्रपत्न्योः—समुद्रस्य पत्न्यौ = समुद्रपत्न्यौ तयोः समुद्रपत्न्यो सागरस्त्रियोः अर्थात् गङ्गायमुनयोः । जलसंनिपाते—सम् + नि + पत् + घञ् = संनिपातः । जलानाम् संनिपातः जलसंनिपातः, तस्मिन् जलसन्निपाते = जलसंगमे । अभिषेकात्—अभि + √ सिच् + घञ् = अभिषेकात् = स्नानात् पूतात्मनाम्—पूताः आत्मानः एषाम् ते पूतात्मानः, तेषाम् = पूतात्मनाम् = शुद्धात्मनाम् । तनुत्यजाम्—तनुं त्यजन्ति इति तनुत्यजः, तेषाम् । तनुत्यजाम् = शरीरत्यागिनाम् । तनु + √ त्यज् + क्विप् । तत्त्वावबोधेन—अव + √ बुध् + घञ् = अवबोधः । तत्त्वस्य अवबोधः = तत्त्वावबोधः, तेन तत्त्वावबोधेन = तत्त्वज्ञानेन । भूयः = पुनः । बहु + ईयस् = भूयः । शरीरबन्धः—शरीरस्य बन्धः = शरीरबन्धः = देहधारणम् । न अस्ति = न भवति । किल = निश्चयेन ॥ ५८ ॥

टिप्पणी—तत्त्वावबोधेन विनाऽपि—भारतीय दर्शन की सभी शाखाएँ मोक्ष अथवा अपवर्ग को अपना लक्ष्य बना कर चली हैं । मीमांसा दर्शन कर्म को मोक्ष का साधन मानता है । दूसरे दर्शन ज्ञान को मोक्ष का साधन समझते हैं । एक महान् वेदान्ती होने के नाते कालिदास को भी ज्ञान ही को मुक्ति का परम साधन मानना चाहिए । लेकिन संगम की ऐसी विशिष्टता है कि कवि को यह कहना पड़ा है कि केवल स्नान से ही मुक्ति हो जाती है ।

ज्ञानवादी इस कथन को केवल प्रौढ़वाद मानते हैं । वस्तुतः ज्ञान के बिना मोक्ष हो ही नहीं सकता । उनका कथन है कि संगम स्नान पहिले ज्ञान उत्पन्न करता है और तब उससे मुक्ति होती है ।

वाच्यपरिवर्तनम्—अत्र समुद्रपत्न्योः जलसंनिपाते अभिषेकात् पूतात्मनाम् तनुत्यजाम् तत्त्वावबोधेन विनाऽपि शरीरबन्धेन न भूयते किल । कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ५८ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri
५६—निषादराज के नगर का वर्णन—

पुरं निषादाधिपतेरिदं तद् यस्मिन् मया मौलिमणिं विहाय ।
जटासु बद्धास्वरुदत् सुमन्त्रः कैकेयि ! कामाः फलितास्तवेति ॥ ५६ ॥

सञ्जीव—पुरमिति । निषादाधिपतेर्गुहस्य तत्पुरमिदम् । यस्मिन्पुरे मया मौलिमणिं विहाय जटासु बद्धासु रचितानु सुमन्त्रो 'हे कैकेयि ! तव कामाः मनोरथाः फलिताः सफला जाताः' इत्यरुदत् । "रुदिरश्रुविमोचने" इति धातोर्लुङ् ।

अन्वय—निषादाधिपतेः तत् पुरम् इदम् (अस्ति) यस्मिन् मया मौलि-
मणिं विहाय जटासु बद्धासु सुमन्त्रः 'हे कैकेयि ! तव कामाः फलिताः' इति
अरुदत् ॥ ५६ ॥

हिन्दी अनुवाद—यह वही निषादराज का नगर है जहाँ मेरे चूड़ामणि
को उतार कर जटाओं के बाँधने पर सुमन्त्र यह कहकर रो उठे थे कि 'हे
कैकेयि ! तरे सारे मनोरथ पूरे हो गये' ॥ ५६ ॥

संस्कृतभाषार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतादेवीं प्रति निवेदयति—हे प्रिये !
सम्प्रति वयं शृगवेराभिधानं निषादराजनगरं समुपागताः । इदम् तदेव नगरं
यत्र मया चूड़ामणिं त्यक्त्वा यदा जटा बद्धाः, तदा सुमन्त्रः हे कैकेयि ! सम्प्रतम्
तव सर्वाः दुरभिलाषाः सफलीभूताः इति जल्पन् दुःखाभिभूतः सन् उन्वैः
रुदत् ॥ ५६ ॥

व्याख्या—निषादाधिपतेः—निषादानाम् अधिपतिः = निषादाधिपतिः,
तस्य निषादाधिपतेः = निषादराजस्य । पुरम् = नगरम् । मौलिमणिम्—
मौलिस्थो मणिः = मौलिमणिः, तम् मौलिमणिम् = चूड़ामणिम् = राजमुकुटम् ।
विहाय—वि + √ हा + ल्यप् = विहाय = त्यक्त्वा । बद्धासु—/बन्ध् + क्त =
बद्धा, तामु बद्धासु = रचितानु । कैकेयि—केकयस्य अपत्यं स्त्री इति कैकेयी
(केकय + अण् + डीप् स्त्रियाम्) तत्सम्बुद्धौ हे कैकेयि = केकयरामपुत्रि !
कामाः—कम् + घञ् = मनोरथाः । फलिताः—फल + इतच् = फलिताः सफलाः

संजाताः । अरुदन्— $\sqrt{\text{रुद}} + \text{लुङ्} = \text{अरुदत्} = \text{रोदनं}$ चकार । $\sqrt{\text{रुद}}$ अश्रुविमोचने यह अदादिगण की है ॥ ५६ ॥

टिप्पणी—निषादाधिपतेः—निषाद जाति भारतवर्ष की एक आदिवासी जाति थी जो कि मुख्य रूप से शिकार या मत्स्य व्यापार से जीवन चलाती थी । आर्य विजेताओं द्वारा यह पहाड़ों की ओर भगा दी गई थी । इस जाति के तत्कालीन राजा का नाम गुह था और शृंगवेरपुर नगर इसकी राजधानी थी । इलाहाबाद से उत्तर में गंगा के तट पर यह नगर स्थित रहा होगा । निषादराज ने ही रामचन्द्र जी को गंगा के उस पार उतारा था ।

सुमन्त्र—राजा दशरथ का मन्त्री तथा सारथि । प्राचीन काल में सारथि का कार्य बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण था । इसीलिए बड़ा आदरणीय भी था ।

कैकेयी—यह भरत की माँ थी । राजा दशरथ इन्द्र के साथ जब राक्षसों से युद्ध करने गये तब उनके रथ का पहिया निकलने वाला ही था । लेकिन कैकेयी की सहायता से पहिया न गिरा । उसने अपनी उँगली पहिए के धुरे के छेद में फँसा दी थी । समय पर सहायता करने के बदले में उसे दो वर प्राप्त हुए थे—(१) राम को वनवास और (२) भरत को राज्याभिषेक । 'कामाः फलितास्तवेति' में इसी का उल्लेख है ॥ ५६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—निषादाधिपतेः तेन पुरेण अनेन (भूयते) यस्मिन् मया मौलिमणिं विहाय जटासु बद्धासु सुमन्त्रेण 'हे कैकेयि ! तव कामैः फलितैः' इति अरोदि । कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ५६ ॥

६०—मानसरोवर से निकलने वाली सरयू नदी का वर्णन—

पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानाम् निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः ।

ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ॥ ६० ॥

सङ्गी०—पयोधरैरिति । पुण्यजनाङ्गनानां यन्त्रास्त्रीणां पयोधरैः स्तनैर्निर्विष्टः अपभुक्तो हेमाम्बुजरेणुर्गोचरस्तत् । तत्र ताः क्रीडन्तीति व्यज्यते । ब्रह्मणः इदं ब्राह्मम् ।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

‘नस्तद्धिते’ इति टिलोपः । ब्राह्मं सरो मानसाख्यं यस्याः सरयुः । बुद्धेर्महत्तत्त्व-
स्याव्यक्तं प्रधानमिव कारणमातस्य वाचो वेदाः । यद्वा बहुव्रीहिणा मुनयः
उदाहरन्त्याचक्षते ।

अन्वय—पुण्यजनांगनानां पयोधरैः निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु ब्राह्मं सरः
यस्याः बुद्धेः अव्यक्तम् इव कारणम् आतवाचः उदाहरन्ति ॥ ६० ॥

हिन्दी अनुवाद—सरयू नदी का वर्णन करते हुए श्री रामचन्द्र जी कहते
हैं—यक्षस्त्रियों के पयोधरों से जिसके सुवर्ण-कमलों का पराग उपभुक्त किया
जाता है, उस मानसरोवर को ही मुनि लोग इस सरयू का उसी प्रकार उद्गम
स्थान बताते हैं जिस प्रकार अव्यक्त को बुद्धि तत्त्व का कारण बताया जाता
है ॥ ६० ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतादेवीं प्रति निवेदयति—हे प्रिये !
पुरस्तात् पुण्यसलिला भगवती सरयूः दृश्यते । यस्मिन् मानसरोवरे यक्षरमण्यः
सुवर्णकमलानाम् परागैः स्वस्तनान् विभूषयन्ति अर्थात् यक्षरमण्यः यस्मिन् जल-
क्रीडां कुर्वन्ति तत् मानसरोवरमेव अस्याः उद्गमस्थानम् सत्यवादिभिः त्रिका-
लज्ञैः मुनिभिः कथ्यते । यथा बुद्धिनामकस्य महत्तत्त्वस्य अव्यक्ता मूलप्रकृतिः
कारणम् कथ्यते मुनिभिः, तथैवा स्याः नद्याः अपि आतवाक्येनैव विश्वसनीयम्
उद्गमस्थानम् । दुर्गमत्वात् न कोऽपि साक्षाद्द्रष्टुम् समर्थः । आतवाक्ये विश्वा-
समाधायैव ‘सरयूः मानसरोवरात्प्रभवति’ इति मन्यते ॥ ६० ॥

व्याख्या—पुण्यजनाङ्गनानाम्—पुण्याश्च ते जनाः पुण्यजनाः, तेषाम्
अंगनाः, पुण्यजनाङ्गनाः, तासाम् पुण्यजनाङ्गनानाम् = यक्षस्त्रीणाम् = यक्ष-
स्त्रियों के । पयोधरैः—धरन्ति इति धराः (धृ + अच्) । पयसां धराः पयो-
धराः, तैः = पयोधरैः = स्तनैः । निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु—निश् + √विश् +
क्त = निर्विष्ट । अम्बुनि जातानि इति अम्बुजानि—(अम्बु + जन् + ड्) ।
हेम्नः अम्बुजानि हेमाम्बुजानि । हेमाम्बुजानां रेणवः = हेमाम्बुजरेणवः ।
निर्विष्टाः हेमाम्बुजरेणवः यस्य तत् = निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु = उपभुक्तकनक-
कमलपरागम् ; उपभुक्तप्रकृत्या वात शास्त्रि Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

ब्राह्मम्—ब्रह्मणः इदम् = ब्राह्मम् (ब्रह्मन् + अण्) । 'नस्तद्धिते' इस सूत्र से ब्रह्म का लोप । ब्राह्मम् सरः = मानसाख्यम् सरः । बुद्धेः—बुद्ध + क्तिन् + बुद्धिः = महत्तत्त्वस्य । अव्यक्तम्—वि + √ अञ्ज् + क्त = व्यक्तम् । न व्यक्तम् = अव्यक्तम् = मूलप्रकृतिम् । कारणम् = उपादानकारणम् । आप्तवाचः—आप्ता वाच्येषां ते आप्तवाचः = नित्यसत्यवादिनः सुनयः । यद्वा आप्तस्य वाचः वेदाः । उदाहरन्ति—उत् + आ + √ ह् + अन्ति = कथयन्ति ॥ ६० ॥

टिप्पणी—ब्राह्मम् सरः—कुछ लोग मानसरोवर को ब्राह्म सरोवर कहते हैं तथा ब्रह्मा के कमण्डलु के जल से ही इसकी उत्पत्ति मानते हैं ।

सांख्य दर्शन के अनुसार तीनों गुणों—सत्त्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था ही प्रकृति या अव्यक्त कहलाती है । जब कोई एक गुण बढ़ जाता है तभी दृश्य जगत् की सृष्टि का प्रारम्भ हो जाता है । गुणों की विभिन्न प्रकार से वृद्धि ही असंख्य दृश्यों को जन्म देती है । सृष्टि में सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली वस्तु बुद्धितत्त्व है । ऋषियों का कहना है कि बुद्धितत्त्व अव्यक्त से उत्पन्न होता है । जिस प्रकार बुद्धितत्त्व का उद्गमस्थान अव्यक्त प्रकृति है, उसी प्रकार सरयू नदी का उद्गमस्थान अव्यक्त मानसरोवर ही है ।

वाच्यपरिवर्तनम्—पुण्यजनांगनानाम् पयोधरैः निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु ब्राह्मणः यस्याः बुद्धेः अव्यक्तमिव कारणम् आप्तवाग्भिः उदाह्रियते । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ६० ॥

६१—सरयू नदी के अयोध्या के निकट से बहने का वर्णन—

जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम् ।

तुरंगमेधावभृथावतीर्णैरिद्धाकुभिः पुण्यतरीकृतानि ॥ ६१ ॥

सङ्गी०—जलानीति । यूपः संस्कृतः पशुबन्धनाहों दाकविशेषः । तीरनिखातयूपा या सरयूस्तुरंगमेधा अश्वमेधास्तेष्ववभृथार्थमेवावतीर्णैरवस्तुदैरिद्धाकुभिरिद्धाकुगोत्रापत्यैर्नः पूर्वैः । तद्राजत्वादणो लुक् । पुण्यतरीकृतान्यतिशयेन पुण्यकृतानि जलान्ययोध्यां राजधानीं नगरीम् अनु समीपे । तथा लुङ्गितयेत्यर्थः अनुशब्दस्य “लङ्गित्यंभूत...” इत्यादिना कर्मप्रवचनीयत्वात्तथागे द्वितीया । वहति प्रापयति ।



Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

अन्वय—तीरनिखातयूपा या तुरंगमेधावभृथावतीर्णः इन्द्राकुभिः पुण्यतराणि-
कृतानि जलानि अयोध्याम् राजधानीम् अनु वहति ॥ ६१ ॥

हिन्दी अनुवाद—यह सरयू नदी जिसके कि तट पर यज्ञ-पशुओं के बाँधने के लिए खँटे गाड़े हुए हैं, अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर स्नान के लिए उतरे हुए इन्द्राकुवंशी हमारे पूर्वजों के द्वारा पवित्र किए हुए जलों को अयोध्या राजधानी के पास से प्रवाहित करती है ॥ ६१ ॥

संस्कृतभावार्थ—सरयूनद्याः वर्णनम् कुर्वन् श्रीरामचन्द्रः कथयति—हे वैदेहि ! पश्य तावत् अयोध्यायाः निकटे प्रवहन्तीं सरयूम् नदीम् । अस्याः तीरे यज्ञरगुवन्धनार्थम् यूपाः निखाताः विद्यन्ते । अश्वमेधयज्ञावसरे स्नानार्थं नदी-भवगाहमानैः अस्माकम् पूर्वजैः इन्द्राकुवंशैः राजभिः अत्यन्तम् पवित्रीकृतानि जलानि इयम् अयोध्याराजधानी समीपे प्रवाहयति ॥ ६१ ॥

व्याख्या—तीरनिखातयूपा—नि + √ खन् + क्त = निखात । तीरे निखाताः तीरनिखाताः । तीरनिखाताः यूपाः यस्याम् इति तीरनिखातयूपाः = तीरस्थिरीकृत-वन्धनदारविशेषा = तीर पर गाड़े गए हैं खँटे जिसके । पशुओं के बाँधने के लिए तैयार की गई लकड़ी को यूप (खँटा) कहते हैं । तुरंगमेधावभृथावतीर्णः—अव + √ त् + क्त = अवतीर्णः । तुरं गच्छति इति तुरंगः—तुर + √ गम् + खच् । अबभृथ = यज्ञान्त स्नान । तुरंगमेधेषु अवभृथार्थम् अवतीर्णाः = तुरंग-मेधावभृथावतीर्णाः, तैः तुरंगमेधावभृथावतीर्णैः = अश्वमेधस्नानावरूढैः = अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर स्नान करने के लिए उतरे हुए । इन्द्राकुभिः = इन्द्राकुवंशीयाः राजानः इन्द्राकुवः (इन्द्राकु + अच्) तैः इन्द्राकुभिः = इन्द्राकु-वंशोद्भवैः । पुण्यतराणि—अतिशयेन पुण्यानि इति पुण्यतराणि (पुण्य + त-रप्) अपुण्यतराणि पुण्यतराणि कृतानि इति पुण्यतरीकृतानि = पवित्रतरीकृतानि = अत्यन्त पवित्र बनाए हुए । अयोध्याम् राजधानीम् अनु—‘लक्षणेत्थंभूता-ख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्य्य नवः’ इस सूत्र से अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो जाने पर उसके योग में फिर ‘कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया’ इस सूत्र से ‘राजधानीम्’ में द्वितीया हो गई है । लक्षणेत्थंभूत—इत्यादि सूत्र का अर्थ

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

यह है कि प्रति, पौर और अनु कर्मप्रवचनाय कहलाते हैं जब कि वे लक्षण 'सूचक' से संबद्ध हो, किसी की दशा का वर्णन करते हों, किसी के भाग का ज्ञान कराते हों अथवा वीप्सा का बोध कराते हों। यहाँ पर अयोध्या राजधानी एक सूचक शब्द है, क्योंकि यह सरयू के प्रवाह का मार्ग बताता है। राजधानीम्—धीयन्ते अस्याम् इति धानी (✓धा+ल्युट् स्त्रियाम्) राजान् धानी=राजधानी। वहति=प्रापयति। ✓वह्+लट्। यहाँ पर ✓वह् धातु सर्कर्मक धातु के रूप में प्रयुक्त हुई है। 'जलानि' इसका कर्म है ॥ ६१ ॥

टिप्पणी—तुरंगमेध—राजाओं के द्वारा किया जाने वाला अश्व-यज्ञ। वैदिक काल में सन्तानार्थी लोग यह यज्ञ किया करते थे। बाद में जो लोग चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में अपने को स्थापित करना चाहते थे, यह यज्ञ करने लगे। किसी रत्न की देखरेख में वर्षभर तक स्वच्छन्द घूमने के लिए एक अश्व छोड़ दिया जाता था। जब यह घोड़ा किसी दूसरे राजा के राज्य में चला जाता था, वह राजा या तो इस घोड़े को बाँध लेता था और लड़ने के लिए प्रस्तुत हो जाता था अथवा घोड़े के स्वामी को अपना शासक मान लेता था। वर्ष के अन्त में घोड़े के पूर्णतया सफल वापिस आ जाने पर एक यज्ञ किया जाता था। प्रायः ऐसा विश्वास था कि १०० अश्वमेध यज्ञों के पूर्ण करने वाले व्यक्ति को इन्द्र का पद मिल जाता है।

पुण्यतरीकृतानि—सरयू नदी का जल स्वभावतः पवित्र है। अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर स्नान करने के लिए जब इक्ष्वाकुवंशी राजा नदी में उतरते थे, तो यह जल और भी पवित्र हो जाता था। प्रायः इक्ष्वाकुवंश के प्रत्येक राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया था ॥ ६१ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—तीरनिखातयूपया यया तुरंगमेधावभृथावतीर्णैः इक्ष्वाकुभिः पवित्रतरीकृतानि जलानि अयोध्यां राजधानीम् अनु उह्यते। कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ६१ ॥

६२—अयोध्या के राजाओं की माता के रूप में सरयू नदी का वर्णन—
यां सैकतोत्सङ्गमुखोचितानाम् प्राज्यैः पयोभिः परिवर्द्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिव मानस मे सम्भावयत्युत्तरकोशलानाम् ॥ ६२ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

सञ्जी०—यामिति । या सरयू मे मानसम् । पुष्टानामुत्तरकोशलानामुत्तरकोशल-
तत्र यत्सुखं तत्रोचितानां प्राज्यैः प्रभूतैः पयोभिः अम्बुभिः क्षीरैश्च । “पयः क्षीरे
पयोऽम्बु च” इत्यमरः । परिवर्धितानाम् पुष्टानामुत्तरकोशलानामुत्तरकोशले-
श्वराणां सामान्यधात्रीं साधारणमातरमिव संभावयति । “धात्री जनन्यामलकी
वसुमत्युपमातृषु” इति विश्वः ।

अन्वय—याम् मे मानसम् सैकतोत्संगसुखोचितानाम् प्राज्यैः पयोभिः
परिवर्धितानाम् उत्तरकोशलानाम् सामान्यधात्रीम् इव सम्भावयति ॥ ६२ ॥

हिन्दी अनुवाद—श्री रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—इस सरयू नदी
को मेरा मन उत्तर कोशल देश के उन निवासियों की जो कि इसकी बालुका-
मय गोद के आनन्द को उठाते रहे हैं तथा जो इसके प्रभूत जल रूपी दूध से
परिपुष्ट हुए हैं, सामान्य माता के समान आदर की भावना से देखता
है ॥ ६२ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतादेवीं प्रति निवेदयति—आर्ये ! एषा
सरयूः नदी अस्माकम् वन्दनीया । उत्तरकोशलप्रदेशस्य नृपाः अस्याः
सिकतामये उत्संगे सततम् मातृप्रेमानन्दम् अन्वभवन्, अस्याः जलानि च
दुग्धमिव उपभुज्य स्वशरीरम् परिवर्धयामाचक्रुः । मम मानसम् मातरमिव असुम्
संभावयति । इयमस्माकमुपमातेव वर्तते ॥ ६२ ॥

व्याख्या—मानसम् = मनः । ‘स्वान्तं हृन्मानसं मनः’ इति अमरः ।
सैकतोत्संगसुखोचितानाम्—उद् + √ सञ्ज् + घञ् = उत्संगः । सिकताः संति
अस्मिन् इति सैक्तः (सिकता + अण्) । सैक्तश्चासौ उत्संगः = सैकतोत्संगः,
तस्मिन् यत् सुखम् सैकतोत्संगसुखम्—तत्र उचितानाम् = सैकतोत्संगसुखोचिता-
नाम् = पुलिनक्रोडसुखाम्यस्तानाम्—नदी के तट रूपी गोद के आनन्द के
अभ्यस्त । √ उच् (दिवादिगणी) से क्त प्रत्यय । इकट्ठा करना, आनन्द लेना
और अभ्यस्त होना इसके अर्थ हैं । प्राज्यैः—प्रभूतैः । पयोभिः = जलैः
(नदीपद्मे), दुग्धैः (मातृपद्मे) । परिवर्धितानाम् = पुष्टानाम् । परि + √
बृध् णिच् + क्त । उत्तरकोशलानाम्—उत्तराः कोशलाः उत्तरकोशलाः; तेषाम्

उत्तरकोशलेश्वराणाम् = उत्तर कोशल के राजाओं की । सामान्यधात्रीम्—
 दधाति इति धात्री; धा + तुच् + डीप् स्त्रियाम् । सामान्या चासौ धात्री
 सामान्यधात्री ताम् = सामान्यधात्रीम् = साधारणमातरम्; उमातरम् वा । 'धात्री
 जनन्यामलकी वसुमत्युमातृषु' इति विश्वः । संभावयति—सम् + √भू +
 णिच् = लट् = संभावयति = सम्मानयति = आदर करता है ॥ ६२ ॥

टिप्पणी—इस श्लोक में उपमा अलंकार है । सैकत को उत्संग तथा
 जल को दुग्ध बताया गया है ।

उत्तर कोशल—उस देश का नाम जिसकी कि राजधानी अयोध्या थी ।
 दक्षिण कोशल विन्ध्य पर्वत तक दक्षिण की ओर फैला हुआ था । सरयू नदी
 की प्रचुर तथा निरन्तर बहने वाली जलधारा से उत्तरकोशल देश समृद्ध
 और सस्य-सम्पन्न रहता था, इसलिए उसे मातृ-तुल्य माना गया है ॥ ६२ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—या मे मानसेन सैकतोत्संगमुखोचितानाम् प्राज्यैः
 पयोभिः परिवर्धितानाम् उत्तरकोशलानाम् सामान्यधात्री इव सम्भावयते ।
 कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ६२ ॥

६३—सरयू नदी द्वारा मातृवत् आलिङ्गन करने का वर्णन—

सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता ।
 दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरंगहस्तैरुपगृह्णीतीव ॥ ६३ ॥

सङ्की०—सेयमिति । मदीया जननी कौशल्येव मान्येन पूज्येन तेन राज्ञा
 दशरथेन वियुक्ता सेयं सरयूदूरे वसन्तम् । प्रोष्यागच्छन्तमित्यर्थः मां पुत्रभूतं
 शिशिरानिलैस्तरङ्गैरेव हस्तैरुपगृह्णीतीवालिङ्गतीव ।

अन्वय—मदीया जननी इव मान्येन तेन राज्ञा वियुक्ता सा इयं सरयूः
 दूरे वसन्तं माम् शिशिरानिलैः तरंगहस्तैः उपगृह्णीति इव ॥ ६३ ॥

हिन्दी अनुवाद—श्री रामचन्द्र जी सीता जी से कहते हैं—हे प्रिये ! मेरी
 माता के समान ही पूज्य पिता जी के द्वारा वियुक्त यह सरयू नदी प्रवास से
 लौटे हुए मुझ के शिथिल शरीर को अपनी हाथों से आलिङ्गन
 सी कर रही है ॥ ६३ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

संस्कृतभावार्थ—सरयू नदी वर्णयन् श्रीमराचन्द्रः सीतादीनां प्रति निवेदयति—हे प्रिये ! मम जननी कौशल्या इव मदीयेन पूज्येन पित्रा दशरथेन वियुक्ता इयम् सरयूः नदी प्रवासादागच्छन्तम् माम् शीतलवायुमिश्रितैः स्वतरंगैः आलिंगतीव ॥ ६३ ॥

व्याख्या—मदीया—मम—इयम्=मदीया (अस्मद्+छ)=मम । जननी=माता । कौशल्येव । मान्येन—मानितुम् योग्यः, मान्यः, तेन मान्येन=पूज्येन । राज्ञा=नृपेण दशरथेन । वियुक्ता—वि+युज्+क्त+टाप्=वियुक्ता=विरहिता । दूरे वसन्तम्=विप्रकृष्टे निवसन्तम्, प्रवासानन्तरम् गृहमागच्छन्तम् । प्रवास से वापिस घर लौटते हुए । माम्=पुत्रभूतम्=पुत्र के समान मुझ को । शिशिरानिलैः=शिशिरः अनिलः येषां ते शिशिरानिलाः, तैः शिशिरानिलैः=शीतलवायुमिश्रैः=शीतल हवा से मिले हुए । तरंगहस्तैः=तरंगाः एव हस्ताः तैः=तरंगहस्तैः=ऊर्भिकरैः=तरंग रूपी हाथों से । उपगृहति—उप+गृह्+लट्=आलिंगन सी करती है ॥ ६३ ॥

टिप्पणी—तरंगहस्तैरुपगृहति—जब कोई स्त्री विधवा हो जाती है तब उसका सारा प्रेम अपनी संतान पर केन्द्रित हो जाता है । फिर भी यदि पुत्र दूर देश में निर्वासित की तरह रहे, तब तो प्रेम और भी बढ़ जाता है । जब पुत्र प्रवास से वापिस आता है, तब माता उसके स्वागत के लिए दौड़ पड़ती है । सरयू नदी का भी रामचन्द्र जी के साथ ऐसा ही सम्बन्ध था । सरयू नदी रामचन्द्र जी की माता के समान है और राजा दशरथ के स्वर्गवास से वह भी विधवा सी हो गई है । चौदह वर्ष के वनवास के बाद रामचन्द्र जी अयोध्या लौट रहे हैं और सरयू नदी अपनी शीतल तरंगों को हाथों की तरह बढ़ा कर उनका स्वागत कर रहा है ।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥ ६३ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—तथा मदीयया जनन्या इव मान्येन राज्ञा वियुक्तया अनया दूरे वसन् अहम् शिशिरानिलैः उपगृह्यते इव । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ।

६४—स्वागत के लिए आते हुए भरत का वर्णन—

विरक्तसंध्याकपिशं पुरस्ताद्यतो रजः पार्थिवमुज्जिहीते ।

शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः ॥ ६४ ॥

सञ्जी०—विरक्तेति । विरक्तातिरक्ता या संध्या तद्वत्कपिशं ताम्रवर्णम् पृथिव्या इदं पार्थिवम् । रजो धूलिः पुरस्तादग्रतो यतो यस्मात्कारणादुज्जिहीते उद्गच्छति । तस्माद्धनूमत्कथितप्रवृत्तिर्भरतः । हनुरस्यास्तीति हनुमान् । “शरादीनां च” इति दीर्घः । तेन कथिता प्रवृत्तिरस्मदागमनवार्ता यस्मै स भरतः ससैन्यः सन्मां प्रत्युद्गत इति शङ्के तर्कयामि ।

अन्वय—विरक्तसंध्याकपिशम् पार्थिवम् रजः पुरस्तात् यतः उज्जिहीते, (ततः) हनूमत्कथितप्रवृत्तिः भरतः ससैन्यः (सन्) माम् प्रत्युद्गतः इति शङ्के ॥ ६४ ॥

हिन्दी अनुवाद—अत्यन्त रक्त वर्ण की संध्या के समान लाल वर्ण की जो यह धूल ऊपर उठ रही है, उसे देख कर मेरा यह अनुमान होता है कि हनुमान् जी से मेरे आने का समाचार सुन कर भरत अपनी सेना के साथ मेरे स्वागत के लिए आ रहे हैं ॥ ६४ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतादेवीं प्रति निवेदयति—आर्ये ! पश्य, अस्माकमग्रतोऽरुणसंध्या इव रक्तवर्णा या इयम् धूलिः आकाश-मण्डलम् व्याप्नोति, ताम् दृष्ट्वा अहम् एतत् तर्कयामि यत् श्रीहनुमतः ममागमनसमाचारं ज्ञात्वा स्वसेनामादाय श्रीमान् भरतः मम स्वागताय इतः आगच्छति ॥ ६४ ॥

व्याख्या—विरक्तसंध्याकपिशम्—वि + रज् + क्त + टाप् स्त्रियाम् = विरक्ता । विशेषेण रक्ता = विरक्ता । विरक्ता चासौ संध्या च विरक्तसंध्या तद्वत् कपिशम् विरक्तसंध्याकपिशम् = अरुणगोधूलिताम्रम् = अत्यन्त लाल वर्ण की संध्या के समान लाल । पार्थिवम्—पृथिव्याः इदम् = पार्थिवम् (पृथिवी + अण्) = पृथिवीसंबन्धि । रजः = धूलिः पुरस्तात् = अग्रतः । उज्जिहीते—उत् + हा + लट् = उज्जिहीते = उद्गच्छति = ऊपर उठती है । हनूमत्कथित-प्रवृत्तिः—हनुः अस्ति अस्ति इति हनुमान् । मनुष्य के बाद ‘शरादीनां’

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

च' इस सूत्र से दीर्घ हो गया। हनुमता की प्रवृत्ति वनवास-हनुमत्कथित-
 प्रवृत्तिः = हनुमद्वत्समाचारः = हनुमान् जी द्वारा दिया गया है समाचार
 जिसको। 'वार्ता प्रवृत्तिवृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इति अमरः। ससैन्यः—सैन्येन
 सह ससैन्यः = सेनासहितः। प्रत्युद्गतः—प्रति + उद् + गम् + क्त = प्रत्युद्-
 गतः = स्वागतार्थमागतः। शंके = तर्कयामि = अनुमान करता हूँ ॥ ६४ ॥

टिप्पणी—हनुमत्कथितप्रवृत्तिः—वनवास जाते समय रामचन्द्र जी ने भरत
 से यह प्रतिज्ञा की थी कि वे १४ वर्ष बाद वन से लौटने पर सर्वप्रथम भरत
 से मिलेंगे। भरत ने यह बात मान ली थी लेकिन यह प्रतिबन्ध लगा दिया था
 कि यदि रामचन्द्र जी ने १५वें वर्ष के प्रथम दिन ही दर्शन न दिए, तो वे
 (भरत) अग्नि में प्रवेश कर जायेंगे। रामायण के अनुसार (लंका काण्ड
 १२४ अध्याय) १४वें वर्ष के अन्तिम दिन रामचन्द्र जी भरद्वाज ऋषि के
 आश्रम पर पहुँचे। यहाँ से ही शीघ्रता के कारण हनुमान् को अयोध्या भेज
 दिया गया था। लेकिन कालिदास ने भारद्वाज ऋषि के आश्रम में रामचन्द्र
 जी के ठहरने का कोई उल्लेख नहीं किया है। कालिदास के अनुसार १४वें
 वर्ष के अन्तिम दिन ही रामचन्द्र जी लंका से चलते हैं और उसी दिन नन्दि-
 ग्राम के निकट भरत से मिलते हैं। हनुमान् के भेजे जाने का भी साक्षात्
 उल्लेख नहीं किया गया है। यह स्पष्ट ही है कि मार्ग में ही कहीं से उन्हें भेजा
 गया था। वास्तव में कालिदास को भी इस घटना का स्पष्ट उल्लेख करना
 चाहिए था। हनुमान् के भेजे जाने का एक अन्य उद्देश्य भी रामायण में
 बताया गया है—रामचन्द्र जी के लौटने के समाचार को सुन कर भरत के
 दृष्टिकोण को देखना। कालिदास ने इस बात को दबा दिया है।

ससैन्यः—यहाँ पर 'सैन्य' शब्द सेना के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है,
 प्रत्युत जनता की एक अधिक संख्या के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ॥ ६४ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—विरक्तसंध्याकपिशेन पार्थिवेन रजसा उद्धायते, मया
 शंक्यते हनुमत्कथितप्रवृत्तिना भरतेन ससैन्येन प्रत्युद्गतेन (भूयते)। कर्तृवाच्य
 से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ६४ ॥

६५—भरत द्वारा राज्य के लौटा दिए जाने का वर्णन—

अद्धा श्रियं पालितसंगराय प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां स साधुः ।

हत्वा निवृत्ताय मृधे खरादीन् संरक्षितां त्वामिव लक्ष्मणो मे ॥ ६५ ॥

सञ्जी०—अद्धेति । किंच साधुः सञ्जनः स भरतः । “साधुर्वाधुर्पिके चारौ सञ्जने चापि वाच्यवत्” इति विश्वः । पालितसंगराय पालितपितृप्रतिज्ञाय मे मध्यमनघामदोषां भोगाभावादनच्छिष्टां किन्तु संरक्षितां श्रियम् । मृधे युद्धे खरादीन्हत्वा निवृत्ताय मे लक्ष्मणः संरक्षितामनघां त्वामिव प्रत्यर्पयिष्यत्यद्धा सत्यम् । “सत्ये त्वद्धाञ्जसा द्वयम्” इत्यमरः ।

अन्वय—साधुः सः पालितसंगराय मे अनघां संरक्षितां श्रियम् मृधे खरादीन् हत्वा निवृत्ताय (मे) लक्ष्मणः त्वाम् इव प्रत्यर्पयिष्यति अद्धा ॥ ६५ ॥

हिन्दी अनुवाद—यह निश्चय है कि साधु भरत पिता की प्रतिज्ञा का पालन करने वाले मुझको उसी प्रकार रक्षा की हुई किन्तु अदूषित राज्यलक्ष्मी को सौंप देंगे जिस प्रकार कि युद्ध में खरदूषणादि को मारकर लौटने पर मेरे लिए लक्ष्मण मे तुमको अर्पण कर दिया था ॥ ६५ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः कथयति—हे वैदेहि ! इदन्तु निश्चितमेव यत् सरलस्वभावः भरतः पूरितप्रतिज्ञाय मध्यम् निर्दोषाम् सभ्यक् रक्षिताम् च राज्यलक्ष्मीं तथैव प्रातिदास्याति यथा युद्धे खरदूषणादीन् राक्षसान् हत्वा प्रतिनिवृत्ताय मे लक्ष्मणः सभ्यक् रक्षिताम् निर्दुष्टाम् च त्वाम् समर्पयत् ।

व्याख्या—साधुः—साध्नात् परकायम् यः सः साधुः । ✓ साध् संसिद्धौ से उपत्यय । साधुः = सञ्जनः । “साधुर्वाधुर्पिके चारौ सञ्जने चापि वाच्यवत्” इति विश्वः । पालितसंगराय—✓ पाल् + रणच् + क्त = पालितः । पालितः संगरः येन सः पालितसंगरः; तस्मै पालितसंगराय = पूरितप्रतिज्ञाय = प्रतिज्ञा पूरी कर चुकने वाले के लिए । अनघाम्—न अस्ति अधम् यस्याः सा अनघा; ताम् अनघाम् = दोषरहिताम् पापरहिताम् वा । संरक्षिताम्—रम् + ✓ रक्ष् + क्त = संरक्षिता; ताम् संरक्षिताम् । खरादीन्—खरः आदिः प्रधान येषां श्रियम् = राज्यलक्ष्मीम् । मृधे = युद्धे । खरादीन्—खरः आदिः प्रधान येषां

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

ते
व/
स्य
अ
म
क
व
के
म
ल
३
४
५

ते खरादयः तान् = खरादीन् = खरदूषणादीन् राक्षसान् । निवृत्ताय—नि +
 वृत् + क्त = निवृत्तः, तस्मै निवृत्ताय = प्रत्यागताय । प्रत्यर्पयिष्यति = प्रतिदा-
 स्यति । अद्धा = सत्यम् । 'सत्ये त्वद्वाञ्छसा द्वयम्' इति अमरः । अद्धा एक
 अव्यय है ॥ ६५ ॥

टिप्पणी—पालितसंगराय—यहाँ पर उल्लिखित प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में
 मल्लिनाथ ने लिखा है—पालितपितृप्रतिज्ञाय अर्थात् पिता की प्रतिज्ञा पूरी
 कर चुकने वाले के लिए । लेकिन एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है—१४ वर्ष
 बाद वनवास से लौटने की रामचन्द्र जी अपनी प्रतिज्ञा के पूरे करने वाले
 के लिए । संरक्षिताम्—रामायण में लिखा है कि राज्य की न केवल रक्षा की
 गई थी, प्रत्युत राज्य की आय में दस गुना वृद्धि हो गई थी । देखो रामायण
 लंकाकांड अध्याय १२७ ।

श्रियम् त्वामिव—राज्यलक्ष्मी और सीता जी में परस्पर उपमा दी गई है ।
 अनघाम् और संरक्षिताम् विशेषण साधारण है ॥ ६५ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—साधुना तेन पालितसंगराय मे अनघा संरक्षिता श्रीः
 मृधे खरादीन् हत्वा लक्ष्मणेन त्वम् इव प्रत्यर्पयिष्यते अद्धा । कर्तृवाच्य से कर्म-
 वाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ६५ ॥

६६—भरत द्वारा किए गए स्वागत का वर्णन—

असौ पुरस्कृत्य गुरुं पदातिः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः ।
 वृद्धैरमात्यैः सह चीरवासा मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्युपैति ॥ ६६ ॥

सञ्जी०—असाविति । असौ पदातिः पदचारी चीरवासा वल्कलवसनो
 भरतः पश्चात्पृष्ठभागेऽवस्थापिता वाहिनी सेना येन सः तथोक्तः सन् ।
 “नद्यृतश्च” इति कप् । गुरुं वशिष्ठं पुरस्कृत्य वृद्धैरमात्यैः सहार्घ्यपाणिः
 सन्मामभ्युपैति ।

अन्वय—असौ पदातिः चीरवासाः भरतः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः

(सन्) गुरुम् पुरस्कृत्य वृद्धैः अमात्यैः सह अर्घ्यपाणिः (सन्) माम् अभ्युपैति ॥ ६६ ॥

हिन्दी अनुवाद—बल्कल वस्त्रधारी तथा पैदल चलने वाले यह भरत सेना को पीछे करके तथा गुरु वशिष्ठ को आगे करके वृद्ध मन्त्रियों के साथ हाथ में अर्घ्य लिए हुए मेरी ओर ही आ रहे हैं ॥ ६६ ॥

संस्कृतभावार्थ—बल्कल वस्त्रधारी तथा पादाभ्यामेव चरन् असौ भरतः स्वसेनाम् पृष्ठभागेऽवस्थाप्य गुरुवशिष्ठं च अग्रे कृत्वा वृद्धामात्यैः परिवृतः अर्घ्यमादाय मम स्वागतार्थम् इत एव आगच्छति ॥ ६६ ॥

व्याख्या—असौ = अयम् । पदातिः—पादाभ्याम् अतति गच्छति इति पदातिः । पाद + अत् + इण् = पदातिः । ‘अज्यतिभ्यां पादे च’ इस उणादि सूत्र से इण् प्रत्यय । ‘पादस्य पदा ज्यातिगोपहतेषु’ इस सूत्र से पाद को पद् आदेश । पदातिः = पादचारी = पैदल चलने वाला । चीरवासाः—चीर वासो यस्य सः चीरवासाः = बल्कलवसनः = बल्कल वस्त्र धारण किए हुए । पश्चादवस्थापितवाहिनीकः—पश्चात् अवस्थापिता वाहिनी येन सः पश्चादवस्थापितवाहिनीकः = पृष्ठभागावस्थापितसैन्यः = सेना को पीछे खड़ा कर के । पश्चाद० में बहुव्रीहि समास है और ‘नद्यृतश्च’ इस सूत्र से कप् समासान्त प्रत्यय हो गया है । गुरुम् = वशिष्ठम् । पुरस्कृत्य—पुरस् + कृ + ल्यप् = पुरस्कृत्यः = अग्रे अवस्थाप्य । अर्घ्यपाणिः—अर्घ्य पाणौ यस्य सः अर्घ्यपाणिः = अर्घ्यहस्तः । माम् = रामचन्द्रम् । अभ्युपैति = प्रत्यागच्छति = मेरे स्वागत में आता है ॥ ६६ ॥

टिप्पणी—सेना रुक गई थी । भरत तथा वशिष्ठ के साथ कुछ और वृद्ध मन्त्री रामचन्द्र जी की ओर जा रहे थे ॥ ६६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—अमुना पदातिना चीरवाससा भरतेन पश्चादवस्थापितवाहिनीकेन गुरुं पुरस्कृत्य वृद्धैः अमात्यैः सह अर्घ्यपाणिना भरतेन अहम् अभ्युपेय । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ६६ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

६७—रामचन्द्र जी के लिए भरत द्वारा सारे सुखों के छोड़ दिए जाने

का वर्णन—

पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता ।
इयन्ति वर्षाणि तथा सहोऽग्रमभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम् ॥ ६७ ॥

सङ्गी०—पित्रेति । यो भरतः पित्रा विसृष्टां दत्तामङ्कमन्तिकमुत्सङ्गं च गतामपि । यां श्रियं युवापि मदपेक्षया मयि भक्त्याऽभोक्ता सन् । तृन्नन्तत्वात् “न लोक...” इत्यादिना षष्ठीप्रतिषेधः । इयन्ति वर्षाण्येतावतो वत्सरान् । “अत्यन्तसंयोगे च” इति द्वितीया । तथा श्रिया सह । स्त्रियेति च गम्यते । उग्रं दुश्चरमासिधारं नाम व्रतमभ्यस्यतीवावर्तयतीव । “युवा युवत्या सार्धं मुग्धभर्तृवदाचरेत् । अन्तर्निवृत्तसङ्गः स्यादासिधारव्रतं हि तत् ।” इति यादवः । इदं चासिधाराचक्रमणतुल्यत्वादासिधारव्रतमित्युक्तम् ।

अन्वय—यः पित्रा विसृष्टाम् अङ्कगताम् अपि श्रियम् युवा (अपि) मदपेक्षया अभोक्ता (सन्) इयन्ति वर्षाणि तथा सह उग्रम् आसिधारम् व्रतम् अभ्यस्यति इव ॥ ६७ ॥

हिन्दी अनुवाद—पिता के द्वारा दी हुई तथा पास में आई हुई राज्यलक्ष्मी का मेरे कारण, युवक होते हुए भी, भोग न करके एक प्रकार से इतने वर्षों तक राज्यलक्ष्मी के साथ भरत ने आसिधाराव्रत का पालन किया है ॥ ६७ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतादेवीं प्रति निवेदयति—हे प्रियतमे ! पश्य तावत् भ्रातृवर्यस्य श्रीभरतस्य अपूर्वत्यागम् । यद्यपि मे पिता तस्मै राज्यलक्ष्मीं स्वहस्तेन दत्तवान्, तथापि सः मयि श्रद्धां दधानः राज्यलक्ष्मीं च ममैव मन्यमानः पूर्णयुवाऽपि सन् तस्याः उपभोगं न चकार । राज्यलक्ष्म्याः अन्ते निवसन् अपि तस्याः उपभोगं न कुर्वन् भरतः एवम् आचरितवान् यथा कश्चित् आसिधाराव्रतम् आचरति । अहो अपूर्वा कापि इयम् भरतस्य व्रतचर्या ॥ ६७ ॥

व्याख्या—विसृष्टाम्—वि + √सृज् + क्त = विसृष्टा, ताम् = विसृष्टाम् = प्रदत्ताम् = दी हुई। अङ्कगताम्—अङ्क गताम् = अङ्कगताम् = उत्सङ्गप्राप्ताम् =

गोद में आई हुई । श्रियम् = राज्यलक्ष्मीम् । मदपेक्षया — मम अपेक्षा मदपेक्षया मदपेक्षया = मयि भक्त्या = मेरे प्रति श्रद्धा होने के कारण । यहाँ पर के अर्थ में तृतीया हुई है । अभोक्ता—नञ् + भुज् + तुन् = अभोक्ता = उभोगम् न कुर्वन् = उपभोग न करते हुए । श्रियम् में अभोक्ता के संबन्ध के कारण षष्ठी विभक्ति नहीं हुई । ‘न लोकाव्ययनिष्ठा-खलर्थतृनाम्’ यह तृन् अन्त वाले कृदन्त शब्दों के योग में ‘कर्तृकर्मणोः कृति’ इस सूत्र द्वारा विधीयमान षष्ठी का निषेध कर देता है । इयन्ति—इदं परिमाणमेवम् इति इयत् तानि इयन्ति—‘इदं किमोरीश्वरी’ इस सूत्र से इदम् शब्द को ईश्व आदेश तथा ‘किमिदंभ्यां वो घः’ इस सूत्र से वतुप् प्रत्यय और व को घ आदेश कि घ को इय् आदेश होने पर इयत् शब्द बनता है । इयन्ति = एतावन्ति = इतने वर्षाणि = वत्सरान् । ‘कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे’ इस सूत्र द्वारा ‘वर्षाणि’ में द्वितीया हो गई है । तथा सह = श्रिया सह । उग्रम् = दुश्चरम् कठोरं वा । आसिधारम्—आसिधारायाः इदम् आसिधारम् नाम व्रतम् = तलवार की धारा पर चलने के समान कठोर व्रत । अभ्यस्यति इव = वर्तयति इव = पालयति इव ॥ ६७ ॥

टिप्पणी—आसिधारम् व्रतम्—यादव कोष के अनुसार आसिधार व्रत का निम्न स्वरूप है—युवा युवत्या सार्धं यन्मुग्धभर्तृवदाचरेत् । अन्तर्निवृत्त-संगः स्यादासिधारव्रतं हि तत् । कोई युवक मन में संयम की भावना लिए हुए अपनी पत्नी के साथ नितान्त अवोध व्यक्ति की तरह रहे, तो यह आसिधार व्रत कहलाता है । इस व्रत को आसिधार व्रत इसलिए कहा जाता है कि जिस तरह तलवार की धारा पर चलना कठिन है, उसी प्रकार इस व्रत का पालन करना कठोर है । नितान्त आकर्षक परिस्थितियों में भी भरत की आत्मसंयम की प्रवृत्ति वास्तव में आसिधार व्रत के पालन की तरह ही है ॥ ६७ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—येन पित्रा विसृष्टाम् अंकगताम् अपि श्रियं यूना अभोक्त्रा इयन्ति वर्षाणि तथा सह इदम् आसिधारम् व्रतम् अभ्यस्यते इव । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ६७ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

६८—पुष्पक विमान के उतरने का वर्णन—

एतावदुक्तवति दाशरथौ तदीया-

भिच्छां विमानमधिदेवतया विदित्वा ।

ज्योतिष्पथादवततार सविस्मयाभि-

रुद्वीक्षितं प्रकृतिभिर्भरतानुगाभिः ॥ ६८ ॥

सञ्जी०—एतावदिति । दाशरथौ रामे एतावदुक्तवति सति विमानं पुष्पकम् । तदीयां रामसम्बन्धिनीभिच्छामधिदेवतया विदित्वा, तत्प्रेरितं सदित्यर्थः । सविस्मयाभिर्भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः प्रजादिभिरुद्वीक्षितं सत् ज्योतिष्पथादाकाशादवततार ।

अन्वय—दाशरथौ एतावदुक्तवति (सति) विमानम् तदीयाम् इच्छाम् अधिदेवतया विदित्वा सविस्मयाभिः भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः उद्वीक्षितं (सत्) ज्योतिष्पथात् अवततार ॥ ६८ ॥

हिन्दी अनुवाद—रामचन्द्र जी के इतना कह चुकने पर उनकी इच्छा को अधिष्ठातृ देवता के द्वारा जान कर पुष्पक विमान आकाश से नीचे उतरा । भरत के पीछे चलने वाली जनता ने उसे बड़े विस्मय के साथ देखा ॥ ६८ ॥

संस्कृतभावार्थ—श्रीरामचन्द्रः सीतादेवीं प्रति यदा एतावत् उक्तवान् तदा पुष्पकविमानम् श्रीरामचन्द्रस्य इच्छां स्वाधिष्ठातृदेवतामिषेण शत्वा आकाशात् भूमौ अवततार । भरतानुगामिन्यः प्रजाश्च आश्चर्यचकिताः तद् अवलोकयामासुः ॥ ६८ ॥

व्याख्या—दाशरथौ—दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिः, तस्मिन् दाशरथौ = रामे । दशरथ शब्द से 'अत इज्' इस सूत्र द्वारा अपत्यार्थक इज् प्रत्यय । एतावत् उक्तवति = एतावत् कथितवति सति = इतना कह चुकने पर । 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इस सूत्र द्वारा दाशरथौ में सप्तमी हुई है । अधिदेवतया—अधिष्ठिता देवता अधिदेवता, तथा अधिदेवतया = विमाना-धिष्ठित देव द्वारा । सविस्मयाभिः—विस्मयेन सहिताः सविस्मयाः; ताभिः

सविस्मयाभिः सार्वभौमिभिः = आश्चर्य से युक्त । भरतानुगाभिः—अनुगम् + ड = अनुगाः । भरतस्य अनुगाः = भरतानुगाः तामिः = भरतानुगाभिः । भरतानुगामिनीभिः = भरत के पीछे चलने वाली । प्रकृतिभिः = प्रजाभिः । उद्गीक्षितम्—उद् + वि + ईक्ष् + क्त = उद्गीक्षितम् = उदालोकितम् = ऊपर देखा हुआ । ज्योतिष्पथात्—ज्योतिषां पन्थाः = ज्योतिष्पथः; तस्मात् ज्योतिष्पथात् = नक्षत्रमार्गात् । तत्पुरुष समास होने पर । ‘ऋक्पूरुषधूपथामानक्षे’ इस सूत्र से समासान्त अ प्रत्यय होने पर पथिन् को पथ हो जाता है । अवततार = नीचैराजगाम = नीचे उतरा । अव + √वृ + लिट् ॥ ६८ ॥

टिप्पणी—अधिदेवतया—वेदान्त दर्शन के अनुसार विश्व में प्रत्येक वस्तु का अपना अधिष्ठातृ देवता है । पुष्पक विमान का भी ऐसा ही अधिष्ठातृ देवता था । इस देवता के द्वारा विमान अपने आरोही की इच्छा को जान जाता था ॥ ६८ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—दाशरथौ एतावदुक्तवति सति विमानेन तदीयाम् इच्छाम् अधिदेवतया विदित्वा सविस्मयाभिः भरतानुगाभिः प्रकृतिभिः उद्गीक्षितेन ज्योतिष्पथात् अवतरे । कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ६८ ॥

६९—रामचन्द्र जी पुष्पक विमान से उतरते हैं—

तस्मात् पुरःसरविभीषणदर्शितेन
सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः ।

यानादवातरददूरमहीतलेन

मार्गेण भङ्गिरचितस्फटिकेन रामः ॥ ६९ ॥

सङ्गी०—तस्मादिति । रामः सेवायां विचक्षणः कुशलो हरीश्वरः सुग्रीवस्तेन दत्तहस्तो दत्तावलम्बः सन् । स्थलश्रुत्वात्पुरःसरो विभीषणस्तेन दर्शितेनादूरमासन्नं महीतलं यस्य तेन भङ्गिभिर्विच्छित्तिभिः रचितस्फटिकेन बद्धस्फटिकेन सोपानपर्वणामार्गेण तस्माद्यानात्पुष्पकादवातरदवतीर्णवान् । तरतेर्लङ् ।

अन्वय—रामः सेवाविचक्षणः कुशलो हरीश्वरः सुग्रीवस्तेन दत्तहस्तः (सन्) पुरःसरः

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

विभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेन भंगिरचितस्फटिकेन मार्गेण तस्मात् यानात्
अवातरत् ॥ ६६ ॥

हिन्दी अनुवाद—सेवाकार्य में चतुर सुग्रीव का सहारा लेकर श्रीरामचन्द्र
जी आगे चलने वाले विभीषण के द्वारा दिखाए हुए, पृथ्वी के निकट तक फैले
हुए और स्फटिक मणियों से जड़े सोपान मार्ग के द्वारा पुष्पक विमान से
उतरे ॥ ६६ ॥

संस्कृतभावार्थ—परिचर्याप्रवीणस्य सुग्रीवस्य हस्तावलम्बनमादाय । श्रीराम-
चन्द्रः विभीषणद्वारा प्रदर्शितेन सन्निकटमहीतलेन तथा स्फटिकमहीयुक्तेन
सोपानमार्गेण पुष्पकविमानात् अवततार ॥ ६६ ॥

व्याख्या—सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः—हरीणाम् ईश्वरः = हरीश्वरः ।
सेवायां विचक्षणः = सेवाविचक्षणः । सेवाविचक्षणश्चासौ हरीश्वरः = सेवा-
विचक्षणहरीश्वरः, तेन दत्तः हस्तो यस्मै सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तः =
परिचर्याप्रवीणं सुग्रीवसमर्पितहस्तः = सेवाकार्य में चतुर सुग्रीव द्वारा हाथ का
सहारा दिए हुए । पुरःसरविभीषणदर्शितेन—पुरः अग्रे सरति इति पुरः-
सरः । पुरःसरश्चासौ विभीषणः पुरस्सरविभीषणः । तेन दर्शितेन पुरःसर-
विभीषणदर्शितेन = अग्रगामिविभीषणज्ञापितेन = आगे चलने वाले विभीषण
के द्वारा दिखे हुए । अदूरमहीतलेन—मह्याः तलम महीतलम् । न दूरम्
अदूरम् = अदूरम् महीतलं यस्मात् तेन अदूरमहीतलेन = सन्निकटपृथ्वी पृष्ठेन =
पृथ्वी के निकट वाले । भंगिरचितस्फटिकेन—भंग्या रचितं भंगिरचितं ।
भंगिरचितम् स्फटिकम् यस्मिन् तेन भंगिरचितस्फटिकेन = विच्छित्तिवद्धस्फटि-
केन । मार्गेण = सोपानपर्वणा = सीढ़ियों के मार्ग से । अवातरत् = अवतीर्णवान्
= उतरा । अव + अ + √वृ + लङ् ॥ ६६ ॥

टिप्पणी—उच्च अधिकारी विशिष्ट अवसरों पर और राजा-महाराजा तो
सर्वदा ही अवसर के अनुसार अपने पदाधिकारियों की सहायता से रथ इत्यादि
से उतरते हैं और उच्च स्तर के निर्दिष्ट स्थान पर उनके परामर्श से ही

पहुँचते हैं। वतमान अवसर पर रथ से उतरने में सुग्रीव ने रामचन्द्र जी को सहायता दी और विभीषण ने उनका मार्ग निर्देश किया।

भंगिरचितस्फटिकेन—रचित शब्द का अर्थ यहाँ पर निर्मित का नहीं है, प्रत्युत 'जड़े हुए' का। यह सोपानपंक्ति पुष्पक विमान का ही एक अंग थी। भरत द्वारा बनवाई हुई नहीं हो सकती, क्योंकि रामचन्द्र जी एकदम ही अयोध्या आ पहुँचे थे ॥ ६६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—रामेण सेवाविचक्षणहरीश्वरदत्तहस्तेन सता पुरःसर-विभीषणदर्शितेन अदूरमहीतलेन भंगिरचितस्फटिकेन मार्गेण तस्मात् यानात् अवातीर्यत। कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ६६ ॥

७०—श्रीरामचन्द्र जी का गुरु वशिष्ठ तथा भरत से मिलना—

इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रयतः प्रणम्य

स भ्रातरं भरतमर्घ्यं परिग्रहान्ते।

पर्यश्रुस्वजत मूर्धनि चोपजग्रौ

तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके ॥ ७० ॥

सञ्जी०—इक्ष्वाकिविति। प्रयतः स रामः इक्ष्वाकुवंशगुरवे वशिष्ठाय प्रणम्यार्घ्यस्य परिग्रहः स्वीकारस्तस्यान्ते पर्यश्रुः परिगतानन्दवाष्पः सन्। भ्रातरं भरतमस्वजताल्लिङ्गत्। तस्मिन्नरामे भक्त्यपोढः परिहृतः। पितृराज्यमहाभिषेको येन तस्मिन् मूर्धन्युपजग्रौ च।

अन्वय—प्रयतः सः इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रणम्य अर्घ्यपरिग्रहान्ते पर्यश्रुः भ्रातरम् भरतम् अस्वजत, तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके मूर्धनि उपजग्रौ च ॥ ७० ॥

हिन्दी अनुवाद—पवित्र आचरण वाले श्रीरामचन्द्र जी ने इक्ष्वाकुवंश के गुरु श्री वशिष्ठ ऋषि को पहिले प्रणाम किया। तदनन्तर भरत जी द्वारा दिए गए अर्घ्य को स्वीकार कर अश्रुगद्गद हो उनका आलिङ्गन किया तथा उनके उस मस्तक को भी सँघा जिसने कि भ्रातृभक्ति के कारण पिता के राज्य के महाभिषेक को भी अस्वीकृत कर दिया था ॥ ७० ॥

संस्कृतभावार्थ—पवित्राचारवान् श्रीरामचन्द्रः पूर्वम् इक्ष्वाकुकुलगुरवे श्रीवशिष्ठाय प्रणामं निवेद्य पुनः भरतनिवेदितम् अर्घ्यं जग्राह । आनन्दाश्रुभिः व्याप्तलोचनश्च भरतम् समालिलिङ्ग । भरतः येन मूर्ध्ना पितृदत्तं राजमुकुटम् भ्रातृभक्तिवशात् न स्वीचकार तम् भरतस्य मूर्धानम् अग्रासीच्च ॥ ७० ॥

व्याख्या—प्रयतः—प्र + √ यम् + क्त = प्रयतः = दान्तः = इन्द्रियों का दमन करने वाला । इक्ष्वाकुवंशगुरवे—इक्ष्वाकोः वंशः = इक्ष्वाकुवंशः, तस्य गुरुः = इक्ष्वाकुवंशगुरुः, तस्मै = इक्ष्वाकुवंशगुरवे = इक्ष्वाकुकुलाचार्याय = इक्ष्वाकु कुल के गुरु के लिए । प्रणम्य—प्र + √ नम् + ल्यप् । प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा । अर्घ्यपरिग्रहान्ते—अर्घ्यस्य परिग्रहः = अर्घ्यपरिग्रहः, तस्य अन्तः अर्घ्यपरिग्रहान्तः, तस्मिन् = अर्घ्यपरिग्रहान्ते = अर्घ्यस्वीकारान्ते । अर्घ्य के स्वीकार करने के बाद । पर्यश्रुः—परिगतानि अश्रूणि यस्य स पर्यश्रुः = परिगतानन्दबाष्पः सन् = आँखों में आनन्द के आँसू लिए हुए । अस्वजत—अ + √ स्वज् + अ + त (लङ्) = आलिङ्गत् । तद्भक्त्यपोढ-पितृराज्यमहाभिषेके—अप + वह् + क्त = अपोढः । अभि + √ सिच् + घञ् = अभिषेकः । तस्मिन् (रामे) भक्तिः = तद्भक्तिः, तद्भक्त्या अपोढः = तद्भक्त्यपोढः । पितुः राज्यम् = पितृराज्यम् । महान् अभिषेकः महाभिषेकः । तद्भक्त्यपोढः पितृराज्यस्य महाभिषेकः येन तस्मिन् = तद्भक्त्यपोढपितृराज्यमहाभिषेके = रामभक्तिपरिहृतपितृराज्यमहाभिषेके = रामचन्द्र जी की भक्ति के कारण पितृराज्य के महाभिषेक को छोड़ देने वाले । मूर्धनि = शिरसि । उपजग्रौ—उप + √ प्रा + लिट् । प्रातवान् ॥ ७० ॥

टिप्पणी—शिष्टाचार और सामाजिक परम्पराओं में प्रवीण श्रीरामचन्द्र जी ने सर्वप्रथम कुलगुरु श्रीवशिष्ठ महर्षि को प्रणाम किया । तदनन्तर भरत ने उन्हें अर्घ्य प्रदान किया । रामचन्द्र जी ने फिर भरत का आलिङ्गन किया और प्रेमवश उनके मस्तक को सँघा । भरत के मस्तक को सँघते समय रामचन्द्र जी के मन में यह विचार आया कि यह वही मस्तक है जिसने मेरी भक्ति के कारण पिता द्वारा दिए हुए राज्य को छोड़ रक्खा है । इस विचार के साथ-साथ उनके नेत्रों में आँसू भी आ गये ।

मूर्धनि उपजग्रौ—प्रेमवश छोटे लोगों के सिर को सूँघने की प्रथा भारतवर्ष में कभी बहुत प्रचलित थी और नाटकीय साहित्य में यत्र तत्र इसका उल्लेख पाया जाता है। शाकुन्तलम्, मुद्राराक्षस और दूसरे नाटकों में कई स्थलों पर यह बात वर्णित की गई है ॥ ७० ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—प्रयतेन तेन इक्ष्वाकुवंशगुरवे प्रणम्य अर्घ्यपरिग्रहान्ते पर्यश्रुणा सता भ्राता भरतः अस्वज्यत तद्भक्त्यपोढपितृराज्य महाभिषेके मूर्धनि उपजग्रे च। कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ७० ॥

७१—कुशलक्षेम पूछने के साथ राज्य के मन्त्रियों से रामचन्द्र जी का मिलना—

श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियांश्च

प्लक्षान् प्ररोहजटिलानिवामन्त्रिवृद्धान्।

अन्वग्रहीत्प्रणमतः शुभदृष्टिपातैः

वार्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा ॥ ७१ ॥

सञ्जी०—श्मश्रुति।—श्मश्रुणां मुखरोम्णां प्रवृद्धिः। संस्काराभावनिबन्धना। तथा जनिताननविक्रियान्येपांतान् अतएव प्ररोहैः शाखावलम्बिभिरधोमुखैर्मूलैर्जटिलाञ्जटावतः। प्लक्षान्यद्रोधानिव स्थितान्। प्रणमतो मन्त्रिवृद्वांश्च शुभैः कृपाद्वैर्दृष्टिपातैर्वार्तयानुयोगेन कुशलप्रश्नेन मधुराक्षरया वाचा चान्वग्रहीदनुग्रहीतवान्।

अन्वय—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान् च प्ररोहजटिलान् प्लक्षान् इव प्रणमतः मन्त्रिवृद्धान् शुभदृष्टिपातैः वार्तानुयोगमधुराक्षरया वाचा च अन्वग्रहीत् ॥ ७१ ॥

हिन्दी अनुवाद—दाढ़ी-मूछों के बढ़ जाने से विकृत मुख वाले और इसीलिए जटावान् बटवृद्धों के समान प्रतीत होने वाले प्रणाम करते हुए वृद्ध मन्त्रियों को श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी शुभ दृष्टि से तथा मधुर शब्दों में कुशल पूछकर वाणी द्वारा अन्वग्रहीत किया ॥ ७१ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

संस्कृतभावार्थ—भरतानन्तरम् वृद्धमन्त्रिणः श्रीरामचन्द्राय प्रणामं चक्रुः । रामस्यानुकरणे तस्य वियोगे च ते वृद्धमन्त्रिणः क्षौरकार्यम् न कारितवन्तः । श्मश्रुभिः तेषाम् मुखमण्डलम् विकृतम् अभवत् । जटाभिः परिवृताः वटवृक्षाः इव ते प्रतीयन्तेस्म । प्रणामं कुर्वतः तान् मन्त्रिणः श्रीरामचन्द्रः कृपापूर्वकम् अवलोकयामास, मधुर वाण्या तेषां कुशलक्षेमं च पृष्ठवान् ।

व्याख्या—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान्—प्र + √वृष् + क्तिन् = प्रवृद्धिः । श्मश्रूणां प्रवृद्धिः = श्मश्रुप्रवृद्धिः । आननस्य विक्रिया आननविक्रिया । श्मश्रुप्रवृद्ध्या जनिता आननविक्रिया येषाम् ते श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियाः । तान् श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियान् = मुखरोमप्रवृद्धिजातमुखविकारान् = दाढ़ी-मूछों के बढ़ जाने से विकृत मुख वाले । प्ररोहजटिलान्—जटाः सन्ति येषां ते जटिलाः । जटा शब्द से 'लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः' इस सूत्र से इलच् प्रत्यय । प्ररोहन्ति इति प्ररोहाः (प्र + √रूह + अ) । प्ररोहैः जटिलाः प्ररोहजटिलाः तान् = प्ररोहजटिलान् = शाखा-वलम्ब्यधोमुखमूलैः जटायुक्तान् । प्लक्षान् = वटवृक्षान् । प्रणमतः = नमस्कारं कुर्वतः । मन्त्रिवृद्धान्—वृद्धाः च ते मन्त्रिणः = मन्त्रिवृद्धाः, तान् मन्त्रिवृद्धान् = वृद्धसचिवान् । शुभदृष्टिपातैः—शुभा च या दृष्टिः शुभदृष्टिः, तस्याः पाताः = शुभदृष्टिपाताः, तैः शुभदृष्टिपातैः = दयालुदृष्टिभिः = दयापूर्ण दृष्टि से । वार्तानुयोगमधुराक्षरया—अनु + √युज् + घञ् = अनुयोगः । वार्तस्य अनुयोगः = वार्तानुयोगः । तेन मधुराणि = वार्तानुयोगमधुराणि । वार्तानुयोगमधुराणि अक्षराणि यस्यां सा वार्तानुयोगमधुराक्षरा तथा वार्तानुयोगमधुराक्षरया = कुशलप्रश्नमधुरशब्दया = कुशल के पूछने से मधुर शब्दों वाली । वार्तम्—वृत्तिः अस्ति अस्मिन् तत् वार्तम्—'प्रज्ञाश्रद्धार्चाम्यो णः' इस सूत्र से संबद्ध 'वृत्तेश्च' इस वार्तिक द्वारा ण प्रत्यय । वाचा = वाण्या । अन्वग्रहीत्—अनु + अ + √ग्रह् + ई + त् (लुङ्) = अनुग्रहंचकार ॥ ७१ ॥

टिप्पणी—प्रजा की इच्छा न होते हुए भी श्रीरामचन्द्र जी १४ वर्ष वन में रहे । इस दीर्घ काल में भरत ने एक आदर्श भाई की तरह तपस्वी जीवन

विताया । दूसरे मन्त्री भी राम के प्रति श्रद्धा होने के कारण तपस्वी-जीवन बिताते रहे । तपश्चर्या के कठोर नियमों के अनुसार उन्होंने दाढ़ी बनाना छोड़ दिया था और इसीलिए बड़ी-बड़ी जटावाले वटवृक्षों की तरह वे दिखाई देते थे । रामचन्द्र जी मन्त्रियों से मिले तथा दयापूर्ण और मधुर शब्दों में उनकी कुशलक्षेम पूछकर उनके हृदयों को उन्होंने वश में कर लिया ॥ ७१ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—श्मश्रुप्रवृद्धिजनिताननविक्रियाः प्ररोहजटिलाः स्रक्ताः इव (स्थिताः) प्रणमन्तः मन्त्रिवृद्धाः च (रामेण) शुभदृष्टिपातैः वार्तानुयोग-मधुराक्षरया वाचा च अन्वग्राहिणः । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ७१ ॥

७२—सुग्रीव और विभीषण का भरत से परिचय तथा भरत द्वारा उनका सम्मान—

दुर्जातबन्धुरयमृत्तहरीश्वरो मे

पौलस्त्य एष समरेषु पुरःप्रहर्ता ।

इत्यादृतेन कथितौ रघुनन्दनेन

व्युत्क्रम्य लक्ष्मणमुभौ भरतो ववन्दे ॥ ७२ ॥

सर्जी०—दुर्जात इति । अयं मे दुर्जातबन्धुरापदबन्धुः । “दुर्जातं व्यसनं प्रोक्तं” इति विश्वः । ऋत्तहरीश्वरः सुग्रीव एष समरेषु पुरःप्रहर्ता पौलस्त्यो विभीषणः । इत्यादृतेनादरवता । कर्तरि क्तः । रघूणां नन्दनेन रामेण कथिताबुभौ विभीषणसुग्रीवौ लक्ष्मणमनुजमपि व्युत्क्रम्यालिङ्गनादिभिरसंभाव्य भरतो ववन्दे ।

अन्वय—अयं मे दुर्जातबन्धुः ऋत्तहरीश्वरः, एष समरेषु पुरःप्रहर्ता पौलस्त्यः इति आदृतेन रघुनन्दनेन कथितौ उभौ लक्ष्मणम् व्युत्क्रम्य भरतः ववन्दे ॥ ७२ ॥

हिन्दी अनुवाद—विपत्ति में मेरे सहायक तथा रीछों और वानरों के स्वामी यह सुग्रीव हैं और युद्ध में सबसे पहिले शत्रु पर प्रहार करने वाले पौलस्त्य वंशोत्पन्न यह विभीषण हैं—इस प्रकार आदरपूर्वक रामचन्द्र जी द्वारा

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उनका परिचय दिए जाने पर भरत ने लक्ष्मण को छोड़कर पहिले सुग्रीव और विभीषण को प्रणाम किया ॥ ७२ ॥

संस्कृतभावार्थ—आपत्काले बन्धुरिव मम सहायकः ऋक्षाणां वानराणां च स्वामी अयं सुग्रीवः अस्ति, अयञ्च पुलस्त्यकुलोत्पन्न रणेऽपि पूर्वमेव शत्रूणामुपरि प्रहारकर्ता विभीषणः अस्ति—इति आदरपूर्वकं श्रीरामचन्द्रः सुग्रीवविभीषणयोः परिचयं भरताय प्रदत्तवान् । मित्रपरिचयमवाप्य श्रीभरतः लक्ष्मणम् त्यक्त्वा पूर्वं तौ प्रणनाम ॥ ७२ ॥

व्याख्या—दुर्जातबन्धुः—दुष्टम् जातम् = दुर्जातम् । दुर्जाति बन्धुः = दुर्जातबन्धुः = आपद्बन्धुः = आपत्ति में भाई । ‘दुर्जातं व्यसनं प्रोक्तम्’ इति विश्वः । ऋक्षहरीश्वरः—ऋक्षाश्च हरयश्च ऋक्षहरयः, तेषाम् ईश्वरः ऋक्षहरीश्वरः = भल्लूककपीशः = भालुओं और बन्दरों का राजा । समरेषु = युद्धेषु । ‘अथ भल्लुके ऋक्षान्छुभल्लभालूकाः’ इति अमरः । पुरः = पूर्वम् । प्रहर्ता = आक्रान्ता प्र + √ हृ + तृ । पौलस्त्यः—पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यम् पुमान् इति पौलस्त्यः = पुलस्त्यगोत्रोत्पन्नः = पुलस्त्य कुल में उत्पन्न । आदृतेन—आ + √ दृ + क्त = आदृतः तेन = आदृतेन = आदरवता । आ पूर्वकं √ दृ धातु से कर्ता में क्त प्रत्यय । रघुनन्दनेन—नन्दयति इति नन्दनः (√ नन्द् + णिच् = ल्यु = नन्दनः) । रघूणां नन्दनः = रघुनन्दनः, तेन रघुनन्दनेन = रामेण । उभौ = विभीषणसुग्रीवौ । व्युत्क्रम्य—वि + उत् + क्रम् + ल्यप् = व्युत्क्रम्य = आलिङ्गनादिभिः असंभाव्य = आलिङ्गन इत्यादि न कर । ववन्दे = प्रणनाम । √ वन्द् + लिट् (आत्मनेपद) ॥ ७२ ॥

टिप्पणी—पौलस्त्यः—यद्यपि विभीषण युद्ध में कोई बहुत बड़ा सफल वीर नहीं था, फिर भी रामचन्द्र जी अपनी उदारतावश उसको ‘समरेषु पुरः प्रहर्ता’ कहते हैं ॥

लक्ष्मणम् व्युत्क्रम्य—रामचन्द्र जी ने सुग्रीव और विभीषण का ऐसे ऊँचे शब्दों में परिचय दिया कि भरत जी को रामचन्द्र जी की ओर आकृष्ट

हो गया और लक्ष्मण को छोड़ कर पहिले उन्होंने सुग्रीव और विभीषण के प्रणाम किया ॥ ७२ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—अयम् मे दुर्जातबन्धुः ऋक्षहरीश्वरः, एष समरेषु पुरः प्रहर्ता पौलस्त्यः, इति आदत्तेन रघुनन्दनेन कथितौ उभौ लक्ष्मणम् व्युत्क्रमभरते ववन्दाते । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ७२ ॥

७३—भरत द्वारा लक्ष्मण का अभिवादन और स्वागत—

सौमित्रिणा तदनु संसृजे स चैनम्
उत्थाप्य नम्रशिरसं भृशमालिलिङ्ग ।
रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन

क्लिश्यन्निवास्य भुजमध्यमुरःस्थलेन ॥ ७३ ॥

सञ्जी०—सौमित्रिणेति । तदनु सुग्रीवादिवन्दनानन्तरं स भरतः सौमित्रिणा संसृजे संगतः । “सृज् विसर्गे” दैवादिकात्कर्तरि लिट् । नम्रशिरसं प्रणतमेनं सौमित्रिमुत्थाप्य भृशं गाढमालिलिङ्ग किं कुर्वन् । रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणैः कर्कशेनास्य सौमित्रेरुरःस्थलेन भुजमध्यं स्वकीयं क्लिश्यन्निव पीडयन्निव । “क्लिश्नाति भुवनत्रयम्” इति दर्शनात् । ननु रामायणे “ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः । अभिवाद्य ततः प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ।” इति भरतस्य कानिष्ठ्यं प्रतीयते । किमर्थं ज्यैष्ठ्यमवलम्ब्यानार्जवेन श्लोको व्याख्यातः सत्यम् । किंतु रामायणश्लोकार्थटीकाकृतोक्तः श्रयताम् । “ततो लक्ष्मणमासाद्य..” इत्यादिश्लोके आसादनं लक्ष्मणवैदेह्योः । अभिवादनं तु वैदेह्या एव । अन्यथा पूर्वोक्तं भरतस्य ज्यैष्ठ्यम् विरुध्येतेति ।

अन्वय—तदनु सः सौमित्रिणा संसृजे, नम्रशिरसम् एनम् उत्थाप्य रूढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन अस्य उरःस्थलेन भुजमध्यम् क्लिश्यन् इव भृशम् आलिलिङ्ग च ॥ ७३ ॥

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद भरत जी लक्ष्मणजी से मिले । प्रणाम करने में झुके हुए लक्ष्मण जी को उठाकर मेघनाद के अश्वों के घावों से कटोर

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

बने हुए उनके वक्षःस्थल से अपने वक्षःस्थल को दबाते हुए भरत जी ने लक्ष्मण जी का बड़ी प्रगाढ़ता से आलिङ्गन किया ॥ ७३ ॥

संस्कृतभावार्थ—सुग्रीवादिप्रणामानन्तरम् श्री भरतः लक्ष्मणम् उपजगाम । विनतशिरसम् लक्ष्मणम् उत्थाप्य मेघनादास्त्रकृतव्रणैः कर्कशेन तद्वक्षःस्थलेन स्ववक्षःस्थलं परिपीडयन्निव लक्ष्मणम् गाढम् आलिङ्गितवान् च ॥ ७३ ॥

व्याख्या—तदनु = तदनन्तरम्, सुग्रीवादिवन्दनानन्तरम् । स भरतः । सौमित्रिणा—सुमित्रायाः अपत्यम् पुमान् इति सौमित्रिः (सुमित्रा + इञ्), तेन = सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन । संसृजे—सम् + √सृज् + लिट् संसृजे = संगतः । √सृज् विसर्गे । इति दैवादिकात् कर्तरि लिट् । नम्रशिरसम्—नम्रं शिरो यस्य तम् नम्रशिरसम् = प्रणतम् । एनम् = सौमित्रिम्, लक्ष्मणम् । उत्थाप्य—उद् + √स्था + णिच् + ल्यप् = उत्थाप्य = उन्नतं कृत्वा । रुढेन्द्रजित्प्रहरण-व्रणकर्कशेन—√रुह् + क्त = रुढः । इन्द्र + जि + क्विप् = इन्द्रजित् । इन्द्र-जितः प्रहरणानि इन्द्रजित्प्रहरणानि । तेषाम् व्रणाः इन्द्रजित्प्रहरणव्रणाः । रुढाः इन्द्रजित्प्रहरणव्रणाः रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणाः, तैः कर्कशम् = रुढेन्द्रजित्प्रहरण-व्रणकर्कशम्, तेन रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन = रुढमेघनादायुधव्रण कठोरेण = मेघनाद के अस्त्रों के धावों से कठोर बने हुए । अस्य = लक्ष्मणस्य । उरःस्थलेन = वक्षःस्थलेन । भुजयोः मध्यम् = भुजमध्यम् = वक्षःस्थलम् । क्लि-श्यन् = परिपीडयन् । √क्लिश् धातु यहाँ सकर्मकरूप में प्रयुक्त की गई है । भृशम् = गाढम् । आलिलिङ्ग = परिष्वजे ॥ ७३ ॥

टिप्पणी—नम्रशिरसम् एनम् (सौमित्रिम्) उत्थाप्य—भरत और लक्ष्मण में वास्तव में भरत ही बड़े थे । इसी आधार पर मल्लिनाथ ने इस श्लोक की व्याख्या की है । यद्यपि वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग में यह पद्य पाया जाता है—

ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः ।

अभिवाद्य ततः प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ।

और इस श्लोक से भरत की कनिष्ठता प्रतीत होती है परन्तु इस श्लोक

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

बने हुए उन के वक्षःस्थल से अपने वक्षःस्थल को दबाते हुए भरत जी ने लक्ष्मण जी का बड़ी प्रगाढ़ता से आलिंगन किया ॥ ७३ ॥

संस्कृतभाषार्थ—सुग्रीवादिप्रणामानन्तरम् श्री भरतः लक्ष्मणम् उपजगाम । विनतशिरसम् लक्ष्मणम् उत्थाप्य मेघनादास्त्रकृतव्रणैः कर्कशेन तद्वक्षःस्थलेन स्ववक्षःस्थलं परिपीडयन्निव लक्ष्मणम् गाढम् आलिंगितवान् च ॥ ७३ ॥

व्याख्या—तदनु = तदनन्तरम्, सुग्रीवादिबन्दनानन्तरम् । स भरतः । सौमित्रिणा—सुमित्रायाः अपत्यम् पुमान् इति सौमित्रिः (सुमित्रा + इञ्), तेन = सौमित्रिणा = लक्ष्मणेन । संसृजे—सम् + √सृज् + लिट् संसृजे = संगतः । √सृज् विसर्गे । इति देवादिकात् कर्तरि लिट् । नम्रशिरसम्—नम्रं शिरो यस्य तम् नम्रशिरसम् = प्रणतम् । एनम् = सौमित्रिम्, लक्ष्मणम् । उत्थाप्य—उद् + √स्था + णिच् + ल्यप् = उत्थाप्य = उन्नतं कृत्वा । रुढेन्द्रजित्प्रहरण-व्रणकर्कशेन—∥रुह् + क्त = रुढः । इन्द्र + जि + क्विप् = इन्द्रजित् । इन्द्र-जितः प्रहरणानि इन्द्रजित्प्रहरणानि । तेषाम् व्रणाः इन्द्रजित्प्रहरणव्रणाः । रुढाः इन्द्रजित्प्रहरणव्रणाः रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणाः, तैः कर्कशम् = रुढेन्द्रजित्प्रहरण-व्रणकर्कशम् तेन रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन = रुढमेघनादायुधव्रण कठोरेण = मेघनाद के अस्त्रों के धारों से कठोर बने हुए । अस्य = लक्ष्मणस्य । उरःस्थलेन = वक्षःस्थलेन । भुजयोः मध्यम् = भुजमध्यम् = वक्षःस्थलम् । क्लि-श्यन् = परिपीडयन् । ∥क्लिश् धातु यहाँ सकर्मकरूप में प्रयुक्त की गई है । भृशम् = गाढम् । आलिलिङ्ग = परिप्रस्वजे ॥ ७३ ॥

टिप्पणी—नम्रशिरसम् एनम् (सौमित्रिम्) उत्थाप्य—भरत और लक्ष्मण में वास्तव में भरत ही बड़े थे । इसी आधार पर मल्लिनाथ ने इस श्लोक की व्याख्या की है । यद्यपि वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग में यह पद्य पाया जाता है—

ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः ।

अभिवाद्य ततः प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ।

और इस श्लोक से भरत की स्तुति का अर्थ ही मिलता है, परन्तु इस श्लोक

प्रासा
लेखि
कती

१५

पाय

श

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri
की व्याख्या करते समय टीकाकार ने स्पष्ट लिखा है कि 'ततो लक्ष्मणमासाव
इत्यादि श्लोक में आसादन तो लक्ष्मण और वैदेही दोनों का ही है, लेकिन
अभिवादन तो वैदेही का ही है, नहीं तो भरत की ज्येष्ठता नहीं निभ सकती।

निम्न श्लोक भी भरत की ज्येष्ठता ही सिद्ध करते हैं—

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः

अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ ॥

पुण्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः ।

सार्पे जातौ तु सौमित्रौ कुलीरेऽभ्युदिते रवौ ॥

रामा० बाल० १२

वाच्यपरिवर्तनम्—तदनु तेन सौमित्रिणा संसृजे, नम्रशिराः एषः उत्थाप्य
रुढेन्द्रजित्प्रहरणव्रणकर्कशेन अस्य उरःस्थलेन भुजमध्यं क्लिश्यत् इव भृशम्
आलिलिंगे । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ७३ ॥

७४—वानर-सेनापतियों का हाथियों पर सवार होना—

रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीम्

कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान् ।

तेषु क्षरत्सु बहुधा मदवारिधाराः

शैलाधिरोहणमुखान्युपलेभिरे ते ॥ ७४ ॥

सञ्जी०—रामेति । तदानीं हरिचमूपतयो रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा
गजेन्द्रानारुरुहुः । बहुधा मदवारिधाराः क्षरत्सु तेषु गजेन्द्रेषु ते कपियूथनायाः
शैलाधिरोहणमुखान्युपलेभिरेऽनुवभूयुः ।

अन्वय—तदानीम् हरिचमूपतयः रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा गजेन्द्रान्
आरुरुहुः । बहुधा मदवारिधाराः क्षरत्सु तेषु ते शैलाधिरोहणमुखानि उपले-
भिरे ॥ ७४ ॥

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर वानर-सेना के सेनापतियों ने रामचन्द्र जी
की आज्ञा से मनुष्य-शरीर धारण कर के बड़े-बड़े हाथियों की सवारी की।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

उन हाथियों के अनेक प्रकार से मदजल-धाराओं को छोड़ने के कारण वानर-सेनापतियों को पर्वतों पर चढ़ने का आनन्द अनुभव हुआ ॥ ७४ ॥

संस्कृतभावार्थ—परस्परामिनन्दनानन्तरम् वानरसेनायाः संचालकाः श्रीरामचन्द्रस्य अनुमत्या आत्मानम् मनुष्यशरीरेण परिणम्य उत्तमगजान् आरूढवन्तः । विशालशरीराः गजाः बहुधा मदजलम् अमुञ्चन्, पर्वता इव प्रतीयन्ते च स्म । अतः वानरसेनापतयः पर्वताधिरोहणानन्दम् अन्वभवन् ॥७४॥

व्याख्या—तदानीम् = तस्मिन् काले = तत्र । तत् शब्द से तस्मिन् काले इस अर्थ में 'दानीं च' इस सूत्र से दानीम् प्रत्यय और 'तदो दां च' इस सूत्र से दा प्रत्यय भी होता है । हरिचमूपतयः—हरीणाम् चम्बः = हरिचम्बः, तासां पतयः हरिचमूपतयः = कपिसैन्यसंचालकाः = वानर सेना के संचालक । रामाज्ञया—रामस्य आज्ञा = रामाज्ञा तथा रामाज्ञया = रामादेशेन । मनुष्यवपुः—मनुष्याणां वपुः = मनुष्यवपुः = नराकृतिम् । कृत्वा = विधाय । गजेन्द्रान् = उत्तमगजान् । आरूढुः = आरूढवन्तः । तेषु = गजेन्द्रेषु । बहुधा—बहु शब्द से 'संख्याया विधार्थे धा' इस सूत्र से धा प्रत्यय हुआ है । बहुधा = बहुषु स्थानेषु । मदवारिधाराः—मदस्य वारि = मदवारि, तस्य धाराः मदवारिधाराः = मदजलधाराः । क्षरत्सु = वर्षत्सु । तेषु = गजेन्द्रेषु । ते = कपियूथनाथाः । शैलाधिरोहणसुखानि—शैलेषु अधिरोहणम् = शैलाधिरोहणम्, तस्य सुखानि शैलाधिरोहणसुखानि = पर्वतारोहणानन्दम् = पर्वत पर चढ़ने का आनन्द । उपलेभिरे—उप + लभ् + लिट् आत्मनेपद प्र० बहु । प्राप्तवन्तः ॥ ७४ ॥

टिप्पणी—मनुष्यवपुः कृत्वा—दोनों ही अवसरों पर वानरों ने मनुष्य रूप धारण किया है । चूँकि यह वानर देवताओं के अवतार थे, इसलिए वे अपनी इच्छा से कोई भी रूप धारण कर सकते थे ।

वाच्यपरिवर्तनम्—तदानीं हरिचमूपतिभिः रामाज्ञया मनुष्यवपुः कृत्वा गजेन्द्राः आरूढहिरे । बहुधा मदवारिधाराः क्षरत्सु तेषु तैः शैलाधिरोहणसुखानि उपलेभिरे । कतृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ७४ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri
७५—विभीषण अपने दल के साथ रथ में सवार होता है—

सानुप्लवः प्रभुरपि क्षणदाचराणाम्
भेजे रथान् दशरथप्रभवानुशिष्टः ।

मायाविकल्परचितैरपि ये तदीयै-

न स्यन्दनैस्तुलित कृत्रिमभक्तिशोभाः ॥ ७५ ॥

सर्जी०—सानुप्लव इति । सानुप्लवः सानुगः । “अभिसारस्त्वनुस-
सहायोऽनुप्लवोऽनुजः” इति यादवः । क्षणदाचराणां रक्षसां प्रभुः विभीषणोऽपि
प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः जनको दशरथः प्रभवो यस्य स दशरथप्रभवो रामः ।
तेनानुशिष्ट आज्ञप्तः सन् रथान्भेजे; तानेव विशिनष्टि—ये रथा मायाविकल्पर-
चितैः संकल्पविशेषनिर्मितैरपि तदीयैः विभीषणीयैः स्यन्दनैः रथैस्तुलितकृत्रिमभक्ति-
शोभास्तुलिता समीकृता कृत्रिमा क्रियया निर्वृत्ता भक्तीनां शोभा येषां ते तथोक्ता
न भवन्ति । तेऽपि तत्साम्यं न लभन्त इत्यर्थः । कृत्रिमेत्यत्र “डिक्वतः क्वि”
इति क्विप्रत्ययः । “क्त्रेर्मन् नित्यम्” इति ममागमः ।

अन्वय—सानुप्लवः क्षणदाचराणाम् प्रभुः अपि दशरथप्रभवानुशिष्टः
(सन्) रथान् भेजे । ये मायाविकल्परचितैः अपि तदीयैः स्यन्दनैः तुलित-
कृत्रिमभक्तिशोभाः न (भवन्ति) ॥ ७५ ॥

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर राक्षसों का अधिपति विभीषण भी अपने
साथियों के साथ श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर रथ पर सवार हुआ । यह
रथ मानसिक कल्पना द्वारा बनाए हुए विभीषण के रथों से अपनी कृत्रिम
चित्र रचना के द्वारा बड़े ही उत्कृष्ट लगते थे ॥ ७५ ॥

संस्कृतभावार्थ—तदा निशाचरेश्वरः लंकाधिपतिः विभीषणः श्रीरामचन्द्रस्य
अनुमत्या स्वसेवकैः सह स्यन्दनान् आरूढवान् । इमे स्यन्दनाः अतीव उत्कृष्टाः
आसन् । अयोध्यायाः कुशलकर्मकारैः विभिन्नचित्ररचनाभिः सज्जितानाम्
एतेषाम् रथानाम् लंकायाः मायाविरचिताः अपि रथाः कथंचिदपि साम्यं न
अभजन् ॥ ७५ ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

व्याख्या—सानुप्लवः—अनुप्लवन्ते इति अनुप्लवाः (अनु + प्लु + अच्) ।
 त्रैः सह सानुप्लवः = सानुगः = साधियों के साथ । 'अभिसारस्त्वनुसरः सहायोऽ-
 नुप्लवोऽनुजः' इति यादवः । क्षणदाचरणाम्—क्षणदासु चरन्ति इति ते
 क्षणदाचराः, तेषाम् क्षणदाचरणाम् = निशाचरणाम् । 'रात्रिस्त्रियामा क्षणदा
 क्षपा' इति अमरः । प्रभुः = स्वामी । विभीषण इति यावत् । दशरथप्रभवानु-
 शिष्टः—प्रभवति अस्मात् इति प्रभवः । (प्र + भू = अप्); दशरथः प्रभवः
 यस्य स दशरथप्रभवः, तेन अनुशिष्टः = दशरथप्रभवानुशिष्टः = रामाज्ञतः
 सन् । रथान् = स्यन्दनान् । भेजे—आसुरोह । ये = रथाः । मायाविकल्परचितैः
 —विकल्पात् रचितैः = विकल्परचितैः । मायाया विकल्परचितैः मायाविकल्प-
 रचितैः = संकल्पविशेषनिमित्तैः = मन की कल्पना से ही बनाए हुए । तदीयैः
 = विभीषणीयैः । स्यन्दनैः = रथैः । तुलितकृत्रिमभक्तिशोभाः—क्रियया
 निर्वृत्ता कृत्रिमा । भक्तीनाम् शोभा = भक्तिशोभा । कृत्रिमा च या भक्तिशोभा
 = कृत्रिमभक्तिशोभा । तुलिता कृत्रिमभक्तिशोभा येषां ते तुलितकृत्रिमभक्ति-
 शोभाः = समीकृतकृत्रिमचित्रशोभाः = समान है कृत्रिम चित्रों की शोभा जिन्हों
 की । न भवन्ति = अर्थात् साम्यं न लभन्ते । √कृ धातु से 'ड्वितः क्विः'
 इस सूत्र से क्वि प्रत्यय । 'क्रेर्मन् नित्यम्' इस सूत्र से मम् का आगम ॥ ७५ ॥

टिप्पणी—भरत द्वारा प्रस्तुत रथ मानवीय कला की सहायता से निर्मित
 थे । इसलिए वे चाहे कितने भी उत्कृष्ट क्यों न हों, उनमें कोई न कोई कमी
 रह ही सकती है । विभीषण के रथ मायावी शक्ति द्वारा निर्मित थे । उनमें कोई
 कमी नहीं हो सकती । इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि भरत के रथ विभीषण
 के रथों से बहुत कुछ हीन कोटि के होते । लेकिन बात बिल्कुल विपरीत थी ।
 कलात्मक सौन्दर्य में भरत के रथ विभीषण के रथों से बहुत कुछ उत्कृष्ट
 थे ॥ ७५ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—सानुप्लवेन क्षणदाचराणां प्रभुणाऽपि दशरथप्रभवानु-
 शिष्टेन सता रथाः भेजिरे । यैः मायाविकल्परचितैरपि तदीयैः स्यन्दनैः तुलित-
 कृत्रिमभक्तिशोभैः न भूयान् ।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri
 किया गया है । द्वितीय वाक्य में कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन कि
 गया है ॥ ७५ ॥

७६—अपने भाइयों के साथ रामचन्द्र जी का पुष्पक विमान में सव
 होना—

भूयस्ततो रघुपतिर्विलसत्पताक-

मध्यास्त कामगति सावरजो विमानम् ।

दोषातनं बुधबृहस्पतियोगदृश्य-

स्तारापतिस्तरलविद्युदिवाभ्रवृन्दम् ॥ ७६ ॥

सर्जी०—भूय इति । ततो रघुपतिः सावरजो भरतलक्ष्मणसहितः सन् ।
 विलसत्पताकं कामेनेच्छानुसारेण गतिर्यस्य तद्विमानं भूयः पुनरपि ।
 बुधबृहस्पतिभ्यां योगेन दृश्यो दर्शनीयरतारापतिश्चन्द्रो दोषाभवं दोषातनम् ।
 “सायंचिरंप्राह” इत्यादिना दोषाशब्दादव्यात् व्युत्पत्त्ययः । तरलविद्युच्च-
 झलतडिदभ्रवृन्दमिव । अध्यास्ताधिष्ठितवान् ।

अन्वय—ततः रघुपतिः सावरजः (सन्) विलसत्पताकम् कामगति
 विमानम् भूयः बुधबृहस्पतियोगदृश्यः तारापतिः दोषातनम् तरलविद्युत् अभ्रवृन्दम्
 इव अध्यास्त ॥ ७६ ॥

हिन्दी अनुवाद—सुग्रीव और विभीषण इत्यादि के रथारूढ़ हो जाने पर
 रामचन्द्र भी भरत और लक्ष्मण के साथ स्वेच्छाचारी तथा लहराते हुए भ्रष्ट
 से युक्त पुष्पक विमान पर आरूढ़ हुए । भरत और लक्ष्मण के साथ पुष्पकारूढ़
 श्री रामचन्द्र जी को देखकर ऐसा लगता था मानो बुध और बृहस्पति के साथ
 में शोभायमान चन्द्रमा सायंकालीन तथा विजली से युक्त मेघमण्डल पर
 आरूढ़ हो ॥ ७६ ॥

संस्कृतभावार्थ—यदा सुग्रीवविभीषणादयः स्वस्वरथमारूढ्य अग्रे प्रतस्थुः
 तदा श्रीरामचन्द्रः अपि भरतलक्ष्मणसहितः चञ्चलपताकयुक्तम् स्वेच्छाचारिणम्
 पुष्पकविमानम् आरूढः । भरतलक्ष्मणयोः मध्ये विराजमानः पुष्पकारूढः

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

श्रीरामचन्द्रः बुध-बृहस्पतिनक्षत्रयोः मध्येस्थितः सायंकालीनम् चपलासमन्वितम् मेघसमूहम् अधिष्ठितः चन्द्रमाः इव शोभायमानो बभूव ॥ ७६ ॥

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्, सुग्रीवादीनां स्वस्वरधारोहणानन्तरम् = सुग्रीवादि के अपने-अपने रथों पर चढ़ने के बाद । सावरजः—अवरजाम्या सहितः = सावरजः = सानुजः, भरतलक्ष्मणसहितः सन् । विलसत्पताकम्—वि + √ लस् + शतृ + डीप् = विलसन्त्यः । विलसन्त्यः पताकाः यस्मिन् तत् विलसत्पताकम् = चञ्चलकेतुयुक्तम् = लहराने हुए झण्डों वाला । कामगतिः—कामेन गतिः यस्य तत् = कामगति = मनोऽनुकूलगतिमत् = मन के अनुसार चलने वाला । विमानम् = पुष्पकविमानम् । भूयः = पुनरपि । बुधबृहस्पति-योगदृश्यः—बुधश्च बृहस्पतिश्च बुधबृहस्पती, तथाः योगेन दृश्यः = बुधबृहस्पति-योगदृश्यः = बुध बृहस्पति-नक्षत्रसंसर्गरमणीयः = बुध और बृहस्पति नक्षत्रों के मेल से सुन्दर । तारापतिः—ताराणाम् पतिः = तारापतिः = चन्द्रः । दोषा-तनम्—दोषाभवम् = दोषातनम् = सायंकालीनम् । दोषा शब्द रात्रिवाची एक अव्यय है । ‘सायंचिरंप्राह्ण प्रगेऽव्ययेभ्यश्च्युत्युलौ तुट् च’ इस सूत्र से ट्यु प्रत्यय और तुट् का आगम हो जाता है । यु को अन आदेश हो जाता है । तरलविद्युत्—तरला विद्युत् यस्मिन् तत् = तरलविद्युत् = चञ्चलतडित्समन्वितम् = चंचल बिजली से युक्त । अभ्रवृन्दम्—अभ्राणाम् वृन्दम् = अभ्रवृन्दम् = मेघसमूहम् । अध्यास्त—अधि + √ आस् + लङ् = अधिष्ठितवान् = सवार हुआ ॥ ७६ ॥

टिप्पणी—रघुपति राम की नक्षत्रों के पति चन्द्रमा से उपमा है । भरत और लक्ष्मण की बुध और बृहस्पति इन नक्षत्रों से उपमा है । स्वेच्छाचारी पुष्पक विमान की सन्ध्याकालीन मेघों से उपमा है । विमान की पताकाएँ बिजलियों से उपमित की गई हैं । इस प्रकार इस श्लोक में उपमेय के सभी अंगों की उपमान के विभिन्न अंगों से उपमा पाई जाती है ॥ ७६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—ततः रघुपतिना सावरजेन सता विलसत्पताकम् कामगति विमानम् भूयः बुधबृहस्पतियोगदृश्येन तारापतिना दोषातनम् तरलविद्युत्

अभ्रवृन्दम् इव अध्यास्यत । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ७६ ॥

७७—भरत जी सीता जी को प्रणाम करते हैं—

तत्रेश्वरेण जगतां प्रलयादिवोर्वी

वर्षात्ययेन रुचमभ्रघनादिवेन्दोः ।

रामेण मैथिलसुतां दशकण्ठकृच्छ्रात्

प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं भरतो ववन्दे ॥ ७७ ॥

सजी०—तत्रेति । तत्र विमाने । जगतामीश्वरेणादिवराहेण प्रलयादुर्वीमिव वर्षात्ययेन शरदागमेनाभ्रघनान्मेघसंघातादिन्दोः रुचं चन्द्रिकामिव रामेण दशकण्ठ एव कृच्छ्रं संकटं तस्मात्प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं सन्तोषवतीं मैथिलसुतां सीतां भरतो ववन्दे ।

अन्वय—तत्र जगताम् ईश्वरेण प्रलयात् उर्वीम् इव, वर्षात्ययेन अभ्रघनात् इन्दोः रुचमिव, रामेण दशकण्ठकृच्छ्रात् प्रत्युद्धृतां धृतिमतीं मैथिलसुतां भरतो ववन्दे ॥ ७७ ॥

हिन्दी अनुवाद—जगत् के स्वामी आदिवराह ने जिस प्रकार प्रलय से पृथ्वी को बचाया और जिस प्रकार शरत्काल मेघों के समूह से चन्द्रकान्ति को बचाता है, उसी प्रकार रामचन्द्र जी द्वारा रावणरूपी संकट से बचाई हुई धैर्यसंपन्न सीता जी को फिर पुष्पक विमान पर भरत जी ने प्रणाम किया ॥ ७७ ॥

संस्कृतभावार्थ—यथा जगताम् अधिपतिः आदिवराहः प्रलयात् पृथ्वीम् उद्धार, यथा वा शरत्कालः मेघमण्डलात् चन्द्रकान्तिम् उन्मोचयति तथैव श्रीरामचन्द्रेण रावणपाशात् उन्मोचिताम् धैर्यसम्पन्नाम् जनकनन्दिनीं श्रीसीतां भरतः तत्र पुष्पकविमाने प्रणयाम ॥ ७७ ॥

व्याख्या—जगताम् ईश्वरेण—जगतामीश्वरेणादिवराहेण ॥ प्रलयात् = जलज्ज्वात् । उर्वीम् = पृथ्वीम् । वर्षात्ययेन—वर्षस्य अत्ययः, तेन वर्षात्ययेन =

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वर्षायाः अवसानेन, शरदागमने । अश्विनाम् प्रणामः—तस्मात् =
 अभ्रघनात् = मेघजालात् । इन्दोः = चन्द्रस्य । रुचम्—रोचते इति रुक् (रुच् +
 क्विप्), ताम् = रुचम् = श्रियम् दशकण्ठकृच्छ्रात्—दश कण्ठाः अस्य इति
 दशकण्ठः, स एव कृच्छ्रम् = दशकण्ठकृच्छ्रम्, तस्मात् = दशकण्ठकृच्छ्रात् =
 रावणरूपसंकटात् = रावणरूपी संकट से । प्रत्युद्धृताम्—प्रति + उत् + धृ +
 क्त + टाप् = प्रत्युद्धृता, ताम् = प्रत्युद्धृताम् = उन्मोक्षिताम्, रक्षिताम् ।
 धृतिमतीम्—धृतिः अस्ति अस्याः इति धृतिमती, ताम् = धृतिमतीम् =
 धैर्यसम्पन्नाम्, सन्तोषवतीम् । मैथिलसुताम्—मिथिलानां राजा मैथिलः,
 तस्य सुता मैथिलसुता, ताम् मैथिलसुताम् = सीताम् ववन्दे = प्रणनाम = प्रणाम
 किया ॥ ७७ ॥

टिप्पणी—पुष्पक विमान में चढ़ते ही भरत जी ने सीता जी को देखा ।
 सीता जी बहुत प्रसन्न मालूम पड़ती थीं । रामचन्द्र जी द्वारा रावण के पंजे से
 उनका निकाला जाना इतना ही बड़ा कार्य था जितना कि प्रलय से आदिवराह
 द्वारा पृथ्वी का बचाना या चन्द्रकान्ति का मेघसमूह से शरत् द्वारा बचाना ।
 भरत जी ने विमान पर ही सीता जी को प्रणाम किया । सीता और पृथ्वी के
 रक्षण की परस्पर तुलना बहुत ही उपयुक्त है और ध्यान देने योग्य है ॥ ७७ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—तत्र जगताम् ईश्वरेण प्रलयात् उर्वी इव, वर्षात्ययेन
 अभ्रघनात् इन्दोः रुक् इव, रामेण दशकण्ठकृच्छ्रात् प्रत्युद्धृता धृतिमती
 मैथिलसुता भरतेन ववन्दे । कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया
 है ॥ ७७ ॥

७८—भरत जी के सिर तथा सीता जी के चरणों का एक दूसरे के सम्पर्क
 से पवित्र होना—

लंकेश्वरप्रणतिभंगदृढव्रतं तद्

वन्द्यं युगं चरणयोर्युज्यमानकालमजायाः ।

ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधो-

रन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य ॥ ७८ ॥

सजी०—लङ्केश्वरेति । लङ्केश्वरस्य रावणस्य प्रणतीनां भङ्गेन निरासेन दृढव्रतमखण्डितपातिव्रत्यमत एव वन्द्यं तज्जनकात्मजायाश्चरणयोः युगज्येष्ठानुवृत्त्या जटिलं जटायुक्तं साधोः सज्जनस्यास्य भरतस्य शिरश्चेत्युभय समेत्य मिलित्वान्योन्यस्य पावनं शोधकमभूत् ।

अन्वय—लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम् वन्द्यं तत् जनकात्मजायाः चरणयोः युगम् ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम् साधोः अस्य शिरश्च उभयं समेत्य अन्योन्य-पावनम् अभूत् ॥ ७८ ॥

हिन्दी अनुवाद—लंका के अधिपति रावण की प्रार्थनाओं को टुकरा कर अखण्ड पातिव्रत्य रखने वाले तथा वन्दनीय श्रीसीता जी के चरणयुगल और अपने बड़े भाई के अनुकरण में जटाओं से युक्त साधुचरित्र श्रीभरत का सिर दोनों ही एक दूसरे से मिलकर एक दूसरे को पवित्र कर रहे थे ॥ ७८ ॥

संस्कृतभावार्थ—लंकाधिपतेः रावणस्य प्रार्थनानां तिरस्कारेण पातिव्रत्यस्य संरक्षकम् अतएव वन्दनीयम् च सीतादेव्याः चरणयुगलम् ज्येष्ठभ्रातुः रामस्य भक्त्या जटायुक्तम् साधुचरितस्य भारतस्य शिरश्च परस्परं मिलित्वा परस्परस्य पवित्रतां चक्रतुः ॥ ७८ ॥

व्याख्या—लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम्—प्र + √ नम् + क्तिन् = प्रणतिः । लङ्केश्वरस्य प्रणतयः = लङ्केश्वरप्रणतयः, तासां भङ्गः = लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गः, तेन दृढं व्रतम् अस्य इति लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतम् = रावणप्रार्थनानिरास-दृढ पातिव्रत्यम् = रावण की प्रार्थनाओं के टुकराने से पातिव्रत्य को दृढ रखने-वाले । वन्द्यम्—वन्दितुम् योग्यम् वन्द्यम् (√ वन्द् + यत्) = पूज्यम् । जनका-त्मजायाः—आत्मनो जाता इति आत्मजा (आत्मन् + जन् + ड) । जनकस्य आत्मजा = जनकात्मजा, तस्याः = जनकात्मजायाः = सीतायाः । चरणयोः—पादयोः । युगलम् = युगम् = दोनों । ज्येष्ठानुवृत्ति जटिलम्—अतिशयेन वृद्धः इति ज्येष्ठः (वृद्ध + इष्ठ) । अनु + √ वृत् + क्तिन् = अनुवृत्तिः । जटाः सन्ति अस्मिन् तत् जटिलम् (जटा + लज् + क्त) । अनुवृत्त्या जटि-लम् = ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलम् = ज्येष्ठानुकरणजटायुक्तम् = बड़े भाई के अनुकरण

में जटा धारण किए हुए । साधोः = सज्जनस्य । अस्य = भरतस्य । उभयम् = द्वयम् । समेत्य = मिलित्वा । अन्योन्यपावनम्—पावयति इति पावनम् (पू + णिच् + ल्युट्) । अन्यस्य अन्यस्य पावनम् = अन्योन्यपावनम् = परस्परशोध-
कम् = एक दूसरे को पवित्र करने वाला । अभूत् = अभवत् ॥ ७८ ॥

टिप्पणी—रावण ने बार-बार सीता जी के चरणों पर अपने सिरों को रक्खा और उनसे बार-बार विवाह कर लेने की प्रार्थना की । सीता जी ने घृणा के साथ उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया । इस प्रकार उनका पातिव्रत्य अखण्डित रहा । भरत जी ने भी राम के प्रति अपनी भक्ति अनुकरण रक्खी तथा उनके अनुकरण में अपने सिर पर जटाएँ बड़ा लीं । दोनों ही आदर्शों का अन्तर्स्पर् मिलन हुआ । कोई भी अपनी उत्कृष्टता में किसी से कम नहीं था । दोनों ही उदात्त और उच्च थे । हर एक दूसरे के सम्पर्क से पावन हो रहा था ॥ ७८ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—लं केश्वरप्रणतिभंगदृढव्रतेन बन्धेन तेन जनकात्मजायाः चरणयोः युगेन ज्येष्ठानुवृत्ति जटिलेन अस्य साधोः शिरसा च उत्रयेन समेत्य अन्योन्यपावनेन अभावि । कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ७८ ॥

७९—रामचन्द्र जी का कुछ आगे बढ़ना और अयोध्यानगरी के निकट उपवन में ठहरना—

क्रोशार्धं प्रकृतिपुरःसरेण गत्वा

काकुत्स्थः स्तिमितजवेन पुष्पकेण ।

शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः

साकेतोपवनमुदारमध्युवास ॥ ७९ ॥

सजी०—क्रोशेति । आर्यः पूज्यः काकुत्स्थो रामः प्रकृतयः प्रजाः पुरःसराः अस्य तेन स्तिमितजवेन मन्दवेगेन पुष्पकेण । क्रोशोऽध्वपरिमाणविशेषः । क्रोशार्धं क्रोशैकदेशं गत्वा शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यमार्यः उपकार्याः पटभवनानि

यस्मिन्तदुदारं महत्साकतस्यायोध्यायाः उपवनमध्युवासाधितश्चै । “साके
स्यादयोध्यायां कोशलानन्दिनी तथा” इति यादवः ।

अन्वय—आर्यः काकुत्स्थः प्रकृतिपुरःसरेण स्तिमितजवेन पुष्पके
क्रोशार्धं गत्वा शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यम् उदारम् साकेतोपवनम् अ
वास ॥ ७६ ॥

हिन्दी अनुवाद—काकुत्स्थ कुलभूषण आर्य रामचन्द्र जी जनता के पीछे
धीरे-धीरे चलने वाले पुष्पक विमान द्वारा आधे कोस चलकर शत्रुघ्न द्वारा
पहिले से तम्बू लगवाए हुए अयोध्यानगरी के समीपस्थ विशाल उपवन
में ठहरे ॥ ७६ ॥

संस्कृतभावार्थ—अग्रे-अग्रे प्रजाः अगच्छन्, तासां पश्चात् मन्दगते
पुष्पकविमानम् अगच्छत् । आर्यः श्रीरामचन्द्रः पुष्पकेण क्रोशार्धं गत्वा
अयोध्यानगर्याः समीपे एकस्मिन् विशाले उपवने यत्र शत्रुघ्नः प्रथमत एव पट-
भवनानि स्थापयामास, वसतिं चकार ॥ ७६ ॥

व्याख्या—आर्यः = पूज्यः । सन्चे आर्य की परिभाषा इस प्रकार है—

कर्तव्यमाचरन् काममकर्तव्यमनाचरन् ।

तिष्ठति प्रकृताचारे यः स आर्य इति स्मृतः ॥

काकुत्स्थः—ककुदि तिष्ठति इति काकुत्स्थः (ककुद् + स्था + क) ।
ककुत्स्थस्य गोत्रापत्यं पुमान् काकुत्स्थः = रामः । सूर्यवंशी राजा परंजय का
ककुत्स्थ नाम भी था । वृषभरूप में परिवर्तित इन्द्र पर सवार होकर इसने राक्षसों
की खोज की । चूँकि यह राजा बैल के ककुद् (थूहड़) पर बैठा था इसलिए
ककुत्स्थ कहलाया । प्रकृतिपुरःसरेण—प्रकृतयः पुरः सराः यस्य तत् प्रकृतिपुरः-
सरम् तेन प्रकृतिपुरःसरेण = जनाग्रेसरेण = जनता आगे चल रही हो जिसके ।
स्तिमितजवेन—स्तिम् + त = स्तिमित । स्तिमितः जवः यस्य तत् = स्तिमित-
जवम् तेन = स्तिमितजवेन = मन्दवेगेन = मन्दगति वाले । क्रोशार्धम्—क्रोशस्य
अर्धः = क्रोशार्धः, क्रोशार्धम् = क्रोशार्धशतम् = कोस का कुछ भाग । अर्ध शब्द

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

नपुंसक लिंग और पुल्लिंग दोनों ही है। अर्धम् (नपु०) की अर्धता है—ठीक
 आधा। अर्धः (पुं०) का अर्थ होता है कुछ भाग। कालिदास ने दूसरे अर्थ
 में ही यहाँ अर्ध शब्द का प्रयोग किया है। शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यम्—
 शत्रून् हन्ति इति शत्रुघ्नः (शत्रु + √हन् + क)। प्रति + वि + √धा + क =
 प्रतिविहित। उपक्रियन्ते इति उपकार्याः। शत्रुघ्नेन प्रतिविहिताः उपकार्याः
 यस्मिन् तत् शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यम् = शत्रुघ्नविगच्छितपटभवनम् = शत्रुघ्न द्वारा
 बनाए गए ढेरे जहाँ पर। उदारम् = महत्, विशालम्। साकेतोपवनम् =
 साकेतस्य उपवनम् = साकेतोपवनम् = अयोध्योपवनम्। 'साकेतः स्यादयोध्यायां
 कोशलानन्दिनी तथा' इति यादवः। अध्युवास—अधि + √वस् + लिट् =
 अध्युवास—अधितपठौ = ठहरे। 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र द्वारा 'साकेतो-
 पवनम्' में कर्म संज्ञा होने से द्वितीया विभक्ति हो जाती है ॥ ७६ ॥

वाच्यपरिवर्तनम्—आर्येण काकुत्स्थेन प्रकृतिपुरःसरेण स्तिमितजवेन
 पुष्पकेण क्रोशार्धे गत्वा शत्रुघ्नविहितोपकार्यम् उदारम् साकेतोपवनम् अध्यूषे।
 कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में परिवर्तन किया गया है ॥ ७६ ॥

इति श्रीरघुवंशे महाकाव्ये कालिदासकृतौ दशरुद्रकाप्रत्यागमनं नाम
 त्रयोदशः सर्गः ॥

परिशिष्ट १

छन्द

संस्कृत कविता में प्रत्येक पद्य में ४ चरण होते हैं। पद्य दो प्रकार के होते हैं—वृत्त और जाति। वृत्त उस प्रकार के छन्दों को कहते हैं जिनमें कि अक्षरों की गणना होती है और जाति उस प्रकार के छन्दों को कहते हैं जिनमें मात्राओं की गणना होती है।

वृत्त तीन प्रकार के होते हैं—समवृत्त जिसमें कि चारों चरण एक से हों, अर्धसमवृत्त जिसमें कि प्रथम और तृतीय तथा द्वितीय और चतुर्थ समान हों; विषमवृत्त जिसमें कि चारों चरण भिन्न-भिन्न हों।

अक्षर शब्द के उतने भाग को कहते हैं जितना कि एक बार में बोला जा सके। कोई स्वर अथवा एक या अधिक व्यंजनों के साथ बोला जाने वाला स्वर अक्षर कहलाता है।

ह्रस्व स्वर युक्त अक्षर लघु और दीर्घ स्वर युक्त अक्षर गुरु कहलाता है। लेकिन यदि ह्रस्व अक्षर के आगे अनुस्वार या विसर्ग हो या संयोग तो ह्रस्व अक्षर गुरु माना जाता है। पाद के अन्त का ह्रस्व अक्षर भी आवश्यकतानुसार गुरु मान लिया जाता है।

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गो च गुरुर्भवेत्।

वणः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥

अक्षरों की गणना से नियमित होने वाले वृत्त छन्दों के विचारार्थ छन्दः-शास्त्र के आचार्यों ने तीन-तीन अक्षरों के आठ गणों की कल्पना की है। इनमें गुरु-लघु के क्रम का भेद रखा गया है। उदाहरणार्थ—

मस्त्रिगुरु स्त्रिलघुश्च नकारो मस्त्रिगुरुः पुनर्द्विलघुर्गुः।
जो गुरुमध्यगता रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथियोऽन्तलघुस्तः ॥

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

आदिमध्यावसानेषु यस्ता यांति लाघवम् ।

भजसा गौरवं यांति मनौ तु गुरुलाघवम् ॥

मगण ५ ५ ५

जगण १ ५ १

नगण १ १ १

रगण ५ १ ५

भगण ५ १ १

सगण १ १ ५

यगण १ ५ ५

तगण ५ ५ १

.....

संस्कृत छन्दःशास्त्र में छन्द के किसी चरण को पढ़ते समय बीच में कुछ रुकने को यति कहते हैं ।

रघुवंश का तेरहवाँ सर्ग उपजातिछन्द में (१—६७ तक) लिखा गया है । यह उपजाति छन्द इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्द का मिश्रण है । इन्द्रवज्रा छन्द की परिभाषा यह है—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः (५ . ६) ।

५ ५ १ ५ ५ १ ५ १ ५ ५

तगण, तगण, जगण, ग, ग—इस प्रकार चारों समान चरणों वाला छन्द इन्द्रवज्रा कहलाता है । इसमें ५वें अक्षर पर यति होती है ।

उपेन्द्रवज्रा छन्द की परिभाषा निम्न प्रकार है—

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ (५ . ६) ।

१ ५ १ ५ ५ १ ५ १ ५ ५

जगण, तगण, जगण, ग, ग—इस प्रकार चारों समान चरणों वाला छन्द उपेन्द्रवज्रा कहलाता है । इसमें भी पूर्व अक्षर पर यति होती है ।

उपजाति छन्द का लक्षण इस प्रकार है—

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से उपजाति छन्द बनता है । अन्य

छन्दों के मिश्रण से बने हुए छन्द भी उपजाति ही कहलाते हैं। यहाँ पर इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बने हुए उपजाति का ही प्रयोग किया गया है। इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बने हुए उपजाति छन्द के भेद पाए जाते हैं।

अब रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के प्रथम श्लोक की छन्दःशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है—

ज,	त,	ज,	ग, ग,
S	S S	S	S S
अ था त्म	नः शब्द	गु णं गु	ण शः
ज,	त,	ज,	ग, ग,
S	S S	S	S S
प दं वि	मा ने न	वि गा ह	मा नः ।

यह दोनों चरण उपेन्द्रवज्रा छन्द के हैं।

त,	त,	ज,	ग, ग,
S S	S S	S	S S
रत्ना क	रं वी द्य	मि थः स	जा या
त,	त,	ज,	ग, ग,
S S	S S	S	S S
रा मा मि	धा नो ह	रि रि त्यु	वा च ॥

यह दोनों चरण इन्द्रवज्रा छन्द के हैं।

६८ से ७८ श्लोक वसन्ततिलका छन्द में हैं। वसन्ततिलका छन्द परिभाषा निम्न प्रकार से है—

जेया वसन्ततिलका तमजाः जगौ गः ।

S S | S | | | S | | S | S S

त ग ण भ ग ण ज ग ण ज ग ण ग—इस प्रकार

अक्षरों के ४ समान चरणों वाले छन्द को वसन्ततिलका कहते हैं। इसमें ८ अक्षर पर यति होती है।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

खुवंश के १३वें सर्ग के ६८वें श्लोक पर अब विचार कीजिए—

त भ ज ज ग ग
 S S | S | | | S | | S | S S

ए ता व दु क्त व ति दा श र थौ त दी या

त भ ज ज ग, ग,
 S S | S | | | S | | S | S S

मिच्छां वि मान म धि दे व त या वि दि त्वा ।

इसी प्रकार अन्य श्लोकों में भी समझना चाहिए ।

श्लोक सं० ७६ प्रहर्षिणी छन्द में है । प्रहर्षिणी छन्द इस प्रकार है—

व्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् (३. १०) ।

S S S | | | | S | S | S S

म ग ण, न ग ण, ज ग ण, र ग ण ग इस प्रकार १३

अक्षरों के ४ समान चरणों वाले छन्द को प्रहर्षिणी कहते हैं ।

म न ज र ग
 S S S | | | | S | S | S S

क्रो शा र्धं प्र कृ ति पु रः स रे ण ग त्वा

इस प्रकार चारों चरणों में समझना चाहिए ।

संस्कृत में छन्दःशास्त्र पर पिंगलाचार्य का छन्दःसूत्र सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है । केदारभट्ट का वृत्तरत्नाकर जिससे कि मल्लिनाथ ने अपनी टीकाओं में उद्धरण दिए हैं तथा गंगदास की छन्दोमंजरी भी अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ हैं । अन्तिम दो ग्रन्थों में छन्द की परिभाषा और उदाहरण उसी छन्द में दिए गए हैं । इसीलिए यह दोनों ग्रन्थ बड़े लोकप्रिय हो गए हैं । कालिदास द्वारा लिखा हुआ माना जाना वाला श्रुतबोध भी ऐसा ही ग्रन्थ है । इसमें भी परिभाषा और उदाहरण एक ही छन्द में पाए जाते हैं लेकिन इसकी परिभाषाएँ विभिन्न कवित्वमय कल्मशाओं से मिश्रित हैं तथा सुन्दर होते हुए भी छन्दःशास्त्र से उनका सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है ।

परिशिष्ट २

संभावित प्रश्न और उनके उत्तर

प्रश्न १—निम्नलिखित श्लोक की अन्तर्कथा को स्पष्ट कीजिए—

गुरोरिय्यक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरंगे ।

तदर्थमुर्वामवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः ॥ ३ ॥

कपिलेन रसातलं संक्रमिते तुरंगे—इस पंक्ति में अन्तर्निहित कथा इस प्रकार है—पुराणों के अनुसार कपिल मुनि राजा सगर के अश्व को पाताल नहीं ले गए थे । स्वयं इन्द्र ने घोड़ा चुराया था और कपिल मुनि के, जो कि पाताल लोक में एकान्त स्थान पर तपस्या कर रहे थे, आश्रम के निकट उसे छोड़ दिया था । ऐसा माना जाता है कि इन्द्र हमेशा ऐसे लोगों से डरते रहते हैं जो कि कठोर तपस्या करते हों अथवा यज्ञ करते हों । पुराणों के अनुसार ऐसा माना जाता है कि सौ अश्वमेध यज्ञों के पूर्ण करने वाला व्यक्ति इतना शक्तिशाली हो जाता है कि वह इन्द्र-पदवी को प्राप्त कर लेता है तथा देवताओं की नगरी अमरावती का राजा हो जाता है । इस श्लोक में उल्लिखित घटना तब हुई थी जब राजा सगर अपना १०० वाँ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर रहे थे । इन्द्र ने यज्ञ की निर्विघ्न परिसमाप्ति में बाधा डालनी चाही । उन्होंने घोड़े को चुरा लिया और पाताल में ले जाकर कपिल मुनि के आश्रम के निकट चरता हुआ छोड़ दिया । इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न टीकाकारों ने विभिन्न प्रकार से इस पंक्ति को समझाया है । हेमाद्रि टीकाकार का कहना है—

यद्यप्यश्वस्य भूतलसंक्रमणमिन्द्रप्रयत्नकृतं तथापि कपिलान्तिके अश्व-दर्शनादनेन हतोऽश्वः इति पूर्वेषां सागराणां बुद्धिमाश्रित्य कपिलेनेत्युक्तम् ।

यद्यपि पाताल लोक में घोड़े को स्वयं इन्द्र ने पहुँचाया था, फिर भी 'कपिलेन' इसलिए कहा गया है कि सगर के शिष्यों ने कपिल को ही घोड़े का चोर,

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

समझा क्योंकि घोड़ा उनके पास घूम रहा था । मल्लिनाथ तथा अन्य टीका-
कारों ने ऐसी ही व्याख्या की है । चरित्रवर्धन ने एक और प्रकार से भी
व्याख्या की है । उसका कहना है कि कपिल शब्द इन्द्र का भी पर्यायवाची है—
'कपिलः कपिलो वर्णः कपिलः पाकशासनः' इति वैजयन्ती । यद्यपि यह व्याख्या-
न्तर बड़ा ही सुबोध और सुन्दर है, फिर भी पूर्व व्याख्या को छोड़ नहीं सकते,
क्यों कि कपिल शब्द साधारणतया कपिल मुनि के लिए ही प्रयुक्त होता है ।

पूर्वः किलायं परिवर्धि तो नः—इस पंक्ति में जिस पौराणिक घटना का उल्लेख है, वह इस प्रकार है—राजा सगर १००वाँ अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ का अश्व भूमण्डल पर घूम रहा था। सगर के पुत्र अश्व के साथ-साथ थे, लेकिन फिर भी किसी ने अश्व को चुरा लिया और पाताल लोक में पहुँचा दिया। सगर ने अपने पुत्रों को अश्व के खोजने की आज्ञा दी। घोड़े के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए तथा जमीन को खोदते-खोदते सगर-पुत्र पाताल में पहुँचे। वहाँ उन्होंने स्वच्छन्दता के साथ विचरण करता हुआ अपना अश्व देखा तथा पास में ही कपिल मुनि को अपने तेज से आसपास के वायुमण्डल को प्रकाशित करते हुए पाया। कपिल मुनि को 'चोर है' 'चोर है' इस तरह धिक्कारते हुए तथा 'मार दो' 'मार दो' इस तरह कहते सगर-पुत्र अपने शस्त्रों को लेकर उनके पास पहुँचे। कपिल मुनि ने धीरे से अपने नेत्र खोले और क्षण भर के लिए उनकी ओर देखा। मुनि के तपस्तेज से सगर-पुत्र सब के सब भस्मसात् हो गए। अश्व की खोज के लिए खोदा हुआ पाताल ही बाद में समुद्र हो गया।

प्रश्न २—रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के कथासार को संक्षेप में संस्कृत भाषा में लिखिए ।

रावणं युद्धे व्यापाद्य सीतामादाय च श्रीरामचन्द्रः पुष्पकविमानेन लंकायाः
प्रत्यागच्छन् सागरम् सीताम् अदर्शयत्, तस्य महिमानम् च सीतायै अश्रावयत्,
समुद्रस्थान् जन्तून् समुद्रतटभूमिं च वर्णयति स्म । सगरमुताः केन प्रकोरण समुद्रं
परिवर्धितवन्तः—इत्यपि कथां श्रुत्वा तत्रैव निवेदितवान् । तदनन्तरम् मार्गस्य

वर्णनम् लभ्यते । प्रियविरहकाले नववर्षागमे माल्यवति तत्तदुद्दीपनसामर्थ्ये
दृष्ट्वा पूर्वानुभूतं दुःखं च अवर्णयत् । गङ्गायमुनासंगमशोभा-पम्पासरोवर-
चक्रवाकमिथुनतटाशोकलतानाम् विवरणम् च अकरोत् । सुतीक्ष्णस्य तयो
वर्णनम्, शरभंगस्याश्रमवर्णनम्, अत्रितपोवनस्य, अनसूयायाः तपःप्रभावस्य
ध्यानमग्नानां मुनीनां श्यामवटस्य च क्रमेण विवरणम् कृतमस्ति । श्रीरामचन्द्रस्य
प्रत्यागमनवृत्तान्तं श्रुत्वा पुरोहितसचिवसैन्यप्रजावृन्दैः सह भरतद्वारा रामस्य
अभिनन्दनम् च अस्मिन् सर्गे वर्णितं विद्यते । भरतादिकम् पुष्पकविमाने आदाय
शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यं प्रशस्ते अयोध्योपवने विमानादवतीर्य रामचन्द्रस्य
विश्रामकरणमित्यादि अस्मिन् सर्गे वर्णितं विद्यते ।

प्रश्न ३—पुष्पकविमान द्वारा लंका से अयोध्या तक की रामचन्द्र जी की यात्रा का संस्कृत में वर्णन कीजिए ।

अस्य प्रश्नस्य उत्तरम् द्वितीयप्रश्नस्य उत्तरे एव समाविष्टं विद्यते । तत् एवानुसंधेयम् ।

प्रश्न ४—रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के अनुसार गंगा-यमुना के संगम का वर्णन कीजिए ।

गङ्गायाः यमुनायाश्च संगमस्य दृश्यमतीव सुन्दरम् वर्तते । यमुनायाः तरंगैः व्यामिश्रः गङ्गाप्रवाहः क्वचित्प्रदेशे कान्तिमद्भिः इन्द्रनीलैः सह गुम्फिता मौक्तिकमाला इव शोभते । क्वचिच्च नीलकमलैः ग्रथितम् श्वेत-कमलमालयमिव सुरसरित् शोभते । कस्मिंश्चित्स्थले तु कृष्णहंसमिश्रिता राजहंसश्रेणिः इव, अन्यत्र च भगवत्याः वसुन्धरायाः वदनमण्डले कृष्णागुरुणा अंकितमकरिका चन्दनकल्पिता शृंगाररचना इव शोभायमाना वर्तते । अपूर्वमेव संगमस्य सौन्दर्यम् । कुत्रचित् छायोत्पादितैः अन्धकारैः चित्रिता चन्द्रिका इव जाह्नवी मनो हरति । अपरस्मिन् स्थले अन्तरालेषु आदृश्यमानैः नीलगगनखण्डैः खचिता शरन्मेषपंक्तिः इव विभाति । किं कथ्यताम् । एकस्मिन् स्थले तु कृष्णसर्पमण्डिता भस्मरागविभूषिता शङ्करस्य शरीरश्रीः इव यमुनातरंगैः व्यामिश्रा गङ्गा दृष्टिपथमायाति ।

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

प्रश्न ५—खुवंश के त्रयोदश सर्ग के अनुसार संस्कृत में समुद्र का वर्णन

ज्ञेयि ।

अस्मिन् सर्गे समुद्रस्य वर्णनम् अतीव मनोहरम् अस्ति । समुद्रस्य प्राकृतिक-
सौन्दर्यम्, ऐतिहासिकम् महत्त्वम् अन्यत् च वैभवम् कविना महता कौशलेन
वर्णितं विद्यते । श्रीमता रामचन्द्रेण निर्मितेन सेतुना मलयाचलपर्यन्तम्
द्विधाकृतम् फेनिलम् समुद्रं दृष्ट्वा आकाशगंगया विभक्तम् शरन्नर्मलम्
मेघनिर्मुक्तम् नीलनभोमण्डलम् स्मृतिपथमायाति । सूर्यकिरणाः समुद्रादेव
जलमपकर्षन्ति परिवर्तयन्ति तत् च मेघस्वरूपे । ततः तदेव जलम् वृष्टिद्वारा
वमुन्धरां शस्यश्यामलां धान्यवतीं च विदधाति । समुद्रः महान् परोपकारी ।
सहजशत्रुम् वडवानलम् स्वाभ्यन्तरे पुष्णाति । विश्वसंतापहारी चन्द्रमाः
अस्यैव पुत्रः । दशसु दिक्षु अस्य विस्तारः वर्तते । यथा भगवतः विष्णोः स्वरूपम्
दुर्निरूपम्, तथैवास्य रूपमपि प्रकारतः परिमाणतश्च वर्णयितुं न शक्येत ।
प्रलयकालेऽपि अस्य स्थितिः न नश्यति । अपि च भगवान् विष्णु अस्मिन्नेव
शेते । महान्तो महीधराः इन्द्राद् भीताः समुद्रे एव शरणं लभन्ते । अनन्ताः
नद्यः अस्मिन्नेव सम्मिलन्ति । असौ दक्षिणनायक इव नदीभिः सह व्यवहरति ।
विशालानां मत्स्यानां मुखेभ्यः निर्गतान् जलप्रवाहान् दृष्ट्वा जलयन्त्र दृश्यम्
स्मृतिपथमागच्छति । यत्र तत्र च मणियुक्ताः सर्पाः दृश्यन्ते । तेषां मणयः
सूर्याशुभिः अतीव द्योतन्ते । क्वचित् प्रदेशे विद्रुमराशिमिश्रितम् शंखयूथम्
शोभमानं वर्तते । यत्र तत्र च समुद्रे आवर्ताः दृश्यन्ते । तेषां वेगात् भ्रमतः
वनान् दृष्ट्वा समुद्रमन्थनस्य दृश्यम् स्मर्यते । अहो महदाश्चर्यं । समुद्र वैभवम् न
समग्रतया वर्णयितुं शक्यते ।

प्रश्न ६—अपनी पुष्पकयात्रा में रामचन्द्र जी द्वारा सीता जी को दिखाए गए स्थानों और आश्रमों का वर्णन कीजिए ।

समुद्रम् उत्तीर्य सर्वप्रथमम् श्रीरामचन्द्रः जनस्थानान्तिकमाजगाम अदर्शयत्
तत्र इदम् स्थानम् श्रीसीतादेव्यै । एतदनन्तरम् स सीतायै तत् स्थानम् अदर्शयत्
यत्र तस्याः नूपुरम् पतितम् । पतितं नूपुरं पर्वतम् अदर्शयत्, यस्य शिखराणि

गगनचुम्बिनी आसन् यत्र च तेन प्रथमः वर्षाकालः यापित आसीत् । तदा सः ताम् पम्पासरोवरम् अदर्शयत्, यस्थ जलमभितः वेत्रलतानाम् कुंजाः विस्तृताः आसन् यत्र च केवलम् सारसपक्षिणः एव दृश्यमानाः आसन् । एतदनन्तरं श्रीरामः पंचवटीं प्राप्नोति । अस्मिन् स्थाने उदग्रमुखान् कृष्णहरिणान् तथा सीताया स्वयमेव सिवतान् आम्रपादपांश्च श्रीरामचन्द्रः सीताम् अदर्शयत् । ततः अग्रेगच्छन् अगस्त्यमुनेः यः स्वर्गात् नहुषं प्रभ्रंशयांचकार, आश्रमं दर्शयामास । किञ्चिदग्रे गत्वा जलान्तः निवसतः शातकर्णेः मुनेः आश्रमं दर्शयांचकार । तदनन्तरं सुतीक्ष्णमुनेः शरभंगमुनेश्च आश्रमं दर्शितवान् । एतत्पश्चात् चित्रकूट पर्वतं संप्राप्य भूदेव्याः मौक्तिककण्ठमालाम् इव प्रतीयमानाम् मन्दाकिनीम् नदीम् श्रीसीतादेवीम् अदर्शयत् । तदा यत्र अनसूयया त्रिधाराभिः गंगा प्रवाहिता सः अत्रिमुनेः आश्रमः दर्शितः । प्रयागमनुप्राप्य तत्र संगमं दृष्ट्वा संगमशोभन्यरूपयत् श्रीरामः प्रयागतः निषादग्रामं संप्राप्तः । ततः संरयूनद्या परिपालिताम् अयोध्यानगरीम् समागच्छत् ।

प्रश्न ७—रघुवंश के १३वें सर्ग के आधार पर कालिदास की कविता की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।

संस्कृत कविता में कालिदास का सर्वोच्च स्थान है । बड़े ही प्राचीन समय से उन्हें तथा उनके काव्यों को आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है । कविकुलगुरु के पद से उन्हें भूषित किया गया है तथा कविताकामिनी का उन्हें विलास माना गया है । न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में उनका आदर किया गया है । विश्वकवि के पद से यदि कालिदास को अलंकृत किया जाए तो उचित ही होगा । कालिदास की कविता में वर्णन की सजीवता, भावों की स्वाभाविकता और भाषा-सौष्ठव इत्यादि गुण प्रचुर रूप से पाए जाते हैं । अलंकारों की सहायता से कवि ने अपने वर्णनों को बड़ा हृदयग्राही और लोकोत्तर बनाया है । कालिदास की उपमाएँ तो प्रसिद्ध ही हैं—‘उपमा कालिदासस्य भारवेर्यगौरवम् । दण्डिनः पदलालित्यं माये सन्ति त्रयो गुणाः’ ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

रघुवंश के इस सर्ग में भी उपमा के कुछ बड़े ही सुन्दर निदर्शन दृष्टि

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri
 गोचर होते हैं । गंगा-यमुना-संगम का वर्णन करते हुए कवि ने बड़ी ही सुन्दर
 उपायों प्रयुक्त की हैं—

क्वचित् खगानां प्रियमानसानाम्
 कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः ।

अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा
 भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥ १ ॥

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलै-
 मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।

अन्यत्र माला सितपंकजाना—
 मिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥ २ ॥

क्वचित्च कृष्णोरगभूषणेव
 भस्मांगरागा तनुरीश्वरस्य ।

पश्यानवद्यांगि विभाति गंगा
 भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ॥ ३ ॥

एतेषु पद्येषु संगमस्य वर्णनम् अतीवमनोहरम्, सद्य एव चेतः आवर्जति ।
 उत्प्रेक्षाया अपि प्रयोगे कवेः अद्वितीयम्, कौशलम् वर्तते ।

जनस्थानम् सीतां देवीं दर्शयन् श्रीरामचन्द्रः कथयति—

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वाम्
 भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।

अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द-
 विश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥

अत्र हेतुप्रेक्षायाः अतीवसुन्दरः प्रयोगः दृश्यते ।

शृंगार-करुणारसादिचित्रणेषु अपि अतीव कुशलोऽयं चित्रकारः । वियोग-
 वर्णनस्य प्रसंगे अद्वितीयम् अष्टोक्तम् वर्तते ।

एतद्गिरमाल्यवतः पुरस्तात्

आविर्भवत्यम्बरलेखि शृंगम् ।

नवं पयो यत्र घनैर्मया च

त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ॥

एतदतिरिक्तम् बहुषु स्थलेषु अतीव सुन्दराः भावाः निरूपिताः सन्ति ।
यथाऽस्मिन् पद्ये—

त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता

तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।

अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवयन्त्यः

शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥

अचेतनाः लताः अपि भावुकत्वेन वर्णिताः सन्ति ।

सरयूनद्याः वर्णनमपि महत्भावपूर्णं विद्यते । सरयूः नदी मातेव
वर्णिताऽस्ति—

यां सैकतोत्संगसुखोचितानाम्

प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम् ।

सामान्यधात्रीमिव मानसं मे

संभावयत्युत्तरकोशलानाम् ॥

सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता ।

दूरे वसन्तशिशिरानिलैर्मा तरंगहस्तैरुपगूहतीव ॥

वात्सल्यस्य अतीव सुन्दरं वर्णनं विद्यतेऽत्र ।

दृश्यवर्णनेऽपि अद्वितीयम् वर्ततेऽस्य महाकवेः नैपुण्यम् । दृश्यस्य चित्रमिव
अक्षरैः समक्षमुपस्थाप्यते । पुष्पकविमानतः समुद्रदर्शने समुद्रस्य वर्णनम्
अतीव चमत्कारि, कवेश्वर कल्पनाशक्तिं दृष्टव्यम् । श्रीरामचन्द्रः सीतां संग्रोधयन्
कथयति—

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तम्

मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।

छायापथेनेव शरत्प्रसन्न-

माकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥

समुद्रे विद्रुमांकुरेषु प्रोतमुखस्य शंखयूथस्य कल्पनाऽतीव सुगंधकरी—

तवाधरस्पर्द्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत् सहसोर्मिवेगात् ।

ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं कथंचित् क्लेशादपक्रामति शंखयूथम् ॥

समुद्रस्य विशालता अवर्णनीया । नहि कोऽपि मानदण्डः स्थापयितुं
शक्यते । उचितमेव कवेरिदं कथनम्—

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानम् स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना ।

विष्णोरिवास्थानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥

कवेः वर्णनमहिमा भावगाम्भीर्यं च लोकोत्तरम् प्रसादयुक्तं च वर्तते ।

—: इति शम् :—

संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

(परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण)

द्वितीय संस्करण

पृष्ठ संख्या १३२६

मूल्य १५)

संस्कृत साहित्य के अध्ययन के लिए प्रस्तुत कोष एक बड़े अभाव की पूर्ति करता है। इतने कम मूल्य में इतना प्रामाणिक संस्करण साहित्य में अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। प्रस्तुत कोष में प्रत्येक शब्द के सरल अर्थ, व्युत्पत्ति, व्याकरण आदि दे दिए गए हैं जो सिद्धान्त-कौमुदी, महाभाष्य आदि के प्रामाणिक संस्करणों पर आधारित हैं। ग्रन्थ के अन्त में उपयोगी परिशिष्ट हैं। हिन्दी के माध्यम में तैयार किया हुआ यह सर्वमान्य प्रामाणिक कोष है।

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीप्रसाद

(उत्तराधिकारी रामनारायणलाल)

CC-0. प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद-२

प की
प में
प्रर्थ,
राध्य
रोगी
एक

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri

Digitized by Sarayu Trust Foundation and eGangotri